This is a digital copy of a book that was preserved for generations on library shelves before it was carefully scanned by Google as part of a project to make the world's books discoverable online.

It has survived long enough for the copyright to expire and the book to enter the public domain. A public domain book is one that was never subject to copyright or whose legal copyright term has expired. Whether a book is in the public domain may vary country to country. Public domain books are our gateways to the past, representing a wealth of history, culture and knowledge that's often difficult to discover.

Marks, notations and other marginalia present in the original volume will appear in this file - a reminder of this book's long journey from the publisher to a library and finally to you.

Usage guidelines

Google is proud to partner with libraries to digitize public domain materials and make them widely accessible. Public domain books belong to the public and we are merely their custodians. Nevertheless, this work is expensive, so in order to keep providing this resource, we have taken steps to prevent abuse by commercial parties, including placing technical restrictions on automated querying.

We also ask that you:

+ *Make non-commercial use of the files* We designed Google Book Search for use by individuals, and we request that you use these files for personal, non-commercial purposes.
+ *Refrain from automated querying* Do not send automated queries of any sort to Google's system: If you are conducting research on machine translation, optical character recognition or other areas where access to a large amount of text is helpful, please contact us. We encourage the use of public domain materials for these purposes and may be able to help.
+ *Maintain attribution* The Google "watermark" you see on each file is essential for informing people about this project and helping them find additional materials through Google Book Search. Please do not remove it.
+ *Keep it legal* Whatever your use, remember that you are responsible for ensuring that what you are doing is legal. Do not assume that just because we believe a book is in the public domain for users in the United States, that the work is also in the public domain for users in other countries. Whether a book is still in copyright varies from country to country, and we can't offer guidance on whether any specific use of any specific book is allowed. Please do not assume that a book's appearance in Google Book Search means it can be used in any manner anywhere in the world. Copyright infringement liability can be quite severe.

About Google Book Search

Google's mission is to organize the world's information and to make it universally accessible and useful. Google Book Search helps readers discover the world's books while helping authors and publishers reach new audiences. You can search through the full text of this book on the web at http://books.google.com/

14.B.18.

Indian Institute, Oxford.

Presented by
Edwin Arnold Esqre M.A. C.S.I.
May, 1887.

Gujarati

स्वरूपानुसन्धान

एटले

ब्रह्म आत्माना एकत्वनो सात प्रक्रियाये
करीने विचार,

ए नामनो वेदान्त विषयनो

ग्रन्थ

गौरीशंकर उदयशंकर ओझा,
सी. एस. आइ.,
भावनगरना,

एमणे रचीने

मुंबई मध्ये
" निर्णयसागर " छापखानामां छपावी
प्रसिद्ध कर्यो.

(आ पुस्तक सरकारमां रेजिस्टर करावी ग्रंथकर्त्ताए
ते संबंधी पोतानो हक्क नोंधाव्यो छे.)

संवत् १९४०.

शाके १८०६. इ० स० १८८४.

SWARÛPANUSANDHÂN

OR

Considerations on the nature of Atmá (Self) and on the unity of Atmá with Paramátmá (the Highest Self)

BEING

AN ATTEMPT TO UNFOLD SOME OF THE LEADING PRINCIPLES OF THE VEDÁNT PHILOSOPHY

BY

COWRISHANKAR UDAYSHANKAR OZÁ, C. S. I.,

LATE MINISTER OF BHAVNAGAR.

BOMBAY:

PRINTED AT THE "NIRNAYA-SÂGAR" PRESS.

1884.

गवरीशंकर-उदेशंकर-ना-सलाम साथे-

With best compliments from
Gourishankar Udayshankar

To Edwin Arnold Esquire
C. S. I.

Bhavnagar
December 11/85

आजम गौरीशंकर उदयशंकर, सी. एस्. आय्.,
एओनुं "क्रेस्त."

एनी समजण.

१. गायनुं मुख (गोमुख) ए "गौरी" नुं चिन्ह छे.
२. देवालय छे ते शंकरनुं छे अने ए "शंकर" } गौरीशंकर.
सूचक छे.

३. सूर्य ए "उदय" नी संज्ञावाचक छे.— उदयशंकर.

४. कलम ए नागरनो मुत्सद्दीपणानो पेशो बतावेछे.

५. परब्रह्मप्रतिभावना ए केहेवत वेदान्त एटले ज्ञानमार्ग सूचवेछे.

ए बधानुं तात्पर्य ए जे पोताना वर्णाश्रमना धर्मनुं पालन आदि साधनथी माणसनुं श्रेय थायछे. श्रीशंकराचार्ये अपरोक्षानुभूतिमां कह्युं छे जे—

श्लोक.

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात् ।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादि चतुष्टयम् ॥

आ लघु ग्रन्थ

निर्गुण तथा सगुण ब्रह्मनी उपासनामां

प्रवृत्ति थवा सारु

तथा

ब्रह्मात्माना एकत्व विषे यथार्थ ज्ञान थवा सारु

सर्व मुमुक्षु अधिकारीओने

परम प्रीतिथी

ग्रन्थकर्त्ताए

अर्पण कर्यो छे.

प्रस्तावना.

आ ग्रन्थनुं नाम स्वरूपानुसन्धान पाडवामां आव्युं छे. स्वरूप एटले पोतानुं खरुं रूप अने अनुसन्धान एटले स्मरण, ध्यान. स्वरूपानुसन्धान एटले पोतानुं खरुं रूप शुं छे तेनुं माणसने स्मरण करावनार ग्रन्थ. आ जगतमां सर्व व्यवहार ' हुं ' अने ' मारुं ' ए रीते अविद्याकृत छे. तेमां ' हुं ' शब्दनो अर्थ बे प्रकारनो छे. एक 'हुं' सामान्यपणाए करीने सर्वमां रह्योछे ते आत्मानो वाचक छे अने बीजो देहादिकना अभिमान रूप जे ' अहम् ' शब्द छे ते मिथ्या उपाधि वाचक छे. तेमां पारमार्थिक ' हुं ' कोण ए समजवुं अवश्य छे. ए समजावनार विद्या तेनुं नाम आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मविद्या; अने चारे वेदनो, एटले ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अने अथर्वणवेदनो, अन्त एटले मुख्य हेतु आत्मानुं ज्ञान सारी रीते कराववुं ए छे; तेथी ब्रह्मविद्याने 'वेदान्त' करीने कहेछे. वेदना बे प्रकार छे. जेमां कर्म उपासनानो भाग निरूपण करेलो छे तेने कर्मकांड कहेछे. जेमां ज्ञानमार्गनुं निरूपण तेने ज्ञानकांड कहेछे. चारे वेदना उपनिषदमां ज्ञानमार्गनुं निरूपण छे एज ब्रह्मविद्या अथवा आत्मनिरूपण. तो ब्रह्मविद्यानो मुख्य सिद्धान्त ए छे जे आ स्थूल शरीर अस्थि, रुधिर, मळ, मांस, मूत्रादिनुं भरेलुं छे ते कांई ' हुं ' नहि. शरीर एज ' हुं ' होय तो आ शरीर जन्म धारण करता पेहेलां न हतुं; हालमां छे अने थोडो काल जगतमां रही तेनो नाश थशे. आ जगतमां अनेक पराक्रमी पुरुषो थइ गया, थायछे, अने थशे पण तेमनी कीर्त्ति अने कृत्य शिवाय पाछळ कांई

रह्युं अथवा रेहेनार नथी. नाम तेनो नाश छे. अर्थात् देह विकारी छे; देह परिणामी छे. देह छे; देह जन्मे छे; देह वृद्धिने पामेछे; देह जुवान थायछे; देह वृद्ध अथवा जीर्ण थायछे अने अन्ते देहनो नाश थायछे. परंतु स्थूल देह तथा सूक्ष्म इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार ए सर्वनो द्रष्टा एटले जोनारो, साक्षी, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा ते अविनाशी छे. ते अजन्मा छे; नित्य छे; अनादि सिद्ध छे; ते जीर्ण थतो नथी अने जे खोळियामां ते रहेलो छे ते खोळियुं नाशने पामेछे परंतु ते पोते नाशवंत नथी.

वळी सर्व देहधारी प्राणिने विषे आत्मा छे ते एकज छे. आत्मा ब्राह्मण नथी; आत्मा क्षत्रिय नथी; आत्मा वैश्य नथी अने आत्मा शूद्र नथी. जेम सोनामांथी अनेक प्रकारना घाट घडाइ दागीना थायछे तेमां सोनुंज सत्य छे अने लेनार वेचनार तेमां सोनुं केटलुं छे अने केहेवी जातनुं छे ते उपर नजर राखी तेनी किम्मत गणशे पण दागीना उपर दृष्टि करता नथी. जेम नानाप्रकारनां वस्त्र, धोतियां, शेलां, दुपट्टा, नेनसुख ए सर्व तंतुरूप छे. जेम खाट, पाट, खुरशी, बांक ए सर्व काष्ठरूप छे; जेम अनेक प्रकारनां माटीनां वासण माटीरूप छे, तेम सर्वना घटघटने विषे अन्तर्यामी आत्मा जुदां जुदां खोळियामां रहेलो छे तोपण एकज छे अने ए आत्मा ईश्वर एटले परमात्माथी जुदो नथी पण एकरूप छे. जेम अक्षरने विषे शाही भेळायली रहेली छे; शाहीमां अक्षरपणुं नथी तेमज आ सर्व जगत ब्रह्ममय छे; ब्रह्मने विषे जगतनो संभव नथी.

" एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥"

अर्थः– देव एटले स्वयंप्रकाश ईश्वर एकज छे; सर्व भूत प्राणिने विषे गूढ (ढंकायलो) रहेलो छे पण सर्व ठेकाणे व्यापक छे; सर्व भूत प्राणिनो अन्तर आत्मा छे; कर्मनो अध्यक्ष छे; सर्व भूतोने रेहेवानुं स्थान छे; साक्षी, चैतन्य, केवल, निर्गुण छे.

ए रीते शुद्ध जीव एटले आत्मा अने परमात्माना एकपणानो साक्षात्कार जेने श्रुति, युक्ति अने अनुभवथी सिद्ध थायछे ते पछी गर्भवासादि अनेक दुःखमांथी छुटेछे. अनेक जन्ममरणथी छुटवुं तेनुं नाम मोक्ष. मोक्ष थवा सारु बे प्रकारनी भक्ति अथवा उपासनानी जरूर छे. एक तो सगुण ब्रह्मनी उपासना अने बीजी निर्गुण ब्रह्मनी उपासना. सर्व जगतने विषे परमात्मभावना राखवी एटले जगत सर्व ब्रह्ममय छे एम मानवुं ते सगुण उपासना; अने जगतने विषे ब्रह्मरूप रहेलो प्रत्यगात्मा हुं ते मारुं स्वरूप सर्व इन्द्रियोथी अगोचर छे; आंगळीथी मने कोइ बतावी शकतुं नथी. हुं आकाशनी पेठे निराकार, व्याप्त, परिपूर्ण, अचल, अकर्त्ता, अभोक्ता, राग द्वेष रहित, सच्चिदानंद, अखंड, आनंद, एकरस, अजन्मा, अमर छुं एम मानवुं ते निर्गुण उपासना. सगुण उपासनाथी एटले सर्व जगतने विषे परमात्मभावनाथी अन्तःकरणनी शुद्धि थायछे. अन्तःकरण शुद्ध थयेथी ज्ञान थायछे. अने ज्ञानथी मोक्ष थायछे. ज्ञान बे प्रकारनुं छे. परोक्ष ज्ञान अने अपरोक्ष ज्ञान. आ जगतनो नियन्ता एटले नियममां राखनार, तेनो त्राता एटले पाळनार अने तेनो संहार एटले नाश करनार कोइक ईश्वर छे एम जे जाणवुं ते परोक्ष ज्ञान; अने ए जे परमात्मा ते हुं शुद्ध, सच्चिदानन्द स्वरूप हृदयने विषे रहेलोछुं, दूर नथी पण नजीक छुं एम समजवुं ते अपरोक्ष ज्ञान जाणवुं.

हवे अन्तःकरणनी शुद्धि करवी एटले हृदयनो मेल का-
ढवो ते क्यारे थाय? तो तेने सारु वेदान्त शास्त्रमां पांच
साधन कहेलां छे. ते मध्ये पेहेलुं साधन ए के जे कांइ कर्म
माणसे करवुं ते परमेश्वर निमित्त करवुं. यज्ञ, यागादि अ-
थवा जप, तप, तीर्थ, पुण्य, धर्म, दान आदि कर्म ईश्वर नि-
मित्त अने ईश्वरार्पण बुद्धिथी करवां. मने पुण्य थाय, मने
स्वर्ग मळे एवी स्वार्थ बुद्धिथी न करवां. बीजुं साधन अन्तः-
करण शुद्ध करवानुं ए जे ईश्वरपरायण रेहेवुं एटले ईश्वर
एज मारुं रक्षण करनार छे; एज मात्र आश्रय लेवा योग्य छे;
प्राप्य पण एज छे अने एज मारी गतिरूप छे एटले के इ-
न्द्रियोनी वृत्ति परमेश्वरपरायण राखवी. त्रीजुं साधन ए जे
परमेश्वरनी भक्ति करवी एटले सर्व विश्वमां परमात्मभावना
करीने कोइनो राग, द्वेष न करवो. चोथुं साधन ए जे असंग
वृत्ति राखवी एटले पुत्र, मित्र, स्त्री, द्रव्य, सगां, वाहालां
ए सर्व आखरे बंधनने आपनारां छे एम समजी तेमने विषे
अनुराग एटले आसक्ति न राखवी. पांचमुं साधन ए जे जेम
आसक्ति न राखवी तेम सर्व भूत प्राणि मात्रने विषे निर्वैर-
भाव एटले शत्रुपणानी बुद्धि न राखवी. आ पांच प्रकारनां
साधनरूप भक्तिथी अन्तःकरणमां हुं मारापणानो मेल धो-
वाइ जायछे. अने ए साधनद्वारा मुमुक्षु पुरुष आत्मानुं
अपरोक्ष ज्ञान संपादन करीने गर्भवास अने जन्म मृत्युना
दुःखमांथी छुटी मोक्षने पामेछे.

आ प्रमाणे वेदान्तशास्त्रनो टुंकामां सिद्धान्त कह्यो. हवे
आ ग्रन्थ लखी प्रसिद्ध करवानो हेतु ए छे जे श्री भावनगर
दरबारना माजी प्रधान रा. रा. आजम गौरीशंकर उदयशं-
कर सी. एस. आई. ने स्वामि श्री सच्चिदानन्द ब्रह्मतीर्थ

तथा रामकृष्ण भारती विगेरे ब्रह्मनिष्ठ महात्माओनो समागम थयो. एवा सत्समागमे करीने राजकारभारना सम्बन्धनुं काम यथास्थित रीते चलावतां छतां तेमांथी अवकाश लावी वेदान्तशास्त्रना श्रवण, मनन अने निदिध्यासनमां मन परोव्युं अने श्रुति प्रस्थान, सूत्र प्रस्थान, स्मृति प्रस्थान तथा तेमना प्रकरण ग्रन्थ विगेरेनो अभ्यास नियम पूर्वक कर्यो. भावनगरमां ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोनो सारो सत्कार थवाथी तथा वेदान्त उपर गगाभाइश्रीनी अत्यंत अभिरुचि जोइ घणा घणा ब्रह्मनिष्ठ परमहंस, संन्यासी, दंडी, स्वामि दूर देशथी एमनी ख्याति सांभळी आववा लाग्या. तेमना प्रसंगथी वेदान्त विषयमां बहुश्रुतपणुं मेळव्युं. परन्तु जे लाभ तेमने मळ्यो ते लाभ मुमुक्षु पुरुषोने आत्मविचारमां उपयोगी थाय एवा विचारथी तथा सज्जनोनी सूचनाथी आ स्वरूपानुसन्धान नामनो ग्रन्थ सात प्रक्रियामां श्रुति, स्मृति, तथा श्री शंकराचार्य आदिनां वाक्योनी ते ते स्थळमां योजना पूर्वक रचवामां आव्यो छे.

अति श्रम लेई ज्ञान संपादन करवानुं फल शुं ? मात्र एज के बीजाओने तेमना ज्ञाननो लाभ मळे. जगतनो व्यवहार एवो छे के जे वर्गमां जे रीतनुं आचरण पोता मध्ये वडील अने श्रेष्ठ पुरुषो करेछे ते जोइ ते वर्गना बीजा लोको पण ते प्रमाणे वर्त्तेछे. गीतामां कहेलुं छे जे—

यद्यदाचरतिः श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

अर्थः— जे जे आचरण श्रेष्ठ पुरुष करेछे ते ते आचरण बीजा लोको तेमनुं जोईने करेछे; श्रेष्ठ पुरुष जेनुं प्रमाण

लेइ एटले दाखलो लेइ कार्य करेछे तेने अनुसरीने लोक पण ते प्रमाणे वर्त्तेछे.

माटे जेओ सज्जन अने श्रेष्ठनी पदवीने पोहोंचेला छे एमनो धर्म छे, एमने माथे पोताना आचरण विषे एटली जवाबदारी छे, के जे प्रमाणे तेओ वर्त्तशे ते प्रमाणे देखादेखी दुनियांनी वर्त्तणूक पण तेवी थशे माटे तेमणे सदा सत्कर्म, सुजनता, परोपकार अने सारां कृत्य करी बीजा अनुकरण करे तेवा मार्ग जगतने बतावी आपवा.

ब्रह्मनिष्ठता राखवी अने राजयोग पाळवो ए परस्पर विरुद्ध नथी. असलथी आ देशमां तेवो व्यवहार चालतो आवेलो छे. जनकविदेही मोहोटा ब्रह्मनिष्ठ हता अने याज्ञवल्क्य ऋषि तेमना गुरु हता. तेओ निरंतर जनक राजाने वेदान्त श्रवण करावता. अर्वाचीन काळमां मरेठानुं राज्य स्थापन करनार महा समर्थ श्री शिवाजी महाराज छत्रपति पण श्री ब्रह्मनिष्ठ रामदास स्वामिने पासे राखी ब्रह्मविद्यानो अभ्यास करता. हमणाना काळमां पण ब्रह्मविद्यानो अभ्यास राजयोगनी साथे चालेछे. तेना दृष्टान्तमां आक्सफर्ड (उक्षतरणाभिधान नगरीना) प्रोफेसर भट्ट मोक्षमूलरे (मेक्सम्युलर साहेबे) पोताना नवा ग्रन्थ नामे "हिंदुस्थान आपणने शुं शीखवी शके तेम छे?" तेमां लखेछे के धर्म तथा ब्रह्मविद्या संबंधि विषयमां हिंदुस्थानना लोको बेदरकार थइ गयाछे एम सांहांना लोको पोते जगतनी आगळ वारंवार पोकारेछे तोपण सौराष्ट्र मध्येनां पेहेला वर्गनां स्वस्थान जुनागढ अने भावनगरना कारभारी बे देशी मुत्सद्दी पुरुषो गोकुलजी अने गौरीशंकर एओना वृत्तान्त वांचेथी वेदान्तनुं प्रबल राजप्रकरणमां अने आचारमां हजु केटलुं छे तेनी खातरी थशे.

आ पुस्तकमां वेदान्तना ग्रन्थोमांथी जे जे वाक्योनो आधार लेइ योजना करीछे ते वाक्योनुं गुजरातीमां भाषान्तर करवामां शास्त्री भानुशंकरजीथकी मोहोटी मदद मळी छे; तथा तेमां मुंबई मध्ये प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ आचार्य व्यास श्री जयकृष्णजी जीवनरामजीनी पण सहायता मळी छे. वळी, शारदा मठना स्वामि श्री शङ्कराचार्य राजराजेश्वराश्रमजी तथा स्वामि श्री चिद्घनानन्दजीने आ ग्रन्थ निवेदन करतां तेमणे पण प्रसन्नता जणाव्या नंतर आ ग्रन्थ छपाव्यो छे.

छेवट आ पुस्तक मुंबइमां रही कवि भवानीशंकर नरोत्तमजीए छापखानामां छपाती वेळा ग्रन्थना पत्रमां शुद्धाशुद्ध अक्षर तथा शब्दरचना घणी संभाळथी तपासी जोइछे तथा ग्रन्थने आरंभे अने अंते गुजराती कवितामां मंगलाचरण रची ग्रन्थने शोभाव्यो छे.

मुंबई, चैत्र शुदि ६
ता० १ एप्रील
सन १८८४.

जवेरीलाल उमयाशंकर याज्ञिक.

INTRODUCTORY.

The following pages contain an exposition in Gujaráti of the leading principles of the Vedant philosophy as unfolded in the Upanishads and the later literature on the subject. The work is intended as a guide to the Gujaráti student preparatory to his entering upon a more elaborate study of the subject in the Sanskrit original. The author of the work is the venerable Azam Gowrishankar Udayashankar, C. S. I., late minister of Bhavnagar—one of the first class Native States in Káthiáwád. Azam Gowrishankar has already earned a high place in the roll of successful Native administrators on this side of India, having served Bhavnagar faithfully for fifty-five years, of which thirty-two were passed as Chief Karbhari or Dewan. He retired into private life in January 1879, full of years and honors.

Though now bordering close upon eighty, Mr. Gowrishankar shows that his mind is as active as ever. His energies are directed to a leisurely contemplation of problems of life and mind which used to occupy him in the intervals of his work even while pursuing an active political career. His name and the interest evinced by him in the Vedant studies has drawn to Bhavnagar many an itinerant noted Indian anchorite from Sringeri, Benares, Nepal, and other remote parts of India and extended the fame of Bhavnagar as a home of Indian philosophical speculations in Kathiáwád and Gujarát.

Though the philosophy of the Upanishads and the later speculations of Indian metaphysical writers have not much interest for the European scholar and philosopher, there can be no doubt of the fact that the study of Indian philosophy, confined as it is to a select class of persons, is still a moral force in this country. It is, as Dr. Goldstücker

observed, 'the basis of the enlightened faith of India,' and the groundwork of many of the Hindu religious orders and sects that are current at this day in different parts of India.

This unpretending little work is significant of one or two facts which no observer of the progress of Hindu thought can be blind to. It shows that even at the present day the study of philosophy amongst us is blended with that of politics; that in this study there is to be observed an unbroken link between the most modern and the most ancient phases of Hindu thought, and that there are still many men here who, rising above the more materialistic tendencies of the age, find real enjoyment in the study of those problems of life and mind which engaged the thoughts of their ancestors three thousand years ago.

Bombay, 2nd April 1884.

J. U. Y.

* शार्दूलविक्रीडित छंद.

व्याप्युं विश्व अशेष जे स्वबळथी सर्वज्ञ सर्वेश्वरे,
उत्पत्ति स्थिति नाश सौ जगतना जे योग्य रीते करे;
साक्षी स्थूलशरीर सूक्ष्म तणो जूदो वळी तेथि जे,
जेथी पुण्य प्रपंच पाप पर छे रे' छे अविद्या बिजे. १
कालादि क्रम देश वस्तु मळिने कीधो परिच्छेद जे,
तेनाथी पण छे वळी रहित ए वेदोथि ना वेद्य जे;
आकाशादि पदार्थ सूक्ष्म करतां जे सूक्ष्म सौ सूक्ष्मथी,
जे चैतन्य अचिन्त्यरूप मळवा थाक्या मुनींद्रो मथी. २
जे छे दूरथकीज दूर वळि जे रे'छे कनेनो कने,
प्रेरेछे स्वयमेव देव सघळे सन्मार्गमां सर्वने;
जे श्रोत्रादिक इंद्रियो सहु तणुं आपे अधिष्ठान छे,
तेनुं तेम छतां अगोचर अहो ! आनन्द विज्ञान छे. ३
अद्वैतामर छे जरा रहित छे मुक्त स्वभावे भलो,
सर्वत्र स्थिर थै वसे तदपि छे ए ईश तो एकलो;
जेनुं ज्ञान थयेथि निश्चय मटे 'हुं आ अने माहरुं,'
एवा प्रत्यगभिन्न ब्रह्म प्रभुने प्रीते प्रणामो करुं. ४

---

* आ कविता भवानीशंकर वि० नरोत्तम द्विवेदीए रची छे.

॥ ॐश्रीगणेशाय नमः ॥

ॐतत्सत्परमात्मने नमः ॥ श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः

अथ श्रीस्वरूपानुसंधानग्रंथप्रारंभः

वेदान्तनुं श्रवण यथामति थयुं तेहेना तात्पर्यार्थनुं नियमपूर्वक अनुसंधान.

श्री शंकरभगवत्पूज्यपादनां वाक्यरूप

मंगलाचरणं.

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं,
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं,
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥१॥

अर्थ.—सद्रूप, चिद्रूप अने आनंदरूप, तथा परमहंस परिव्राजकोनुं परम प्राप्य स्थान, अने तुरीय, एटले जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ए त्रण्ये अवस्थाओथी अतीत, तथा ते अवस्थाओने नित्य जाणनारुं (प्रकाशक) एवुं, हृदयनेविषे स्फुरणायमान जे प्रत्यगात्मतत्त्व[१], तेहेने प्रातः-

१ "प्रति अंचतीति- प्रत्यक्" (अन्नमयथी आरंभीने

काळनेविषे स्मरण करुं छौं. एटले जे प्रत्यगात्मतत्त्व, ते निष्कल (प्राणादि षोडशकलारहित) ब्रह्मरूपज छे, पण भूतसंघातरूप (देहादिरूप) नथी; ए रीते आत्मब्रह्मनुं अभेदेकरीने अनुसंधान करुं छौं ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि मनसो वचसामवाच्यं,
वाचो विभांति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचुस्तं
देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥

अर्थ.– जे प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मस्वरूप– मन अने वाणीने अवाच्य (अगोचर) छे, तथा समग्र वाणीओ, जेना अनुग्रहथीज प्रकाशे छे. एटले जेणे प्रकाश करी छतीज वक्तव्य विषयो उपर प्रवृत्त थायछे, तथा सर्वे वेदो, जेने "नेति नेति" इत्यादि वचनोथी सर्व निषेधना अवधिरूपेकरीने एटले पृथ्वी, अप्, तेज, ए त्रण मूर्त्त, तथा वायु, आकाश ए बे अमूर्त्त. ए रीते मूर्त्तामूर्त्तरूप जे पंचभूतो, ते तथा तेमनां कार्य भौतिकरूप जे स्थूल सूक्ष्म देह; तेपण आत्म-

---

आनंदमय पर्यंत पांचे कोशोथी जे आन्तर रेहेनार ते साक्षी आत्मा).

तत्त्व नहि. केमके उत्पत्तिविनाशवान् छे माटे. किंतु, ते सर्वेना निषेधनुं अधिष्ठानभूत जे सत् चित् आनंदस्वरूप, एज आत्मतत्त्व छे. ए प्रकारे बोधन करे छे. तथा विद्वान् लोको जेने ब्रह्मादि देवना पण देव अने जन्मादि सर्व विकारे रहित अने च्युतिरहित, तथा परमोत्तम कहे-छे. ते प्रत्यगभिन्न ब्रह्मने, प्रातःकाळनेविषे हुं भजुं छौं ॥ २ ॥

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं,
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्त्तौ,
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥३॥

अर्थ.— जे प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूप, तमथी (मायाथी) पर छे तथा सूर्यनी पेठे प्रकाशस्वरूप अने " यस्मात्क्षरमतीतोहं " इत्यादि प्रमाणथी पुरुषोत्तम छे. एटले व्याकृत अव्याकृत सर्वथी उत्तम छे. तथा जे पूर्ण अविनाशि पद केहेवाय छे, तथा पूर्णस्वरूप जे अधिष्ठाननेविषे आ नामरूपक्रियात्मक सर्व जगत्, रज्जुनेविषे भुजंगनीपेठे प्रतिभास थायछे, ते प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूपने हुं नमस्कार करुं छौं ॥ ३ ॥

(ए रीते त्रण श्लोके करीने क्रमथी मानसिक, वाचिक अने कायिक ए त्रण प्रकारे— त्वं पदार्थ तथा तत् पदार्थनुं शोधनपूर्वक ऐक्यानुसंधान कर्युं.)

शंकरं शंकराचार्यं, केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वंदे, भगवंतौ पुनःपुनः १

ब्रह्मानंदं परमसुखदं, केवलं ज्ञानमूर्त्ति, द्वंद्वातीतं गगनसदृशं, तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥ एकं नित्यं विमलमचलं, सर्वधीसाक्षिभूतं, भावातीतं त्रिगुणरहितं, सद्गुरुं तं नमामि ॥ २ ॥

सद्गुरुनी सेवा, नमस्कार इत्यादि श्रद्धापूर्वक करवाथी निर्मल थयुं छे अन्तःकरण जेनुं, एवो विवेकादिक साधनचतुष्टयसंपन्न जे पुरुष, ते अधिकारी १. वेदान्तश्रवण करवाथी परोक्ष ज्ञान थया नंतर मननिदिध्यासनथी अपरोक्ष एवी जे जीवब्रह्मनी एकता, तेरूप विषय २. अनर्थ जे दुःखरूप संसार तेनी निवृत्ति तथा परमानंदनी प्राप्तिरूप प्रयोजन ३. बोध्यबोधकभाव एटले स्वरूप बोध्य अने शास्त्र बोध-

क ए संबंध ४. ए प्रमाणे वेदान्तनुं अनुबंधचतुष्टय. तथा—

यावन्नानुग्रहः साक्षाज्जायते परमेश्वरात्।
तावन्नसद्गुरुं कश्चित् सच्छास्त्रं वापि नो लभेत्

अर्थ.— जे व्यापक परमेश्वर आ जगत्ना उत्पत्ति, स्थिति, लय विगेरेनो कारणभूत सर्व नामरूपक्रियात्मक भूतभौतिकमां अन्तर्यामिरूपे रहेलो छे. एवा परमेश्वरनुं स्मरण, भजन, नमस्कारादि शुद्धभावनापूर्वक करवाथी तेनो कृपारूप अनुग्रह थायछे. ते ज्यां पर्यंत न थाय, त्यांहां सुधि कोई पण पुरुष, सद्गुरुने तथा सच्छास्त्र (वेदान्तशास्त्र) ने पामे नहि. १

माटे (१) ईश्वरप्रसाद (२) गुरुप्रसाद (३) श्रुतिप्रसाद (अने) (४) आत्मप्रसाद संपादन करवा. आत्मप्रसाद एटले सद्गुरुना सत्संगथी सदसत्नो विचार तथा संतोष अने शम ए रीतना पुरुषार्थवडे निरंतर अभ्यास होवाथी ब्रह्मविद्यानी प्राप्ति थाय.

ए रीते मनमां राखीने, अध्यारोपापवाद न्याये करीने ईश्वरजीवादिकना विचारविषयक

प्रथम प्रक्रिया.

"सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म."

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म."

ए श्रुतिमां कहेलां शुद्ध ब्रह्मनां स्वरूपनुं प्रतिबिंब, शुद्ध सत्वप्रधान मायामां पड्युं, ते सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वर केहेवाणो. सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट एटले (१) सर्वज्ञत्व; (२) सर्वनियंतृत्व; (३) सर्वांतर्यामित्व; (४) सर्वयोनित्व; (५) सत्यसंकल्पकत्व; (६) सर्वशक्तित्व इत्यादि गुणविशिष्ट एवा ईश्वरने पोताना स्वरूपनुं यथार्थ ज्ञान रह्युं छे, तेथी मायाने वश करीने त्रिगुणात्मक भूतभौतिक त्रिजगत्नी उत्पत्ति, स्थिति, लय विगेरेनो यंत्र असंगनिर्लेप थका नियतिपूर्वक चलावे छे. ॥

उपर लखेला सर्वज्ञत्वादिना अर्थो।

(१) सर्वज्ञ. एटले सामान्यरूपे नामरूपक्रियात्मक सर्व प्रपञ्चने तथा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानने जे जाणे ते. त्यांहां श्रुति.— "यः सर्वज्ञः सर्ववित्."

(२) सर्व नियन्तृत्व. त्यांहां श्रुति.—

"एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" इत्यादि.

अर्थ.– हे गार्गि ! सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, संवत्सरादि काल इत्यादि जे ईश्वरनी आज्ञामां वर्त्तेछे, तेमज एज ईश्वर सेतु जेवो छे, केमके पृथिव्यादि भिन्न भिन्न लोको, तथा देव मनुष्यादि, तथा वर्णाश्रमादि, तथा भुवनो तथा सर्व प्राणियोनां असंकरपणाने माटे धारण करनार, जेम लौकिक सेतु, क्षेत्रना क्याराओने तथा तेमानां जळोने संकर थवा देतो नथी, तेम नियममां राखे छे.

(३) सर्वान्तर्यामित्व. त्याहां बृहदारण्यक श्रुति.–

"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति." इत्यादि.

अर्थ.– जे पृथिव्यादिकने विषे रहेछे, अने पृथिव्यादिथकी आन्तर, तथा पृथिव्यादिक देवता जेने जाणी शकती नथी, तथा पृथिव्यादि जेनुं शरीर छे. ए प्रकारे जे सर्वेनी अन्तर रह्यो छतो पृथिव्यादिक सर्वेने नियममां राखे. एटले– पोतपोताना व्यापारोने विषे प्रेरेछे, तथा सर्वे प्राणीओना अन्तरमां रह्यो छतो तेमनां करेलां पु-

प्यपापने जोनार अने तेना अनुसारे फलनो आपनार, ते सर्वान्तर्यामित्व.॥

(४) सर्वयोनित्व. एटले सर्व नामरूपक्रियात्मक जगत्नो उपादानकारण तथा निमित्तकारण. अर्थात् अभिन्ननिमित्तोपादानकारण. जेम व्यष्टिसुषुप्तिनो अभिमानी प्राज्ञात्मा, ते स्वप्न तथा जाग्रत्रूपी कार्यनो कारणभूत छे. तेम समष्टिजगत्ना उत्पत्ति, स्थिति, लयनो कारणभूत अव्याकृतोपाधिक ईश्वर छे. जे थकी हिरण्यगर्भ अने विराट्आदि अध्यात्म, अधिदैव, अने अधिभूत कार्यरूप सृष्टि थाय छे, ते सर्वयोनित्व. त्यांहां तैत्तिरीय श्रुति.– "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते." इत्यादि. ॥

एज शुद्ध ब्रह्मनुं प्रतिबिम्ब, मलिन सत्वप्रधान अविद्यामां पड्युं, एटले ज्ञानक्रियाशक्तिमत् बुद्धि प्राण संयुक्त लिंग शरीरमां प्रतिफलित थयुं. ते जीव, अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट केहेवाणो एटले पोतानां अधिष्ठानस्वरूपनुं यथार्थ भान भूलवाथी, अविद्याने वश थईने लिंग तथा स्थूल शरीरमां हुं अने म्हारापणानां, तथा स्त्री पुत्र धनादिकमां केवल म्हारापणानां दृढ अभिमानथी, अजन्मा, अविक्रिय छतां जन्मादिक

षड्भाव विकारवान्, तथा माता, मान, मेय; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादिक त्रिपुटीरूप थईने अकर्त्ता अभोक्ता छतां, कर्त्ता भोक्ता थई, काम क्रोध लोभादिकने लीधे आपातरमणीय शब्दादि विषयसुखमां आसक्तिमान् थई, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःखरूप संसृतिमान् थयो. एवा जीवने कोइ एक प्राक्तन पुण्यवशे, तथा "स्ववर्णाश्रमधर्मेण, तपसा हरितोषणात्" इत्यादि साधनो वडे सद्गुरुनी सत्संगति थवाथी, जे व्यापक परमेश्वरनी इच्छा मात्रथी जगत्नी उत्पत्ति, स्थिति, लय थायछे, एवा अन्तर्यामि परमेश्वरनुं स्मरण, भजन, वंदन करवाथी, तेनुं अन्तःकरण निर्मळ थये आत्मा अनात्मानो विवेक एटले आत्मा सत्य छे, अने देहादिक अनात्मा ते सर्वे मिथ्या छे. तेथी मिथ्या वस्तु उपर दोषदृष्टि एटले गर्भवास; जन्म, मरण, जरा, व्याधि आदि त्रिविध ताप विगेरेथी दुःखरूप जाणीने, वैराग्य थतां, काम, क्रोध, लोभादिक दुष्टगुणनो त्याग करी, ज्ञान, सत्य, दमादिक सद्गुणवान् थइ, सद्गुरुथी श्रवणमां.– "प्रथमं दशमोऽस्तीति वत्" परोक्षज्ञान थया नन्तर विचारवुं, के हुं कोण?

नाहं भूतगणो देहो, नाहं चाक्षगणस्तथा ।
एतद्विलक्षणः कश्चिद्विचारःसोयऽमीदृशः १

अर्थ.– पंचीकृत पंचभूतनो थयेलो जे स्थूल देह एटले अस्थि, मांस, रुधिर, चर्म, नाडी, मूत्र, पुरीष विगेरे समुदाय ते हुं नहि तथा अपंचीकृत सत्तरतत्त्वनो सूक्ष्म देह, ते पण हुं नहि; अथवा (विवेकचूडामणिनो श्लोक)

वागादि पंच श्रोत्रादि पंच
प्राणादि पंचाभ्रमुखानि पंच ।
बुद्ध्याद्यविद्यादि च काम कर्मणी,
पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥ १ ॥

अर्थ.– वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा १. श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण २. प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ३. आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ४. बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार ५. विक्षेपशक्ति ते अविद्या ६. इच्छाविशेष ए काम ७. पुण्य पाप ए कर्म ८. ए प्रकारना अष्टपुरने सूक्ष्म शरीर, वेदवेत्ताओ केहेछे १.

ते पण हुं नहि. हवे "एतद्विलक्षणः कश्चित्" एटले ए बन्ने देहथी जे विलक्षण (पृथक्)

अने ते बन्ने शरीरनी सत्तास्फूर्त्तिनो प्रदाता एवो जे आत्मा, तेनी विलक्षणता देखाडनारी कठ वल्लीनी श्रुति.–

"येन रूपं रसं गंधं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते॥ एतद्वैतत्"॥ १ ॥

अर्थ.– स्थूल, सूक्ष्म देहादिक संघातथी आन्तर एवा ज्ञानरूप जे आत्मानो सत्तास्फूर्त्तिवडे सर्वलोक रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द. ए विषयोने तथा मैथुननिमित्त सुखप्रत्ययोने स्पष्ट जाणे छे. ॥ दृष्टान्त ॥ जेम जेनी सत्ताथी लोह, दाह करे ते अग्नि छे ॥ तेम जेनी सत्तास्फूर्त्तिथी, लोक, रूप रसादिकने अनुभव करे, ते चैतन्य आत्मा छे. जे आत्माने आ लोकमां अविज्ञेय (न जाणवामां आवे) एवी कोई पण वस्तु, परिशेष रेहेती नथी किंतु सर्व वस्तु आत्मानेज जाणवामां आवेछे. एज सर्वज्ञ आत्मा हृदयाकाशमां सर्वथी आन्तर आनन्दरूप साक्षी तेज छुं. एम जाणवुं.

(हृदयाकाशमां ते आत्माने स्पष्ट जणाववामाटे बृहदारण्यकना छठ्ठा अध्यायनी श्रुतिमां

याज्ञवल्क्य मुनिये जनक राजाने उपदेश कर्यो छे. तेनो संक्षेपार्थ).

यद्यपि आनन्दस्वरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक छे. तथापि हृदयकमळमां रेहेली बुद्धिनेविषे विशेषेकरीने अभिव्यक्त थायछे. त्याहां ॥ दृष्टांन्त ॥ जेम यद्यपि सूर्यनुं एक ज्योति (तेज,)ब्रह्मांडमां सर्वत्र सरखुं व्यापक छे. तथापि घटनेविषे, स्फाटिक मणिनेविषे अने सूर्यकांत मणिनेविषे, अस्वच्छता तथा स्वच्छताना तारतम्येकरीने न्यूनाधिक जणाय छे. एटले घटस्थानी तामस स्थूल देहनेविषे प्रकाशमात्र जणायछे. तथा राजस प्राण इन्द्रियोने विषे स्फाटिक मणिनी पेठे विशेष प्रकाश भित्यादिकमां प्रतिबिम्बनी तुल्य जणाय छे. अने सूर्यकान्त मणिमां जेम सूर्यनुं तेज दाहक तथा प्रकाशमान जणायछे तेम सात्विक अन्तःकरण जे बुद्धि, तेने विषे आत्मज्योति, आनन्दरूप तथा प्रकाशरूप विशेषे करीने अभिव्यक्त थायछे.

ए रीते देहादिकथी विलक्षण कूटस्थ साक्षी, ते हुं. ए प्रकारे विधि मुखे करीने स्वस्वरूपनो विचार कर्यो. अने देहादिकथी बाह्य जे नामरूपक्रियात्मक भूत भौतिक सर्व प्रपञ्च, ते पण

अस्ति, भाति, प्रिय, एटले सत्, चित्, आनंद अधिष्ठान जे ब्रह्मरूप तेने विषे अध्यस्त छे. अर्थात् ते सर्व पण आत्मरूप छे, केमके अध्यस्तने अधिष्ठानथी अतिरिक्तपणुं नथी. त्यांहां श्लोकः–

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चे-
त्यंशपंचकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं
जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥ १ ॥

अर्थः– 'अस्ति' (विद्यमानता) 'भाति' (प्रकाश) 'प्रियं' (प्रेमास्पद) 'रूपं' (पृथु बुध्नोदरादिक) 'नाम' (घट पट इत्यादिक शब्दो) ए पांचे मळीनेज आ वस्तु छे. आ वस्तु भासे छे. आ वस्तु प्रिय छे. आ वस्तुनुं आ रूप छे. आ वस्तुनुं आ नाम छे, ए रीते अंशपञ्चकथी व्यतिरेके (अधिकताये) करीने व्यवहारनोज असंभव छे. माटे लोक व्यवहारनुं विषयभूत, भूतभौतिकात्मक सर्व पण वस्तु, अंशपंचकात्मकज छे. ए पांचे अंशो मध्ये पेहेला त्रण, सत्; चित्, आनन्द. ए अंश ब्रह्म स्वरूपज छे अने नाम रूप, ए बे अंश जगद्रूप छे. १.

वळी "नेति नेति" ए श्रुतिना अवलंबनथी निषेध मुखे पण विचारवुं के स्थूळ, सूक्ष्म, कारण शरीर, ते हुं नहि. त्यांहां श्री आचार्यनुं वचनः—

नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोऽहं
नाहं बुद्धिर्नाहमहंकारधियौ च।
योत्र ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे ॥ १ ॥

अर्थः— प्राण, शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ए हुं नहि एटले प्राणथी आरंभीने चित्त पर्यंत सर्वे दृश्यत्वथी तथा भौतिकपणाथी तथा सावयवपणाथी तथा ममताना विषय होवाथी तथा सुषुप्त्यादिकने विषे आत्मा छते पण तेमनुं अदर्शन छे माटे तथा उपचय अपचयादि धर्मवाळां छे, माटे घटादिकनी पेठे अनात्मा छे ते हुं नहि, किंतु दृश्यत्वादिक धर्मोथी रहित तथा प्राणादिक सर्वनो साक्षी, तथा ते प्राणादिक, व्यभिचार पामे छते पण पोते अव्यभिचारी एवो जे चिद्रूपानुरूप आत्मा, एज हुं छौं (पंचकोशातीत छौं.)

ए पंच कोशोथी आत्माना विवेकनो विचार.

स्थूल शरीरभूत अन्नमय कोशनुं स्वरूप.

मातापितायें भोजन करेलां यव, व्रीहि आदिक अन्नथी जे वीर्य उत्पन्न थयुं तेथी स्थूलदेह उत्पन्न थयो अने जे देह, उत्पत्तिथी अनन्तर, क्षीर आदिक अन्ने करीनेज वृद्धि पामे छे अने नाशानन्तर, अन्न (पृथ्वी)मांज लय पामे छे ते देह, अन्नमय कोश एटले अन्ननोज विकार छे ते आत्मा नहि, केमके जन्मथी पूर्वे अने मरणथी अनन्तर तेनो अभाव छे; जेम घट अनात्मा छे तेम.

सूक्ष्म शरीरमां प्राणमय, मनोमय अने विज्ञानमय ए त्रण्ये कोश छे तेनुं विवेचन.

अन्नमय कोशथी अन्तर प्राणमय कोशनुं स्वरूप.

जे वायु, देहने विषे पगथी आरंभीने मस्तक, पर्यंत व्यापीने व्यानरूपे सामर्थ्य आपतो छतो चक्षुरादि इंद्रियोने प्रवर्त्तावे छे ते वायु प्राणमय कोश. ए पण आत्मा नहि, केमके ते क्षुधा तृषादिक धर्मेथी पीडित छे, अने आत्मा तो ते धर्मेथी अतीत छे.

प्राणमयकोशथी अंतर मनोमय कोशनुं स्वरूप.

देहने विषे अहंताभिमानने तथा गृहादिकने विषे ममताभिमानने जे करेछे ते मनोमय कोश. ए पण आत्मा नहि केमके कामक्रोधादिक अवस्थाये करीनें अनियत स्वभाव छे अने श्रुतिमां पण मनने अन्नमय केहेछे एटले विकारी छे जेम विकारी देह आत्मा नथी तेम.

मनोमय कोशथी अंतर

विज्ञानमय कोशनुं स्वरूप.

सत्व गुणनुं कार्य जे बुद्धि, ते स्वच्छ छे तेथी विशेष चिदाभासे युक्त छे, ते सुषुप्तिकाळने विषे लीन थाय छे अने पुनः जाग्रत्काळने विषे मस्तकथी आरंभीने नखाग्र पर्यंत शरीरने विषे व्यापे छे ते विज्ञानमय कोश, ते पण आत्मा नहि केमके विलयादि अवस्थावान् (सुषुप्तिमां लय पामे) छें; जेम घट आत्मा नथी तेम.

विज्ञानमय कोशथी अंतर कारण शरीरभूत आनन्दमय कोशनुं स्वरूप.

भोक्ता शब्दे करीने वाच्य आनन्दमय कोशने विषे अनात्मपणुं देखाडवाने तेहेनुं स्वरूप केहेछे के पुण्य कर्मना फलना भोगकाळने विषे जे वृत्ति, अन्तरमुख छती आनन्दना प्रतिबिंबने भजे छे

एज वृत्ति पुण्य कर्म फळभोगनो उपराम छते निद्रारूपे करीने लय पामे छे ते आनन्दमय कोश. ए पण कादाचित्क एटले सुषुप्तिमांज अभिव्यक्त थाय छे माटे ते पण आत्मा नहि; जेम- विद्युत् अभ्रादि पदार्थो आत्मा नहि तेम.

शंकाः— आनन्दमयादि सर्व कोशोने विषे आत्मपणानो निरास कर्ये छते नैरात्म्यपणुं प्रसक्त थयुं. समाधानः— बुद्ध्यादिकने विषे प्रतिबिम्बरूपे रहेलो अने प्रियादि शब्देकरीने वाच्य एवो जे आनन्दमय कोश, तेनो बिंबभूत (कारणभूत) जे मुख्यअविनाशी आनन्द, एज आत्मा होयछे, केमके सर्वकाळने विषे नित्य छे. शंकाः— अन्नमयथी आरंभीने आनंदमय पर्यंत कोशोने विषे आत्मपणुं न हो तथापि तेथी अतिरिक्त बीजो तो कोइ आत्मा जाणवामां आवतो नथी. समाधानः— यद्यपि आनन्दमयादि कोशोनो जे अनुभव थायछे ते अविद्याकृत आवरणयुक्त छे; तोपण ए अनुभव पांचे कोशोनो जे पुच्छप्रतिष्ठारूप निरतिशयानंद स्वरूप आत्माना बळथी थायछे ते आत्माने कोण निवारण करी शके? माटे सातिशय आनन्दमय कोशनो पण परमार्थभूत निरतिशय परमा-

नंदरूप अने जेनी प्राप्तिने अर्थे अन्नमयादि पांच कोश केहेवाने आरंभ कर्या तथा ते ब्रह्म, पांचे कोशोथी पण आन्तर छे अने जे ब्रह्मनी सत्ताये करीने ए पांचे कोश आत्मा जेवा गणाय छे ते ब्रह्म, पुच्छरूप छे अने एज ब्रह्म, अविद्याये कल्पित सर्व द्वैतनुं अवधिरूप अद्वैत स्वरूप प्रतिष्ठा छे एवुं अद्वैत ब्रह्म, प्रतिष्ठारूप पुच्छ छे.

ए रीते त्वंपदार्थनुं शोधन करोने, तेनुं तत्पदार्थ साथे ऐक्यता जाणवा सारु श्री शंकर भगवाननुं वाक्यः—

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्
सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय।
साम्नामंते प्राह पिता यं विभुमाद्यं
तंसंसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे १

संक्षेपार्थः— 'सत्तामात्रं' एटले अस्ति एवा प्रत्यये करीने जाणवा योग्य तेमां श्रुतिप्रमाणः— "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्."'तथा 'केवलविज्ञानं' एटले सर्व विषयोथी निर्मुक्त चिन्मात्रस्वरूप, केमके वाचारंभण श्रुतिये करीने विषयोने मिथ्यात्व छे. वळी- 'अजं' (जन्म रहित) केमके "तत्सत्यं" ए श्रुतिये सत्यरूप कह्युं छे

अने जे सत्य होय ते नित्य (जन्म विनाश रहित) होय तथा 'सूक्ष्मं' एटले इंद्रियादिकनुं अविषय "स य एषोणुः" ए श्रुतिनां प्रमाणथी तथा 'विभुं' (सर्वत्र व्यापक) "सऽआत्मा" ए श्रुतिनां प्रमाणथी तथा 'आद्यं' एटले जगतनुं अभिन्ननिमित्तोपादानरूप "तदैक्षत प्रजायेय" ए श्रुतिनां प्रमाणथी १.

ए रीते शोधित तत्पदार्थसाथे शोधित त्वंपदार्थनी एकतानुं अनुसंधान करवुं एटले ईश्वरमां मायोपाधिक सर्वज्ञपणुं अने जीवमां अविद्योपाधिक अल्पज्ञपणुं ए बन्नेमां माया, अविद्या, सर्वज्ञत्व अने अल्पज्ञत्व ए उपाधिरूप वाच्य भागनो त्याग करीने केवल लक्ष्यार्थ जे 'ज्ञ' (चेतन) अंश तेनुं ग्रहण करी, ऐक्यपणानुं अवधारण करवुं; जेमके घटाकाश तथा मठाकाश केहेवाय छे, तेमांथी घट अने मठ ए बन्ने उपाधिनो त्याग करीये, त्यारे एकज महाकाश रेहेछे, ते प्रमाणे माया अने अविद्यानो त्याग करीने सत्य, ज्ञान, आनन्दरूप जे ब्रह्म, तेज हुं छौं एवो जे दृढ निश्चय एज अपरोक्षज्ञान, जेथी अविद्या अने तेनुं कार्य जे संसृति तेनो निवृत्ति तथा परमानंदनी प्राप्ति ए प्रयोजन सिद्ध थयुं.

उपर कहेली प्रक्रियाना निष्कर्षार्थरूप एवी चार भूमिकाओ श्री वसिष्ठ मुनिये कहेली छे त्यांहां श्लोकः-

(शुभेच्छा १.)

स्थितः किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्येहं शा-
स्त्रसज्जनैः । वैराग्यपूर्वमिच्छेति
शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥

अर्थः- निष्काम कर्मोनां अनुष्ठानथी मन शुद्ध थया नन्तर संन्यास अने साधनचतुष्टय संपत्तिये सहित अने मुक्तिमां जेनुं परिअवसान एवी अने श्रवणादिकने विषे प्रवृत्ति छे फल जेनुं एवी जे आत्माना साक्षात्कारनी उत्कट इच्छा, ते शुभेच्छाख्य पेहेली भूमि १.

(विचारणा २.)

शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपू-
र्वकम् । सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्य-
ते सा विचारणा ॥ २ ॥

अर्थः- गुरुशुश्रूषा, शौच इत्यादि जे सदाचार धर्मो तेणे सहित जे श्रवण मननने विषे प्रवृत्ति, ते विचारणाख्य द्वितीय भूमि २.

(तनुमानसा ३.)

विचारणाशुभेच्छाभ्यामिंद्रियार्थेष्व-
सक्तता । यात्र सा तनुताभावात्
प्रोच्यते तनुमानसा ॥ ३ ॥

अर्थः— साधनचतुष्टयसंपत्तिपूर्वक श्रवण मनने सहित एवां निदिध्यासनथकी जे मननी, शब्दादि विषयोने विषे असक्ति (आसक्तिनुं राहित्य) अर्थात् सविकल्प समाधिरूप सूक्ष्मता ते तनुमानसाख्य तृतीय भूमि ३.

(सत्वापत्ति ४.)

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेर्थे विर-
तेर्वशात् । सत्यात्मनि स्थितिः शुद्धे
सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ४ ॥

अर्थः— बाह्य पदार्थो विषे संस्कारना उच्छेदथी जे आत्यंतिक एवी चित्तनी विरति (निर्वासनता) तेनी स्थिरताथी शुद्ध (अविद्या अने तेहनां कार्यअवस्थात्रयथकी शोधित) अने सर्वनुं अधिष्ठानरूप एवा सन्मात्र आत्माने विषे क्षीर उदकनी पेठे (क्षीरमां जेम नीर एकता पामे छे तेम) त्रिपुटीना विलये करीने साक्षात्कार पर्यन्त

जे स्थिति, ते निर्विकल्प समाधिरूप सत्त्वापत्ति एटले प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मैक्यसन्मात्ररूपे करीने अवस्थान, ते सत्त्वापत्त्याख्य चतुर्थ भूमि. ए भूमिने विषे रहेलो जे पुरुष ते ब्रह्मवित् (जीवन्मुक्त) केहेवाय छे ४.

इति श्रीमदुदयशंकरात्मज
गौरीशंकर विरचिते
स्वरूपानुसंधाने
प्रथम प्रक्रिया
समाप्ता.
॥ १ ॥

अथ श्री स्वरूपानुसन्धाने

द्वितीय प्रक्रिया प्रारंभः

बृहदारण्यकनी श्रुति आत्मनिष्ठ पुरुषने विषे कायक्लेशनुं राहित्य देखाडे छेः—

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति
पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय
शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ १ ॥

अर्थः—भाष्यकार, विज्ञानमय आत्माथकी वैलक्षण्यपणुं जणाववाने अर्थे विशेषण आपे छे के "सर्वप्राणिमनीषितज्ञं" एटले सर्वप्राणीओना मनवांछित पदार्थोने जाणनार अने तटस्थपणानी निवृत्तिने अर्थे विशेषण आपे छे के "हृत्स्थं" (हृदयमां रेहेनार) वळी बुद्धिना संबंधे (तादात्म्य संबंधे) करीने प्राप्त थयुं संसारीपणुं निषेध करे छे के "अशनायादिधर्मातीतं" एटले क्षुधा तृषादिक धर्मोथी रहित एहेवा स्वरूपभूत कूटस्थ आत्माने सहस्र प्राणियो मध्ये कोइ एक कदाचित् जाणे (साक्षात्कार करे) एणे करीने आ-

त्मविद्यानुं दुर्लभपणुं द्योतन कर्युं; शी रीते जाणे? के आ एटले अपरोक्ष अने परम तथा सर्व प्राणिओना बुद्धि प्रत्ययोनो साक्षीभूत तथा " नेति नेति " इत्यादिक श्रुतिये सर्व निषेधनो अवधिभूत (परिशिष्टरूप) प्रतिपादन करेलो; वळो जेथी अन्य कोई पण द्रष्टा, श्रोता, मंता, विज्ञाता छे नहि; वळी सम अने सर्वभूतस्थ एटले सर्व भूतोनो अधिष्ठानरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव जे आनंदस्वरूप आत्मा, तेज हुं छौं ए प्रकारे जे-पुरुष जाणे, ते पोताना स्वरूपथकि अतिरिक्त फळभूत केइ वस्तुनी इच्छा करतो छतो अने स्वस्वरूपथकी अतिरिक्त कया अन्यना प्रयोजनने-माटे शरीरनी पाछळ तप्यमान होय? (शरीररूप उपाधिये करेलां दुःखनी पाछळ दुःखवान् होय?) अर्थात् न होय; जे अनात्मदर्शी पुरुष, ते तो आत्माथी अतिरिक्त वस्त्वंतरने विषे आ वस्तु मने प्राप्त थाय, आ वस्तु पुत्रनी, आ वस्तु भार्यानी ए प्रकारे इच्छा करतो छतो वारंवार जन्म मरणना प्रबंधने विषे आरूढ थयो छतो शरीरना आधि व्याधिनी पाछळ तप्यमान होय छे१.

इत्यादिक श्रुतिना अनुसारे विचारः— त्यांहां अन्तःकरणादिमां एटले लिंग शरीरादिकने विषे

जडस्वरूप हेतुथी बंध मोक्ष घटे नहि; तेमज अहंकारादिकथी विलक्षण, स्वयंप्रकाश कूटस्थ साक्षीने पण जाग्रतथी आरंभीने मोक्ष पर्यंत संसार घटे नहि; केमके ते असंग अने उदासीन छे. एवी शंका प्राप्त थये छते, अंतःकरणमां प्रतिबिम्बित अनिर्वचनीय चिच्छायानो अंगीकार कर्येथी समाधान थाय छे, तेमां आचार्यनी उक्तिनुं प्रमाणः—

चिच्छायावेशतो बुद्धौ भानं धीस्तु
द्विधा स्थिता। एकाहंकृतिरन्या स्या-
दंतःकरणरूपिणी ॥ १ ॥

अर्थः— आ ठेकाणे रजत सुवर्णादिकनी पेठे अनेक प्रकारना परिणामोने योग्य एवुं जे अंतःकरण एवा नामनुं द्रव्य ते बुद्धि शब्दे करीने जाणवुं; ते अन्तःकरणमां कर्तृत्व वृत्तिमान् जे अंश, तेने अहंकार जाणवो, अने करण वृत्तिमान् जे अंश, तेने बुद्धि जाणवी; (बुद्धि एटले जेणे करीने स्वरूपनो बोध थाय ते) ते बुद्धिमां साक्षी चैतन्यनां प्रतिबिम्बनो जे प्रवेश तेथकी भान होय छे; तात्पर्य ए के स्वभावथकी जडरूप छतां पण ए बुद्धि, प्रवेश थयेलां चैतन्यना बळथकीज प्रकाश-

मान जेवी होय छे; ते बुद्धि बे प्रकारनी छे- तेमां एक अहंकार शब्दे करीने वाच्य कर्त्ता रूप छे अने बीजी मन शब्दे करीने वाच्य अन्तःकरणरूप छे. कामादिक सर्वे परिणाम विशेषोनो मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ए अंतःकरण चतुष्टयने विषे अंतर्भाव करवाथी अने बुद्धिनो अहंकारमां तथा चित्तनो मनमां अंतर्भाव करवाथी अने वृत्तिमान् तथा वृत्ति ए बे आकारथी अतिरिक्त बीजो कोइ पण अन्तःकरणनो आकार निरूपण थइ शकतो नथी; माटे एक बुद्धिज पोतांना विकारने अनुसरनार प्रवेश थयेलां चैतन्ये सहित छति अहंकारशब्दे करीने वाच्य कर्तृत्व वृत्तिमान् रूप आकारे करीने तथा मन शब्दे करीने वाच्य करणात्मकवृत्तिरूप आकारे करीने बे प्रकारे रही छे. १

छायाहंकारयोरैक्यं तप्तायःपिंडवन्मतम् । तदहंकारतादात्म्याद्देहश्चेतनतामगात् ॥ २ ॥

अर्थः— चिदाभास तथा कर्त्तारूप अहंकारनां तादात्म्य संबंधे करीने ऐक्यपणुं, तपायमान अयःपिंडना जेवुं मान्युं छे एटले जेम दृष्टान्तमां आ अग्नि अने आ लोह ए रीते पृथक्-

रण थइ शकतुं नथी; तेमज दार्ष्टान्तिकमां पण आ अहंकार अने आ चिदाभास ए रीते अहंकारनुं तथा तेमां प्रविष्ट चिदाभासनुं, पृथक्करण थवुं अशक्य छे. ते चिदाभास सहित अहंकारना तादात्म्य अध्यासना संबंधथी स्थूल शरीर जड छतां पण चेतनताने (ज्ञानरूप आत्मस्वरूपताने) पामे; जेम परीक्षा करवा माटे पयमां नाख्यो एवो मरकत मणि, निःशेष पयने पोतानी छाया वाळुं होय तेवुं करी दे छे; तेमज कूटस्थ, असंग, बोधस्वरूप साक्षी चैतन्य पण अहंकारथी आरंभीने स्थूळ देह पर्यंत निःशेष युष्मदर्थने, पोतानी छाया वाळुं होय तेवुं करे छे. २ माटे चिदाभास, बंध मोक्षनो भाजन ठरे छे.

ते चिदाभास जीवनी सात अवस्था.

१ अज्ञान, २ आवरण, ३ विक्षेप, ४ परोक्षज्ञान, ५ अपरोक्षज्ञान, ६ शोकापगम अने ७ निरंकुशातृप्ति; तेहेमां त्रण बंधकृत अने एक अंतरालावस्था तथा त्रण मोक्षनी.

उपर लखेली त्रण बंधकृतमां प्रथम अवस्था मूलाज्ञान एटले स्वस्वरूपनुं अनादि काळथी अग्रहणरूप प्रमाद. बीजी आवरण शक्ति, तेहेनां कार्य्य बे– असत्वापाद तथ अभा-

नापाव एटले पोतानो स्वरूपभूत जे कूटस्थ ते छे नहि तथा भासतो पण नथी. त्रीजी विक्षेप शक्ति; तेहेनां कार्य्य बे- त्रण शरीरोमां हुं अने माहारापणानुं तथा स्त्री, पुत्र, गृह, क्षेत्र, द्रव्यादिकने विषे केवळ माहारापणानुं दृढ अभिमान तथा देहादिक जे असत्, जड अने दुःखरूप छे तेहेने विषे वैपरीत्यथी असत्मां सत्पणानी तथा जडमां चेतनपणानी अने दुःखरूपमां सुखरूपतानी बुद्धिने करावे अने आपातरमणीय एवा बाह्य सर्व विषयो जे के परिणामे विष तुल्य छे तेहेने विषे रमणीय (शोभन) बुद्धिथी आसक्ति पूर्वक बहिःप्रवृत्ति करावे पण ते आसक्तिनां राहित्ये करीने अंतर्मुख थवा दे नहि. ए त्रण्ये अवस्था बंधकृत् छे. चोथी अंतरालावस्था त्यांहांश्लोकः—

जातीशतेषु लभते किल मानुषत्वं
तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम् ।
तद्यो न पालयति लालयतींद्रियाणि
तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥१॥

अर्थः— अनेक जातीओ मध्ये मनुष्य जाती प्राप्त थवी दुर्लभ छे, तेमां पण ब्राह्मण जाति

प्राप्त थवी अति दुर्लभ छे; ते ब्राह्मणत्व कोइ मोहोटा सुकृत विशेषे प्राप्त थये छते पण जे पुरुष, पोतानां इंद्रियोने अंतर्मुखतानां संपादनथी पालन करे नहि एटले आत्माकार करे नहि, किंतु ते इंद्रियोने बाह्य विषयोने विषेज आसक्त थको लालन करे (विषयोने विषे संलग्न रहे) ते पुरुषने, प्रमादना वशथी हाथमां प्राप्त थयेलुं अमृत जतुं रेहे छे; अर्थात् तेहेनुं जीव्युं व्यर्थ छे. १ माटे कोई सुकृत विशेषथी मनुष्यावतार, तेहेमां ब्राह्मण शरीर प्राप्त थये प्रथम शिव, विष्णु, देवी, गणपति, सूर्य ए पंचायतन देवनुं पूजन तथा शिव पंचाक्षरनो जप विगेरे करवुं; त्यांहां श्रुतिः—

"उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशांतम्"

अर्थः— अनुपम युवति रूपे वामांकने विषे रहेली उमारूप ब्रह्म विद्या छे भक्तोने कामादिक चौरथकी रक्षण करनारो सहायभूत जेहेने तथा 'परमेश्वरं' एटले उत्कृष्ट अने ब्रह्मादिकनो पण नियंता तथा 'प्रभुं' (समर्थ) तथा 'त्रिलोचनं' एटले सोम, सूर्य, अग्निरूप त्रण छे नेत्र जे-

हेने तथा 'नीलकंठ' (विषपानथी श्याम छे कंठ जेहेनो) तथा प्रकर्षे करीने शांत एवा चिदानंद स्वरूप शिवनुं ध्यान करवुं.

ए रीते ईश्वरनी स्तुति, वंदन, तीर्थ, दानादिथी पुण्य विशेषेकरी अन्तःकरण शुद्ध थयुं छे जेनुं एवा साधन चतुष्टय संपन्न अधिकारीए, वेदांत शास्त्र उपर तथा वेदांत वक्ता ब्रह्मनिष्ठ गुरु उपर श्रद्धा थये तेमना सन्निधानमां, वेदांत श्रवणथी प्रथम सगुण ब्रह्म (माया विशिष्ट विराट् हिरण्यगर्भादि) अने निर्गुण ब्रह्म (मायाथी रहित अक्षर अद्वितीय) नुं परोक्षज्ञान थया नंतर दृश्य द्रष्टा तथा साक्ष्य साक्षीना विवेकथी त्वं पदार्थनुं शोधन तथा अध्यस्त अधिष्ठान अने कार्य कारणना विवेकथी तत्पदार्थनुं शोधन करवुं; तेहेमां

त्वं पदार्थना शोधननो प्रकार.

दृश्य द्रष्टानो विवेक.

नीलपीतस्थूलसूक्ष्मन्हस्वदीर्घादि-
भेदतः । नानाविधानि रूपाणि
पश्येल्लोचनमेकधा ॥ १ ॥

अर्थः— दृश्यतामां नानात्व हेतु छे तथा द्र-

द्यापणामां एकत्व हेतु छे माटे नील, पीत, स्थूळ, सूक्ष्म, ऱ्हस्व, दीर्घ इत्यादि नानात्वथी रूप दृश्य होय छे अने चक्षुरिंद्रिय पोताना स्वरूपनो भेद ग्रहण न करतां छतां एक रूपेज सर्वे रूपोने ग्रहण करे छे माटे चक्षु द्रष्टा होय छे. १ हवे ए चक्षुने दृश्यपणुं अने तेथी आंतरीय द्रष्टा मन छे तेनो विचारः—

आंध्यमांद्यपटुत्वेषु नेत्रधर्मेषु चैकधा । संकल्पयेन्मनः श्रोत्रत्वगादौ योज्यतामिदम् ॥ १ ॥

अर्थः— सामान्य आकारे पण पोताना विषय नील पीतादि रूपनां ग्रहणनुं जे असामर्थ्य ते अंध केहेवाय छे तथा सामान्य आकारे विषयनुं जे ग्रहण ते मांद्य केहेवाय छे अने पोताना विषयोना सूक्ष्म विशेष आकार ग्रहण करवानुं जे सामर्थ्य ते पटुत्व केहेवाय छे; ए रीते आंध्य, मांद्य, पटुत्व इत्यादि नेत्रना नाना धर्मोने एक रूपेज मन, संकल्प करे छे; जेमके माहारुं चक्षु अंध छे, माहारुं चक्षु मंद छे, माहारुं चक्षु पटु छे ए रीते मन, एक रूपेज संकल्प करे छे माटे ते द्रष्टा छे अने आंध्य मांद्यादि नाना छे माटे दृश्य छे; ए

प्रकारे श्रोत्र, त्वक्, जिव्हा, घ्राण ए चार इंद्रियोने विषे पण पोतपोताना विषयोनी अपेक्षाये द्रष्टापणुं तथा पोतानुं भासक मननी अपेक्षायें दृश्यपणुं अने योग्यता प्रमाणे बधिरत्वादिक पण योजना करवां. १

हवे मनने दृश्यपणुं अने तेहेना आंतरीय साक्षीने द्रष्टापणुं तेहेनो विवेक.

कामः संकल्पसंदेहौ श्रद्धाश्रद्धे धृतीतरे । ह्रीर्धीर्भीरित्येवमादीन्भासयत्येकधा चितिः ॥ १ ॥

अर्थः— रज्जुनां अज्ञानथी रज्जुने विषे आरोपित सर्पादिकने जेम रज्जु, एक रूपे करीने भासमान करे; तेमज स्वरूपनां अज्ञानथी स्वरूपने विषे आरोपित एवा काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, धृति, अधृति, धी, भी ए सर्वे मनज छे. १

ए प्रकारे बृहदारण्यकनी श्रुतिने विषे कहेला कामादिकने तथा ऐतरेय उपनिषदमां कहेला संज्ञा आदिक सर्वे अंतःकरणना वृत्तिविशेषोने स्वगत, सजातीय, विजातीय भेदे रहित तथा सत्, चित्, आनंद छे लक्षण जेहेनां एवां ब्रह्मथी अभिन्न कूटस्थ प्रत्यक् स्वरूप सर्वनी साक्षीरू-

प जे आनंदात्मा चिति, ते एक रूपेंज एटले नि-
र्विकारी रूपेंज स्वभास्य अवस्तुभूत जे मन अ-
ने तेह्ना विकार एवा कामादिक तेने प्रकाशमा-
न करे छे ते सदा काळ द्रष्टारूपज छे रूपादिक-
नी पेठे दृश्य नथी; केमके षड्भाव विकार रहित
छे अने स्वप्रकाश छे. त्यांहां श्रुतिः—

"नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो
विद्यतेऽविनाशित्वात्"

साक्ष्य साक्षीनो विवेक.

शब्दस्पर्शादयो वेद्या वैचित्र्याज्जा-
गरे पृथक्। ततो विभक्ता तत्संवि-
दैकरूप्यान्नभिद्यते ॥ १ ॥

अर्थः— जाग्रत अवस्थाने विषे दृश्य एवा जे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध विषयो ते एक बीजाथी विचित्र छे माटे भिन्न भिन्न छे अने ते शब्दादिकथी पृथक् कर्युं एवुं जे ज्ञान ते एकरूप छे; जेमके शब्द ज्ञान, स्पर्श ज्ञान, रूप ज्ञान, रस ज्ञान, गंध ज्ञान ए रीते सर्वे ज्ञेय विषयोमां ज्ञाननी एकरूपता छे माटे ते ज्ञान भेद पामतुं नथी. १

ए रीते स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति अवस्थामां पण जे विषयो छे ते ज्ञेयरूप छे अने तेह्नो ज्ञानरूप साक्षी एकरूपेज वर्त्ते छे एटले जाग्रदादि तथा बाल्यादि अवस्थाओ परस्पर व्यभिचारने पामे छे पण तेह्नो ज्ञानरूप साक्षी, ए अवस्थाओमां अनुस्यूतपणे अव्यभिचारी छतां तेह्नो अनुभव करे छे.

तत्पदार्थमां अध्यस्त अधिष्ठाननो विवेक.

जेम रज्ज्वादिरूप अधिष्ठानने विषे सर्प आदिक अध्यस्त छे, तेमज पंच भूत तथा भौतिक नामरूपात्मक सर्व प्रपंच अस्ति, भाति, प्रियरूप अधिष्ठानभूत ईश्वर तत्त्वने विषे अध्यस्त (कल्पित) छे; त्यांह्नां श्री आचार्यनुं वचनः—

मूर्त्तामूर्त्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ
दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय ।
चैतन्यांशे स्वात्मनि संतं च विदुर्यं
तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे ॥ १ ॥

अर्थः— 'समाधौ' एटले जेने विषे चित्तनुं समाधान कराय एवा विष्णुरूप तथा 'चैतन्यांशे' एटले जडांशनो परित्याग करीने अवशिष्ट चिन्मात्र स्वरूप एवा प्रत्यगात्मा (प्रत्यक् अभि-

न्न विष्णुरूप अधिष्ठान) ने विषे आरोपित एवा पृथ्वी, अप्, तेजरूप मूर्त्त प्रपञ्चने तथा वायु, आकाशरूप अमूर्त्त प्रपञ्च (दृश्यत्वे करीने भासमान सर्व अध्यस्त वर्ग) ने "नेति नेति" ए श्रुतिनां अवलंबनथी निषेध करीने, ए निषेधना अवधिरूपे करीने विद्यमान अधिष्ठान सन्मात्र जेने विद्वानो जाणेछे ते विष्णुनी हुं स्तुति करुं छौं. १

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पखंडं न तिष्ठति । अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां गतः ॥ १ ॥

कार्य कारणनो विवेक.

जेम कार्यरूप घट शरावादिक, मृत्तिकारूप कारणथी अभिन्न छे तथा कटक कुंडलादि कार्य, तेहना कारणभूत सुवर्णथी अभिन्न छे एवो अनुभव सर्वने छे अने वाचारंभण श्रुति पण एमज केहेछे; तेमज नाम रूपात्मक कार्य्यरूप सर्व प्रपञ्च सत्, चित्, आनंद कारणरूप ईश्वरथी अभिन्न छे; त्यांहां श्रुति " एकविज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति " " ब्रह्मैवेदं सर्वं " इत्यादि श्रुतिनां

ए रीते स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति अव
पण जे विलयो छे ते ज्ञेयरूप छे अने तेहने
रूप साक्षी एकरूपेज वर्त्ते छे एटले
तथा बाल्यादि अवस्थाओ परस्पर व
पामे छे पण तेहेनो ज्ञानरूप साक्षी, ए अ
मां अनुस्यूतपणे अव्यभिचारी
अनुभव करे छे.

सर्पमां अव्यक्त अधिष्ठानने

जेम रज्ज्वादिरूप अधिष्ठानने
कि अव्यक्त छे, तेमज पंच भूत
सर्व प्रपंच अस्ति,
अविकृत ईश्वर तत्त्वने विषे
) छे, त्यांहां श्री आचार्यनु

मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ सम
ह्यं सर्वं नेति च नेतीति
चैतन्यांशे स्वात्मनि संतं
ं संसारध्वांतविनाशं हरि

स्थळे जे
स्व ईश्वरूप कारणरूप
एकविज्ञा
इदं सर्व

[illegible]) ने किंवे आरोपित एक
[illegible] पूर्ण [illegible] तस्य [illegible]
[illegible] ([illegible])
[illegible]) ने "नेति नेति"
[illegible] निषेध [illegible]
[illegible] किंवा [illegible]
[illegible] ने [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] सर्वं [illegible]
[illegible]
[illegible]ज्ञानेन सर्वं विज्ञातं [illegible]
[illegible]खल्विदं सर्वं" [illegible]

प्रमाणथी. उपर प्रमाणे विवेचननां सहायभूत श्रद्धादि अंतरंग साधन संबंधि श्लोकः–

श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैर्यतमानै
र्ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः ।
दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि विनातै
स्तंसंसार० ॥ १ ॥

अर्थः– 'श्रद्धा' (श्रुति तथा गुरुवाक्यने विषे विश्वास) 'भक्ति' (गुरुने विषे अने विष्णुने विषे प्रेम) 'ध्यान' (गुरुनां मुखथी उपदेश करेलां ब्रह्मने विषे विजातीय प्रत्ययनो तिरस्कार पूर्वक सजातीय प्रत्ययना प्रवाहनुं संपादन) 'शम' (विषयोथी अंतःकरणनी व्यावृत्ति) 'आदि' शब्दे करीने दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान ग्रहण करवां; ए साधनोए करीने प्रयत्न करता एवा मुमुक्षु जनोने जे 'देवः' (स्वप्रकाश परमेश्वर) 'इहैव' आज युगने विषे अने आज जन्मने विषे तथा आज देहने विषे शीघ्र प्रत्यक् रूपे करीने साक्षात्कार करी शकाय परंतु उपर कहेलां साधनो विना तो 'जन्मशतैः' एटले अनेक जन्मे करीने तथा अनेक शास्त्रे

करीने अने अनेक पांडित्ये करीने पण जे प्रत्यक् अभिन्न विष्णु दुर्विज्ञेय छे (साक्षात्कार थाय नहि.)

त्यांहां श्रुतिः—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशांतो नासमाहितः। नाशांतमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ १ ॥

अर्थः— 'निषिद्ध' एटले अशास्त्रीय कर्मोथी विराम न पामतो तथा 'अशांत' एटले विषयोथी जेहेनुं चित्त निवृत्त थयुं नथी एवो तथा 'असमाहितः' एटले समाधिनां अनुष्ठाने रहित तथा 'अशांतमानसः' एटले कांई निमित्त छते काम क्रोधादिकनो करनार अने 'अपि' शब्दथकी स्थित प्रज्ञादिकने विषे कहेलां लक्षणोथी रहित एवो पुरुष 'प्रज्ञानेन' एटले संशय, असंभावना, विपरीतभावनारूप प्रतिबंधोये रहित ज्ञाने करीने 'एनं' एटले पूर्वोक्त साधने सहित पुरुषोये अपरोक्षताथी अनुभव करेला निरतिशयानंदरूप आत्माने पामतो नथी; साधन रहित पुरुषने प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मना साक्षात्कारनो संभावना मात्र पण नथी. ए श्रुतिनो तात्पर्यार्थ. १

४

वळीः-

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभू-
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥

अर्थः- 'स्वयंभू' एटले स्वतःज सर्वदा स्वतंत्र होनार परमेश्वर,'परांचि' एटले बाह्य विषयोना प्रकाशने अर्थे 'पराक्' एटले बाहार प्रवृत्त थनारां एवां 'खानि' एटले श्रोत्रादि इंद्रियोने 'व्यतृणत्' एटले हिंसा करतो हवो; अभिप्राय ए के, ज्यारे इंद्रियो अंतर्मुख होय त्यारेज आत्मनिष्ठताए करीने अमृतपणाने पामे, अन्यथा नहि; माटे कर्मना अनुसारे तेने बहिर्मुख सृज्यां, एज एनी हिंसा; ते कारणथी उपलब्धा (प्रमाता) पराक् (अप्रत्यक्) रूप अनात्मभूत एवा बाह्य शब्दादि विषयोनेज 'पश्यति' एटले जोतो छतो संलग्न रहे; सर्व लोकनो एवो स्वभाव छते पण महा नदीना प्रवाहनी सन्मुख चालवानी पेठे कोइ एकज 'धीर' (धीमान् विवेकी) पुरुष, प्रत्यक् आत्माने (आ ठेकाणे आत्मा शब्द, रूढी वृत्तिथी प्रत्यक् स्वरूपने विषेज लोकमां प्रसिद्ध-

छे अने व्याकरणनी रीते व्युत्पत्ति पक्षमां (यौगिक वृत्ति विषे) पण प्रत्यक् स्वरूप विषेज आत्मा शब्दनी प्रवृत्ति छे; तेमां स्मृतिनुं प्रमाणः—

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह। यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्तितः ॥ १ ॥

अर्थः— 'अतति व्याप्नोतीति आत्मा' (जे सर्वत्र व्यापे ते आत्मा) वळी ' अतति आदत्ते इति आत्मा '(जे सर्व जगत्ने पोताने विषे उपसंहार करे अर्थात् उपादानरूप ते आत्मा) ' अतति विषयानत्तीत्यात्मा ' (जे विषयोने भोगवे एटले पोतानाज चैतन्याभासरूपे करीने उपलब्धा ते आत्मा) वळी ' अतति सततं भवतीत्यात्मा ' (जे हेतुथी ए प्रत्यक् स्वरूपनीज कल्पित अध्यस्तने विषे मिथ्यापणाथी निरंतर सत्ता छे माटे ते प्रत्यक् स्वरूपज आत्मा. १ ते प्रत्यगात्माने) जुवे छे; शी रीते ? के ' आवृत्तचक्षुः ' एटले शब्दादिक विषयोथी निवृत्त थयां (पाछां वळ्यां) छे चक्षुरादिक इंद्रियो जेनां माटे एवा संस्कारवाळोज पुरुष, प्रत्यगात्मानो साक्षात्कार करी शके छे; केमके बाह्य विषयोनुं पर्यालोचन अने

प्रत्यगात्मानुं ईक्षण ए बेउ एक पुरुषने विषे एक काळे संभवेज नहि. एवा शा फळनी इच्छाथी मोटा प्रयत्ने करीने इंद्रियोनी बहिःप्रवृत्तिनो निरोध करीने धीर पुरुष, प्रत्यगात्मानो साक्षात्कार करे ? एवी शंका थये छते प्रयोजन कहेछे के ' अमृतत्वमिच्छन् ' एटले अमरण धर्मत्वने इच्छतो छतो; अर्थात् मुक्तस्वभावतानी जे प्राप्ति तेज फळ. १

उपर कहेलां साधनोथी प्राप्त थवा योग्य स्वस्वरूपनो विचार, त्यांहां गुरु शिष्यना प्रश्नोत्तरनो श्लोकः—

शिष्यः— ' कोयं देवः ' (स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप देव कोण ?)

गुरुः— ' मनःसाक्षी ' (अंतःकरणनो साक्षात् जोनार.)

शिष्यः— ' मनो मे दृश्यते मया ' (माहारा अंतःकरणनो जोनार तो हुंज छौं.)

गुरुः— ' तर्हि देवस्त्वमेवासि ' (त्यारे स्वप्रकाश आत्मदेव तुंज छो.)

शिष्यः—तेहेमां प्रमाण शुं ?

गुरुः— ' एको देव इति श्रुतेः ' त्यांहां श्रुतिः—

(श्वेताश्वतरनो)

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥ १ ॥

अर्थः– ' एकः ' ए पदे करीने पुराणोमां प्रसिद्ध एवा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रोना भेदनुं निवारण जाणवुं, तथा ' देवः ' एटले स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप; ते देव क्यांहां रहे छे? एवी आशंका उपर कहेछे, के ' सर्वभूतेषु गूढः ' एटले ब्रह्माथी आरंभोने पिपीलिका पर्यंत सर्व प्राणीओने विषे रहेलो; त्यारे तेहेनो अनुभव केम न थाय ? ए शंका उपर कहेछे, के ' गूढः ' एटले गुप्त- अर्थात् अज्ञाने करीने आवृत छे; माटे सामान्य प्रज्ञावान् पुरुषोने अनुभवमां आवतो नथी. ते देवने विषे देश, काळ अने वस्तुरूप त्रण प्रकारना परिच्छेदनुं राहित्यपणुं कहेछे, के ' सर्वव्यापी ' एटले देश, काळ, जीव, ईश्वर अने जगत् ए सर्वने व्यापीने रहेनार. परस्पर सजातीय भेदनुं निवारण करे छे, के ' सर्वभूतांतरात्मा ' एटले पोते चैतन्यमात्र

स्वरूप एक छतो ब्रह्मादि स्थावरांत सर्व भूतोने विषे जीवरूपे करीने अंतःप्रवेश करी रहेनार; तेज आत्मदेव, शुद्धसत्वप्रधान मायाने विषे प्रतिबिंबित ईश्वररूप छतो सर्वेने कर्मोनां फळनो प्रदाता छे ए वात कहेछे, के 'कर्माध्यक्षः' एटले पोते अधिष्ठातारूपे पुण्यपापरूप कर्मोनां फळनो प्रदाता. विजातीय भेदनुं निवारण करे छे, के 'सर्वभूताधिवासः' एटले सर्व भूतभौतिकनुं अधिष्ठानरूप; अर्थात् आरोपितने अधिष्ठानथी अव्यतिरिक्त पणुं छे माटे विजातीय जड भेद पण संभवतो नथी. ते आत्मदेवने जीव ईश्वररूपे रहेवाथी प्राप्त थयुं एवुं पुण्य पापकर्मोनुं कर्त्तृत्वपणुं तथा जगत् स्त्रष्टृत्वादिकनुं निवारण करे छे, के 'साक्षी' एटले पोताना सन्निधानमां प्रवृत्त थतां एवां कार्य कारणादिक जगत्नो तथा जगदाकारे परिणाम पामनारी अविद्यानो साक्षात् जोनार. साक्षित्वमां हेतु कहेछे, के 'चेताः' एटले चैतन्यमात्र स्वरूप. आत्मदेवने साक्षित्व छते साक्ष्य विषयोने विषे ईक्षण कर्त्तृत्वरूप विकारीपणुं आवशे एवी शंका थये आत्मवस्तुने विषे साक्षित्वादिक विशेषोनुं राहित्यपणुं कहेछे, के 'केवलः' एटले ईक्षण कर्त्तृत्वादि सर्व विशेषोये रहित छे. ज्ञान आनंद

इत्यादिकने केटला एक गुणरूप माने छे अने ब्रह्मने गुणी माने छे तेहेनुं निवारण करे छे, के ‘ निर्गुण ’ एटले गुण रहित छे “ विज्ञानमानंदं ब्रह्म ” ए श्रुतिनां प्रमाणथी ज्ञान आनंदादि स्वरूपभूतज छे गुणरूप नथी.

ए प्रमाणे परोक्षज्ञानरूप चोथी अवस्था सिद्ध थया नंतर महावाक्यजन्य जीव ब्रह्मनी एकतारूप अपरोक्षज्ञान ए पांचमी अवस्था.

महावाक्य.

प्रज्ञानं ब्रह्म. (ऋग्वेदनुं.)

येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च । स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ १ ॥ चतुर्मुखेंद्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु । चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥ २ ॥

अर्थः— चक्षुरिंद्रियनी द्वाराये बाह्य नीकळी अंतःकरणनी वृत्तिमां उपहित (उपाधिमां रहेलुं) जे चैतन्ये करीने पुरुष, रूपादिकने जुवे छे तथा श्रोत्र द्वारा बाहार नीकळी अंतःकरणनी वृत्तिमां उपहित जे चैतन्ये करीने शब्दना समूह-

ने ग्रहण करे छे तथा घ्राण द्वारा बाह्य निर्गत अन्तःकरणनी वृत्तिमां उपहित जे चैतन्ये करीने गंधना समूहने सुंघे छे तथा वाक् इंद्रिये अवच्छिन्न जे चैतन्ये करीने शब्दना समूहने उच्चार करे छे तथा रसना इंद्रिय द्वाराये बहिर्निर्गत अंतःकरणनी वृत्तिमां उपहित जे चैतन्ये करीने स्वादु अस्वादु रसने जाणे छे ते चैतन्यने 'प्रज्ञान' ए प्रकारे श्रुतिये कह्युं छे. १ उत्तम एवा ब्रह्मादिक देवोने विषे तथा मध्यम एवा मनुष्यने विषे अने अधम एवा अश्व गवादिकने विषे तथा आकाशादिक भूतने विषे जे एक चैतन्य छे ते ब्रह्म जाणवुं अने माहारे विषे पण ते प्रज्ञानथी अभिन्न ब्रह्मज छे. २

अहं ब्रह्मास्मि. (यजुर्वेदनुं.)

परिपूर्णः परात्माऽस्मिन्देहे विद्याधिकारिणि । बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥ ३ ॥

स्वतः पूर्णः परात्माऽत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः । अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्मभवाम्यहम् ॥ ४ ॥

अर्थः— देश, काळ, वस्तुथी अपरिच्छिन्न एवो परमात्मा, आ मायाये कल्पित अधिकारी मनुष्यादि शरीरने विषे सूक्ष्म शरीरनो साक्षी (अवभासक) रूपे रहिने प्रकाशमान छतो 'अहं'पद लक्ष्य कहेवाय छे. ३ स्वभावे करीनेज देश काळादिथी अपरिच्छिन्न एवो पूर्वोक्त परमात्माने आ महावाक्यमां 'ब्रह्म' शब्दे करीने लक्षणाथी कह्यो छे अने 'अस्मि' ए पदें करीने बन्नेनुं सामानाधिकरण्य कह्युं छे; माटे जे ब्रह्म तेज हुं छौं. ४

तत्त्वमसि. (सामवेदनुं)

एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् । सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥ ५ ॥ श्रोतुर्देहेंद्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम् । एकताग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥६॥

अर्थः— "सदेव सोम्य" ए वाक्ये सृष्टिथी पूर्वे नाम रूपादि रहित जे सद्वस्तु प्रतिपादन कर्युं छे ते सद्वस्तु, विचार दृष्टिये हमणां पण जे नाम रूपादि रहित छे ते 'तत्' पद लक्ष्य

जाणवुं. ५ श्रोता शिष्यनुं स्थूळ, सूक्ष्म, कारण त्रण्ये देहथी विलक्षण एवुं जे साक्षीरूप सद्वस्तु, ते 'त्वं' पद लक्ष्य जाणवुं, 'असि' ए पदे बन्नेनुं ऐक्य प्रतिपादन कर्युं छे माटे मुमुक्षु जने ते ऐक्य अनुभव करवुं. ६

अयमात्मा ब्रह्म. (अथर्ववेदनुं)

स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो
मतम् । अहंकारादिदेहांतात्प्रत्यगा-
त्मेति गीयते ॥ ७ ॥ दृश्यमानस्य
सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते । ब्रह्मश-
ब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥८॥

अर्थः— 'अयं' ए पदे करीने स्वप्रकाश अने अपरोक्षत्व जाणवुं अने अहंकारथी आरंभीने स्थूळ देह पर्यंत संघातथी प्रत्यक् एटले अधिष्ठानत्व साक्षित्वरूपे स्थित जे वस्तु, ते 'आत्मा' रूप जाणवुं. ७ आकाशादिक सर्व जगतनुं अधिष्ठानरूप अने ते सर्वना बाधना अवधिरूपे पारमार्थिक जे सच्चिदानंदरूप छे ते 'ब्रह्म' शब्दे करीने जाणवुं; ते ब्रह्म, स्वप्रकाश आत्माथी अभिन्नरूपज छे. ८

ए प्रमाणे "यत्साक्षादपरोक्षब्रह्म" ते हुं छौं- एटले जीव कूटस्थमां परिच्छिन्नत्व अने ईश्वर कूटस्थमां परोक्षत्व ए बन्ने वाच्य भागनो त्याग करीने लक्ष्य भाग जे अखंडार्थ तेहेनुं "सोऽयं देवदत्त"नां दृष्टांतनी रीते ग्रहण करवुं; जेथी ईश्वर कूटस्थ, जीव कूटस्थमां एकताने पाम्यो एटले तेहेतुं परोक्षपणुं मटीने अपरोक्ष थयो अने जीव कूटस्थ, ईश्वरकूटस्थमां एकताने पाम्यो एटले तेहेनुं परिच्छिन्नत्व मटीने अपरिच्छिन्नत्व थयुं.

छठ्ठी अवस्था शोकापगम.

त्यांहां ईशावास्यश्रुतिः—

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ १ ॥

अर्थः— जे ज्ञानी पुरुषने जे काळने विषे सर्व जगत् वास्तव आत्मस्वरूपनां दर्शनथी आत्मारूपज निष्पन्न थयुं ते एकत्वदर्शि ज्ञानी पुरुषने ते काळने विषे शोक शो ? अने मोह शो ? एटले कामनानुं बीजभूत शोक मोह ते अज्ञानथी होय छे परंतु विशुद्ध अने आकाशोपम एवां

आत्मैकत्वने जोनार ज्ञानीने शोक अने मोह संभवे नहि; केमके कारणभूत जे अविद्या, तेहेनो बाध थई गयो छे. १

त्यांहां एकत्वमां छांदोग्य श्रुतिः—

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति
नान्यद्विजानाति स भूमा ॥

अर्थः— जे स्वरूपतत्त्वने विषे अन्य द्रष्टा अन्य करणे करीने अन्य द्रष्टव्यने जोतो नथी तथा अन्य श्रोता अन्य करणे करीने अन्य श्रोतव्यने श्रवण करतो नथी तथा अन्य विज्ञाता अन्य करणे करीने अन्य विज्ञेयने जाणतो नथी ते भूमा; अर्थात् लोक प्रसिद्ध दर्शन, श्रवणादिकनो जे अविषय व्यापक आनंद स्वरूप ते भूमा. "आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"

ए श्रुतिनां व्याख्यानतुं अवधारण करवुं; ए अर्थ विषे वासिष्ठमां श्री रामचंद्रजीनुं वाक्यः—

अखिलमिदमहं ममैव सर्वं त्वहमपि-
नाहमथेतरच्च नाहम् । इति विदित-
वतो जगत्कृतं मे स्थिरमथवास्तुग-
तज्वरो भवामि ॥ १ ॥

तात्पर्यार्थः— तादात्म्य अध्यारोपनी दृष्टिये तो सर्व पण अहंकारादि जगत् हुंज छौं, अने संसर्ग अध्यारोपनी दृष्टिये तो सर्व पण म्हारुंज छे; तथा अपवाद दृष्टिये तो अहंताना आरोपमां निमित्तभूत एवो अहंकार पण हुं नहि, त्यारे इतर एवा देहादिरूप नहि होउ तेमां कहेवुंज शुं? ए रीते अध्यारोप अपवादे करीने स्वरूपतत्त्वनो साक्षात्कार करतो एवा मने (माहारी दृष्टिये) आ जगत् कृत्रिम (मायामय) एवुं हो अथवा अकृत्रिम (आत्मरूप)ज हो; ए बेउ प्रकारे पण हुं आध्यात्मिकादि ज्वर रहितज छौं. १

सातमी अवस्था निरंकुशा तृप्ति.

अजोहमक्षरोहं प्राज्ञोहं प्रत्यगात्मबोधोहम् । परमानंदमयोहं परमशिवोहं भवामि परिपूर्णः॥ १ ॥

अर्थः— जन्म रहित माटेज अक्षर (विक्रिया रहित ईश्वर) अने व्यक्तिव्यक्तिने विषे प्रकाशक ज्ञानरूप अने परम आनंदमय, परम शिवरूप अने परिपूर्ण एवो होउ छों. १

ज्ञानमहं ज्ञेयमहं ज्ञाताहं ज्ञानसाध-

नगणोहम् । ज्ञाताज्ञानज्ञेयविनाकृत-
मस्तिलमात्रमेवाहम् ॥ १ ॥

अर्थः— पदार्थनी ग्रहण करनार वृत्तिरूप 'ज्ञान' हुंज छौं; तथा 'ज्ञेयं' एटले ज्ञाननो विषय पण हुं; तथा 'ज्ञाता' एटले वृत्तिद्वाराये विषयनुं ज्ञानवान् पण हुं; तथा ज्ञाननुं साधनभूत इंद्रिय समूह पण हुं; तथा ज्ञाता, ज्ञान अने ज्ञेय ए त्रिपुटिये रहित सन्मात्र पण हुंज छौं. १

अहंकारातीतो विषयविरहः स्वात्म-
रसिको निराधारो ज्योतिर्भ्रमरचि-
तसंबंधरहितः। श्रुतीनां सिद्धान्तो प-
रिमितवपुः स्वानुभवतः स नित्यो
बोधात्मा निरवधिरहं सौख्यजलधिः १
स्वतः शुद्धो बुद्धः समरसपरानंदवित-
तो धियां साक्षी वृत्तेः प्रलयमुदयं-
वेत्ति सततम्। क्रियां यः कर्त्तारं विष-
यमथ आभासयति च स्वयंज्योतिः
सोहं हृदयकमलार्कोस्मि सुखदः ॥ २ ॥

अर्थः— हुं अहंकारथी अतीत छौं; तथा बाह्याभ्यंतर सर्व विषयोना विरह (वैरस्य) थी स्वा-

त्मस्वरूपने विषेज रसिक छौं; तथा निराधार छौं अने स्वप्रकाश छौं; तथा भ्रांतिथी रचेला सर्व पदार्थोना संबंधे रहित छौं; तथा सर्व श्रुतियोनो सिद्धान्तरूप छौं; तथा अपरिच्छिन्न स्वरूप छौं; तथा अनुभवरूप छौं; नित्य छौं; बोधस्वरूप छौं; निरवधि (व्यापक) छौं; अने आनंदनो सागररूप छौं. १ हुं स्वतः शुद्ध छौं; तथा बोधरूप छौं; तथा समरस, परम आनन्दरूप अने व्यापक छौं; तथा जे साक्षी बुद्धिनी वृत्तियोना प्रलयने अने उदयने तथा क्रियाने तथा कर्त्ताने तथा विषयोने प्रकाश करे छे ते स्वप्रकाश साक्षीरूप हुं छौं; तथा हृदय कमळनो प्रकाशक अर्करूप अने सर्वे प्राणियोने आनन्दनो आपनार हुंज छौं. २

उपर प्रमाणे पर्यालोचनथी निरंतर श्रद्धा पूर्वक आत्मा परमात्माना एकत्वनो दृढ बोधरूप जीवन्मुक्ति सिद्ध थई. ए अर्थने विषे वासिष्ठमां शिखिध्वज राजानां वाक्योनी पण संमति. (श्लोको)

त्वत्प्रसादेन भगवन् दृष्टा दृश्याति-
गा गतिः। प्राप्तः संसारसीमांतो ल-
ब्धो लब्धव्यनिश्चयः॥ १ ॥ चिराद-
तिचिरेणैव विश्रांतोस्मि निरामयः।

लब्धं लब्धव्यमखिलं तृप्तः संश्चिरसंस्थितः ॥२॥ नोपदेष्टव्यमस्माकं किंचिदप्युपयुज्यते । सर्वत्रैवातितृप्तोस्मि संस्थितोस्मि गतज्वरः ॥३॥ ज्ञातमज्ञातमप्राप्तं त्यक्तंत्यक्तव्यमाश्रितम्। तत्त्वं परत्वं सत्वं मे स्वस्यैवास्ति न किंचन ४ निः संसृतिर्विगतमोहभयो विरागो नित्योदितः समसमाशयसर्वसौम्यः। सर्वात्मकः सकलसंकलनावियुक्त आकाशकोशविशदः सममास्थितोस्मि ॥ ५ ॥

अर्थः— भगवन् हे कुंभ मुने! तमाराप्रसादे करीने सर्व दृश्य वर्गने अतिक्रमण करीने रहेनार जे स्वरूप तेहेनो साक्षात्कार मने थयो; तथा संसारना सीमांतने पण हुं पाम्यो, अने जे लब्धव्य स्वरूप ते निश्चये करीने प्राप्त थयुं. १ तथा चिर कालथी पण अति चिर काले करीने परम पदने विषे विश्रांत थईने निरामय थयो छौं; तथा जे लब्धव्य वस्तु ते संपूर्ण प्राप्त थयुं, अने चिर काले करीने संतृप्त थयो. २ हवे मने उपदेश करवानो कंइज उपयोग नथी. हुं सर्व प्रकारे अति तृप्त

अने गया छे आधिभौतिकादि ज्वरो जेना एवो संपन्न थयो. ३ तथा जे अज्ञात वस्तु ते संपूर्ण जाण्युं, अने जे अप्राप्त ते प्राप्त थयुं; तथा जे त्याग करवा योग्य एवुं अहंकारादि ते त्याग कर्युं; तथा निर्वासन एवुं माहारुं मन, परमात्म स्वरूपता (तदाकारता)नेज पामतुं हवुं; माटे माहारां स्वरूपथी इतर वस्तु कांइज छे नहि. ४ ज्यारे ताहारां स्वरूपथो अन्य कंइज नथी, त्यारे तुं हवे केवो अवशिष्ट रह्यो? एवी आकांक्षा उपर कहेछे के, हे मुने! हुं, गयो छे संसार (जन्ममरणादि प्रबंध) जेने एवो तथा गयां छे मोह अने भय जेनां एवो अने गया छे राग द्वेषादि जेना एवो तथा नित्य प्रकाश अने सर्व वैषम्ये रहित छे स्वरूप जेनुं एवो माटेज पूर्ण सौम्यरूप अने सर्वात्मक तथा सर्व कलनाओथी रहित अने आकाश कोशना जेवो एटले निरवयव, व्यापक, असंग अने स्वच्छ छतो केवल शांत स्वरूपे रह्यो छौं. ५

इति श्री मदुदयशंकरात्मज गौरीशंकर विरचिते स्वरूपानुसंधाने द्वितीय प्रक्रिया समाप्ता. २

अथ श्री स्वरूपानुसंधाने

तृतीय प्रक्रिया प्रारंभः ३.

श्री भगवद्गीताना चोथा अध्यायमां "किं कर्म किमकर्मेति०" "कर्मण्यकर्म यः पश्येत्०" तथा अढारमां अध्यायमां "अधिष्ठानं तथा कर्त्ता०" "शरीरवाङ्मनोभिर्यत्०" "तत्रैवं सति कर्तारं०" इत्यादिक स्मृति विगेरेना अनुसारे त्वं पदार्थनां विवेचनमां अनात्माने कर्मरूपता तथा आत्माने अकर्मरूपतानो निर्णय स्फुट रीते समजवाथी संसारबंधनथकी मुक्त थवानो विचार. त्यांहां स्मृतिः—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः । तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

अर्थः— 'कवयः' एटले सर्व शास्त्रना जाणनारा एवा पण पुरुषो, कर्मनुं रूप शुं? अने अकर्मनुं रूप शुं? ए विषे मोह पाम्या छे— एटले

कोई वेदोक्त तथा स्मृत्युक्त एवुं जे सर्व ते कर्म अने तेहेनो जे संन्यास ते अकर्म एम कहेछे; अने कोई एम कहेछे के, जे चलनात्मक ते कर्म अने अचलन (तूष्णिं अवस्थान) ते अकर्म; माटे हे अर्जुन! तुंने कर्म अने अकर्म ए बेउनुं खरुं तत्त्व शुं छे, तेहेना लक्षणनो उपदेश करीश के, जेने जाणवाथी अशुभ (संसार) थकी मुक्त थईश. १

आरुरुक्षु पुरुषे संसारथी मोक्षने अर्थे कर्म अने अकर्म बेउनुं तत्त्व जाणवुं जोइए; माटे ते बेउनुं लक्षण हुं तुंने कहीश ए प्रकारे जे पूर्वे प्रतिज्ञा करी हती, ते कर्म अकर्मना स्वरूपनां लक्षणनो हवे उपदेश करे छे.

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १ ॥

अर्थः– 'कर्म' एटले देह, इंद्रियो अने अंतःकरण विगेरेथी कराय ते– अर्थात् लौकिक अने वैदिक एवो सर्व पण व्यापार कर्म कहेवाय छे;ते चेष्टामात्र औपाधिक (उपाधिकृत) कर्मने विषे जे आत्मानुं यथार्थ स्वरूपनो जाणनार वि-

द्वान् पुरुष, ते अकर्मभावने जुवे एटले मूढ पुरुष पोते अकर्मरूप छतो पण अन्य देहेंद्रियादिकनां कर्म (क्रियाये) करीने कर्मवान् होय छे, तथापि आत्मवेत्ता पुरुष तो 'ब्रह्मज हुं छौं.' ए प्रकारे ब्रह्मने विषेज आत्मत्वनां विज्ञानथी पोताने देहादिकना संबंधनो अभाव छे माटे देहेंद्रियादिये करेलां कर्मने अकर्मरूपज जुवे छे, केमके ते देहादिककृत कर्मने विषे अहंता ममताये करीने स्वत्वनो अभाव छे; बीजाये करेलां कर्मने विषे बीजाने स्वकीयपणुं घटतुंज नथी, माटे विद्वान् पुरुष देहादिककृत कर्मने अकर्मरूपज जुवे छे; तथा अकर्मने विषे (देहेंद्रियादिकना व्यापारनो उपरामरूप तूष्णिं अवस्थानने विषे) कर्म(क्रिया)पणानेज जुवे छे. यद्यपि मूढ पोताने विषे देहादिकनो अध्यास करीने ते देहादिकना व्यापारनो उपराम थये छते "हुं तूष्णिं सुखे करीने बेठो छौं, पण दुःखकारक कांईज कर्मने करतो नथी." ए प्रकारे दुःखरूप देहेंद्रियना निरोधने विषे सुख बुद्धिथी देहादिकनी अक्रियाये करीने पोताने विषे अक्रियपणुं माने छे, परंतु मूढनी दृष्टिये जे तूष्णिं भावरूप अकर्म, तेहेने विषे मानसिक निरोध क्रिया रहेलीज छे;

माटे विद्वान्ने तूष्णिंभावरूप अकर्मने विषे कर्मत्वनुं दर्शन न्यायथकी, दृष्टांतथकी अने अनुभवथकी सिद्ध छे; तात्पर्य ए के, विद्वान्नी दृष्टिये संघातकृत कर्मना असंगथी आत्मा अकर्मरूप छे, अने मूढनी दृष्टिये संघातकृत कर्मना तादात्म्य संसर्ग अध्यासथी (स्वरूपनी जोडे संबंध रहित एवा पदार्थोनो जे संबंधपणानो अध्यास अर्थात् संबंध रहित देह तत्कर्मादिकने विषे जे हुं म्हारापणानो अध्यास तेथी) आत्मा कर्त्तारूप छे; ए रीते जे अर्थनो उपक्रम कर्यो ते विषयनो उपसंहाररूप १८ मा अध्यायनी स्मृतिः—

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥ १ ॥

अर्थः— कर्मनी निष्पत्तिमां पांच हेतुओने कहेछे, के (१) 'अधिष्ठान' एटले सुख दुःखोना भोगनुं आयतन अथवा सर्व करणोनुं आश्रयभूत एवुं स्थूळ शरीर; तथा (२) 'कर्त्ता' एटले "हुं कर्त्ता, हुं भोक्ता." ए प्रकारे अहं अभिमान वाळो विज्ञान आत्मा अर्थात् साभास अहंकार; तथा (३) 'पृथग्विधं करणं' एटले बा-

ह्याभ्यंतर भेदे करीने बे प्रकारनां ज्ञानेंद्रियो अने कर्मेंद्रियो, तथा मन अने बुद्धि, ए रीते बार प्रकारनां करणो; तथा (४) 'विविधाः पृथक् चेष्टाः' एटले दश प्रकारना भेदे विशिष्ट अने ऊर्ध्व अधः गति भेदे करीने नाना प्रकारनी वायुनी चेष्टा विशेषरूप एवा प्राणादि पांच तथा नागादि पांच; तथा (५) 'पंचमं दैवं' एटले चक्षुरादि इंद्रियोना प्रवर्त्तक एवा सूर्यादि देवताओ. १

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः १

अर्थः— 'नरः' एटले बाह्य दृष्टिथी कर्मनो कर्त्ता एवो पुरुष 'शरीरवाङ्मनोभिः' एटले शरीर तथा वाणी अने मने करीने बुद्धि पूर्वक 'न्याय्यं' एटले शास्त्रीय अथवा 'विपरीतं' एटले अशास्त्रीय निषिद्ध एवां जे कर्मने करे छे, ते कर्मनी निष्पत्तिमां पूर्वे कहेला अधिष्ठानादि पांचज कारणभूत छे. १

तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः १

अर्थः— पूर्वोक्त प्रकारे अधिष्ठानादि पांचने-

सर्व कर्मोनी निष्पत्तिमां कारणपणानो निष्क- थये छते आत्मा अनात्माना तत्त्व विचारें रहित एवो जे पुरुष, अधिष्ठानादिक पांचे करेलां एवां विहित निषिद्ध कर्मोने विषे "आ कर्मनो कर्त्ता हुं छों." ए प्रकारे अकर्त्ता, एकरस, निष्कल, निष्क्रिय, निर्विशेष एवा आत्माने कर्त्तारूप जुवे; जेम के "हुं नाह्यो, में भोजन कर्युं, हुं गयो, हुं आव्यो, में दुष्ट अथवा अदुष्ट कर्म कर्युं" ए रीते विवेक रहित एवो छतो आत्मानेज कर्मनो कर्त्ता माने; ए तात्पर्य. ए प्रकारे निष्क्रिय एवाज निर्विकारी असंग चिदात्माने विषे अन्ये करेला कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक धर्मोनो आरोप करनार ते पुरुष पोते अकृतबुद्धि (श्रवण मननादि संस्कारे रहित बुद्धिवाळो) छे; अथवा राजस तामस वासनात्मक अविद्याथी दूषित जेनी बुद्धि एवो छे; माटे ते कांईज जाणतो नथी. १

उपर कहेली स्मृतिना तात्पर्यथी जे
निष्कृष्ट अर्थ सिद्ध थयो तेनुं कथनः—

कर्मनुं कर्तृत्व भोक्तृत्व सावयवमां होय छे, निरवयवमां घटे नहि, आकाशनी पेठे; माटे पूर्वोक्त अधिष्ठानादि पंचकरूप संघात आत्माना सन्निधानथी सत्तास्फूर्त्ति पामीने गमनादिक चेष्टाओ करे

छे वास्ते सक्रिय छे; केमके ते त्रिगुण निर्मित, सावयव, षड्भाव विकारवान् अने षड् ऊर्मिवान् छे माटे कर्मरूप (कर्त्ता भोक्ता) छे; अने आत्मा तो तेथी पृथक् अधिष्ठानादिक संघातनो प्रकाशक तथा सत्, चित् अने आनंदरूप छे, माटे ते अकर्मरूप (अक्रिय अर्थात् अकर्त्ता अभोक्ता) छे; केमके निरवयव, निर्गुण, षड्भावविकार तथा षड् ऊर्मि रहित केवल शिवरूप छे. यद्यपि दृश्य एवां मनरूपी उपाधिना तादात्म्य अध्यासथी अज्ञाने करीने आत्माने विषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक मनाय छे तथापि ते मिथ्या भ्रमात्मक छे; जेम जळमां प्रतिबिंबित चंद्रने विषे जळरूप उपाधिथी चलनादिक धर्म वृथा भ्रांतिरूप प्रतीत थाय छे तेम. उपर प्रमाणे आत्माने विषे निष्क्रियपणुं सिद्ध थयुं; तेहेमां गीताना १८ मा अध्यायनी स्मृतिनुं प्रमाणः—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते १

भावार्थः— उपर प्रमाणे जे पुरुषने अहंभाव नथी (हुं म्हारापणाथी कर्तृत्व भोक्तृत्व जे बुद्धिना धर्म छे तेहेने पोताने विषे मानतो नथी)

ते पुरुष, शरीरादि संघात कर्त्ता भोक्ता छते तेहेमां लेपायमान थतो नथी (संसार बंधनथी मुक्त रहे छे). तेमां मुण्डक श्रुतिनुं प्रामाण्यः—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योभिचाकशीति ॥ १ ॥

अर्थः— बे 'सुपर्णे' एटले पक्षीना जेवा 'सयुजौ' एटले नित्ये अवियुक्त अर्थात् संघाते रहेनारा 'सखायौ' एटले चिद्रूप अर्थात् एक अंतःकरणथी उपहित (उपाधिवाळो) चिदाभास तथा बीजो अंतःकरणथी अनुपहित (निरुपाधिक) कूटस्थ, ए बेउ 'समानं' (एक एवो) 'वृक्षं' एटले तत्त्वज्ञाने करीने जेनुं समूळ उच्छेदन थाय एवो कार्य्य कारणोपाधिरूप शरीरने 'परिषस्वजाते' एटल आश्रय करोने रह्या छे; जेम लौकिक बे पक्षी, एक वृक्षनो आश्रय करीने रहे छे तेम, ए बेउ मध्ये एक जीवात्मा, स्वादिष्ठ एवां 'पिप्पल' ने एटले कर्मना फळरूप सुख दुःखने, कर्तृत्वादि कार्य्य कारणना अविवेकथी 'अत्ति' एटले भोगवे छे; अने कार्य्य कारणथी विवेचन करेलो बीजो कूटस्थ साक्षी 'अनश्नन्' एटले सु-

ख दुःखने न भोगवतो छतो 'अभिचाकशीति' एटले कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप कार्य कारणने केवळ जूवे छे– एटले जेनी प्रेरणाथकीज जीव, सत्तास्फूर्त्ति पामीने चेष्टा करे छे. दर्शनमात्रथीज ए साक्षीने प्रेरकपणुं राजानी पेठे जाणवुं. १

ए रीते कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि रहित शरीरादिकथी पृथक् आनंदात्मस्वरूप जे हुं ते असंग नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त अखंड एकरस परिपूर्ण प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्मस्वरूप छौं एवुं अवधारण करवुं. त्यांहां कैवल्य श्रुतिः–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपश्यन् ब्रह्मपरमं याति नान्येन हेतुना ॥ १ ॥

अर्थः– आत्मा (आनन्दात्मा) जे हुं, ते सर्व भूतोने विषे अनुस्यूत रूपे रह्यो छौं; तथा अधिष्ठानभूत आनन्दात्मा जे हुं, ते माहारे विषे सर्व भूतो अध्यस्तरूपे रह्यां छे; ए रीते कल्पित पदार्थने अधिष्ठानथी अनतिरिक्त होवाथी जगत् ब्रह्मना वास्तव अभेदथी अपरिच्छिन्न ब्रह्मस्वरूप हुं ज छौं; ए प्रमाणे पूर्वोक्त अभेद ज्ञानथी ब्रह्मस्वरूपने पामे, तेथी अतिरिक्त बीजां

साधने करीने पामे नहि. १ (ए रीते सर्वात्म-भाव संपादन करवो.)

पूर्वोक्त ब्रह्माकार वृत्तिनी दृढताने अर्थे निदिध्यासनरूप सविकल्प, निर्विकल्प (संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात) समाधिनुं चिंतन. त्यांहां श्लोकः—

कामाद्याश्चित्तगा दृश्यास्तत्साक्षित्वेन चेतनम्। ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोयं समाधिः सविकल्पकः ॥ १ ॥

अर्थः— काम, क्रोध, लोभ, प्रेम, हर्ष, शोक इत्यादि अनेक वृत्तिओ सत्व, रज, तमोगुणनां तारतम्ये प्रसिद्ध जाण्यामां आवे छे; तथा एक वृत्ति आळशा पछी बीजी वृत्ति प्रगटे छे, ते पोताना स्वरूपने तथा बीजी वृत्तिना स्वरूपने अने कामने पण जाणती नथी; शाथी के, ए वृत्तिओ दृश्य छे अने हुं तेहेनो द्रष्टा छौं; तथा जाग्रत अने स्वप्नावस्थामां चित्त छे त्यांहां सुधी ते वृत्तिओ पण छे अने सुषुप्तिमां चित्त भेळी लीन थाय छे माटे ए सर्वे चित्तना धर्म छे; तेथी ते वृत्तिओ साक्ष्य छे अने हुं तेहेनो साक्षी छौं; तथा हुं चैतन्य तो ए सर्वे वृत्तिओनो प्रकाशक अने वृत्तिना भाव तथा अभाव बन्नेनो जाणनार ते हुं;

ए रीते ध्यान करतां एकाग्रपणे अखंड ध्यान करे ते दृष्ट प्रकारनो हृदयमां सविकल्प समाधि कहेवाय. १ (ए रीते युक्तिथी कामादिक दृश्योने पृथक् करीने तेथी अतिरिक्त आनंदात्मा सिद्ध थयो.)

असंगः सच्चिदानंदः स्वप्रभो द्वैत-
वर्जितः। अस्मीति शब्दविद्धोयं स-
माधिः सविकल्पकः ॥ १ ॥

अर्थः— जे परमात्मा ‘ असंग ’ एटले संग रहित छे; त्यांहां श्रुतिः— “ असंगो ह्ययं पुरुषः” “ असंगो नहि सज्जते.” तथा ‘सत्, चित्, आनंद’ एटले सत्य, ज्ञान अने आनंदरूप छे; ‘ स्वप्रभ ’ एटले स्वप्रकाश छे; त्यांहां श्रुतिः— “ अदृष्टं द्रष्टृ अश्रुतं श्रोतृ न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येत्.” तथा ‘द्वैतवर्जित’ एटले दृश्य सर्व धर्मथकी तथा स्वगत, सजातीय, विजातीय भेदथकी रहित (त्यांहां श्रुतिः— “ एकमेवाद्वितीयं ”) एवो जे प्रत्यक्रूप साक्षी तेज हुं छौं; ए रीते निरंतर भावना करवी.

उपर प्रमाणे कामादि अशेष वृत्तिनो लय करनार अने असंग इत्यादि शब्दे मिश्रित अने वि-

जातीय प्रत्यय रहित, सजातीय प्रत्ययनो प्रवाहरूप जे चिन्मात्रनिष्ठ अनुभव ते शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि जाणवो. १ (उपर प्रमाणे श्रुतिथी पण आत्माने असंग द्वैतवर्जितपणुं सिद्ध थयुं.)

ए रीते बे प्रकारनी सविकल्प समाधिना अभ्यासनी पाटवताना बळथी, निर्विकल्प समाधिने देखाडे छे. त्यांहां श्लोकः—

स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दानुपे-
क्षितुः । निर्विकल्पः समाधिः स्या-
न्निवातस्थितदीपवत् ॥ १ ॥

अर्थः— रस एटले आनन्दस्वरूप परमात्मा, तथा अनुभवस्वरूप प्रत्यगात्मा पण परमात्माथकी अभिन्न होवाथी अने परम प्रेमनो आस्पद होवाथी रसरूप छे— अर्थात् ब्रह्मथी अभिन्न प्रत्यक्स्वरूपभूत जे अनुभवरूप रस; तेनो आवेश एटले पूर्वोक्त बे प्रकारनी समाधिना अभ्यास बळथी अंतःकरणमां स्वरूपभूत ज्ञानरूप आनन्दनो आविर्भाव ते स्वानुभूतिरसावेश कहेवाय छेः तात्पर्य के दृश्य लईने द्रष्टा, साक्ष्य लईने साक्षी, संग लईने असंग इत्यादि परस्पर सापेक्ष छे, परंतु पूर्ण स्वरूपने विषे दृश्य, साक्ष्य, संग विगेरे

प्रतियोगीनोज असंभव छे; माटे तेनो प्रतिषेध पण नथी, केवळ शुद्ध चिदाकाश परिपूर्णज छे; अने जे नाम रूप क्रियात्मक द्वैत भ्रमात्मक भासे छे ते तो रज्जु सर्प तथा मृगजळ तथा स्वप्नवत् मिथ्या छे. त्यांहां गोडपाद कारिकाः—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेपि तत्तथा । वितथैः सदृशाः संतोऽवितथा इव लक्षिताः ॥ १ ॥

अर्थः— जे मृगतृष्णादि वस्तु, आदिने विषे तथा अंतने विषे नथी ते मध्यमां पण नथी; ए प्रकारे लोकमां जेम निश्चय छे तेमज जाग्रतने विषे दृश्य एवा सर्व भिन्न पदार्थो, आद्यंतने विषे अभावथी मध्यनेविषे पण असत्य मृगतृष्णादिकनी तुल्यताथी मिथ्याज छे, तथापि अनात्मवेत्ता मूढ पुरुषोये सत्य जेवा जाण्या छे. १ वळी आवेश एटले आनंदमां निमग्नपणुं ते पण स्वानुभूतिरसावेश; ते रसावेशथकी पूर्वोक्त कामादिक दृश्योने तथा असंगादिक शब्दोने उपेक्षा करनार अने स्वानुभूतिरस नामना महा मगरे ग्रस्त कर्याथी स्वातंत्र्यनो अभाव छे एटले अनुभवरसनेज भूतावेशनी पेठे वश थवाथी परतंत्रताये रहेलो एवा पुरुषने निर्विक-

रूप समाधि थाय; अर्थात् लय, विक्षेप, कषायादिक प्रतिबंधना अभावथी स्वतःज होय छे; वायुरहित देशमां स्थापित दीपनी पेठे. ए समाधिविषे इष्टसिद्धिकार तथा वसिष्ठजीनां वचनः—

यानुभूतिरजामेया त्वनंतानंदविग्रहा।
महदादिजगन्मायाचित्रभित्तिं नमामि ताम् ॥ १ ॥

अर्थः— जे पूर्ण चिदात्मानी अनुभूति (अनुभव) 'अजा' एटले जन्मादि विकार रहित छे; तथा 'अमेया' एटले मननो अविषय; तथा 'अनंतानंद विग्रहा' एटले अपरिच्छिन्न आनंद छे स्वरूप जेनुं एवी छे ते 'महदादिजगन्मायाचित्रभित्तिं.' एटले महत्तत्वथी आरंभीने स्थूळ पर्यंत सर्व जगत मायारूप चित्रनी भित्तिरूप एटले अधिष्ठानरूप आत्मानी जे अनुभूति तेने हुं नमस्कार करुं छौं. १

अन्तः शून्यो बहिः शून्यः शून्यकुंभ इवांबरे। अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः पूर्णकुंभ इवार्णवे १ मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव। भावनामखिलां त्यक्त्वा यदिष्टं तन्मयो

भव २ प्रशान्तसर्वसंकल्पा या शि-
लावदवस्थितिः। जाग्रन्निद्राविनिर्मु-
क्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ ३ ॥

अर्थः– जेम आकाशने विषे खाली घट, बाह्य तथा अन्तर शून्यरूप छे एटले इतर वस्तु रहित छे; वळी समुद्रने विषे जळ पूर्ण घट, अंतर तथा बाह्य जळमय छे; तेमज जे अधिकारी, अन्तर तथा बाह्य निर्विकल्प समाधिना बळथी अध्यस्त एवा सर्व दृश्य प्रपंचे रहित छे; वळी अन्तर तथा बाह्य, चिन्मात्र स्वरूपे परिपूर्ण छे. १ ग्राह्य एटले ग्रहण करवा योग्य दृश्य विषयादिरूप नहि थवुं, तथा ग्राहकरूप पण नहि थवुं एटले अहंकारादिरूप पण नहि थवुं; किंतु नाम रूप क्रियात्मक सर्व भावनानो त्याग करीने एटले अध्यस्त जाणीने जे अवशिष्ट चिन्मात्र स्वरूप तन्मय थवुं. २ शांत थया छे सर्व संकल्पो जेने विषे अने जाग्रत निद्रा (मोहरूप निद्रा)थी निर्मुक्त एवी जे शिलानी पेठे स्थिति तेज परम स्वरूप स्थिति, तेहेनुं नाम सर्व वासनानी जाळनो उच्छेद पण कहेवाय छे. ३ (ए रीते अनुभवथी पण शुद्ध स्वरूप वृत्तिमां आरूढ एटले दृढ निश्चळ थवुं.)

ए प्रमाणे त्रण प्रकारे देखाडेला हृदय संबंधि समाधिने बाह्य संबंधि पण देखाडवा माटे बाहार तत्पदार्थ ब्रह्म अने सर्गनो छे विवेक जेमां तथा सत्, चित्, आनन्द ब्रह्मने विषे छे निष्ठा जेनी एवो दृश्यानुविद्ध समाधिने देखाडे छे केः—

हृदीव बाह्यदेशेपि यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि । समाधिराद्यः सन्मात्रान्नामरूपपृथक्कृतिः ॥ १ ॥

अर्थः— जेम हृदयमां कामादिकथी साक्षीनें पृथक् करीने ते कामादिक संकल्पनुं जे साक्षी चैतन्य तेज हुं छौं ए प्रकारे जे चिन्तवन, ते आंतर दृश्यानुविद्ध समाधि कहेवाय छे; तेज प्रकारे बाहार पण पोताने इष्ट एक वस्तुने अवलंबन करीने सत्, चित्, आनन्द, नाम, रूप ए पंच अंशरूप ते इष्ट वस्तुमांथी कल्पित नाम अने रूप अंशने पृथक् करीने ते बन्नेनुं अधिष्ठानभूत जे सत्, चित्, आनन्दरूप वस्तु तेज तत्पदलक्ष्य एवुं ब्रह्म अने ते ब्रह्म हुं छौं ए रीतनुं जे चिन्तवन, ते बाह्य दृश्यानुविद्ध समाधि कहेवाय छे. १ ए रीते बाह्य दृश्यानुविद्ध समाधिनुं

निरूपण करीने, समष्टि व्यष्टिरूप समस्त दृश्य प्रपंचनो लय करनार बाह्य शब्दानुविद्ध समाधिने देखाडे छे. श्लोकः—

अखंडैकरसं वस्तु सच्चिदानन्दलक्षणम् । इत्यविच्छिन्नचिंतेयं समाधिर्मध्यमो भवेत् ॥ १ ॥

अर्थः— अखंड एटले देश, काळ अने वस्तुथी अपरिच्छिन अने एकरस एटले त्रण काळने विषे पण एकरूप ए प्रकारनुं जे वस्तु तेज ब्रह्म हुं छौं; ए रीते विजातीय प्रत्यय रहित सजातीय प्रत्ययनो प्रवाहरूप जे चिन्तवन ते बाह्य शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि कहेवाय छे. १

ए प्रकारे ब्रह्मने विषे बे प्रकारनो सविकल्प समाधिने देखाडीने हवे पूर्वोक्त समस्त दृश्य तथा शब्दोनो विलय करनार निर्विकल्पक समाधिने देखाडे छे. श्लोकः—

स्तब्धीभावो रसास्वादस्तृतीयः पूर्ववन्मतः । एतैः समाधिभिः षड्भिर्नयेत्कालं निरंतरम् ॥ १ ॥

अर्थः— पूर्वोक्त बाह्य तथा आंतर ए बे प्रका-

रना सविकल्प समाधिना अभ्यासना बळे भूमानन्द रसना आस्वादनथी व्यष्टि समष्ट्यात्मक सर्व दृश्य प्रपंचनी तथा अखंड एकरस इत्यादि शब्द समूहनी उपेक्षा करीने आस्वादन करेला भूमानंदनी परतंत्रताये रहेलुं जे चित्त तेहेनो वात रहित दीपनी पेठे जे स्तब्धीभाव (निश्चळता) ते त्रीजो निर्विकल्पक समाधि जाणवो; अने ते पण पूर्वोक्त समाधिनी पेठे अंतर (त्वंपदार्थ विषयक) अने बाह्य (तत्पदार्थ विषयक) बे प्रकारनो जाणवो; ए रीते छ प्रकारना समाधिथीज मुमुक्षुए निरंतर काळ निर्गमन करवो. १

ए प्रकारे आंतर अने बाह्य मळीने छ प्रकारना समाधियोनुं दीर्घ काळ निरंतर सत्कार पूर्वक मुमुक्षुने अवश्य कर्त्तव्यताये विधान करीने हवे पूर्वोक्त प्रकारे अन्वय व्यतिरेक (युष्मदर्थेनी व्यावृत्ति अने अस्मदर्थनी अनुवृत्ति)थी आंतर अने बाह्य बे प्रकारना पदार्थेनां परिशोधने करीने देहाभिमान गलित थये छते अने परमात्मस्वरूपनो साक्षात्कार कर्ये छते पूर्वोक्त छ प्रकारना समाधियो मुमुक्षुनुं मन, अंतः अथवा बाह्य ज्यांहां ज्यांहां जाय त्यांहां त्यांहां स्वतःज सिद्ध थाय छे ए वात कहेछे.

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥ १ ॥

अर्थः— सम्यक् प्रकारे कर्या एवा आंतर दृक् दृश्यना विवेके करीने अस्मत् शब्दनो अर्थभूत साक्षी आत्माने विषेज अभिमानथी, अहंकारथी आरंभीने देह पर्यंत युष्मदर्थोने विषे "हुं कर्त्ता, हुं मनुष्य" ए रीते अनात्माभिमान गलित थये छते, तथा बाह्य नाम रूपात्मक सर्व प्रपंच अने ब्रह्मना विवेके करीने नाम रूपात्मक सर्व मिथ्या छे; अने तेहेनुं अधिष्ठानभूत सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मज सत्य छे; ए रीते परमात्माने जाण्ये छते गलित थयो छे देहाभिमान जेनो तथा जाण्युं छे परमात्मतत्त्व जेणे एवा पुरुषनुं मन, अंतः अथवा बाहार ज्यांहां ज्यांहां जाय त्यांहां त्यांहां पूर्वोक्त छ प्रकारना समाधियो स्वतःज सिद्ध थाय. १ तीव्र वैराग्यना बळथी परमहंसाश्रमनो स्वीकार पूर्वक ब्रह्मना साक्षात्कार पर्यंत सद्गुरुना सन्निधानमां शारीरक शास्त्रनुं अवलंबन करीने निरंतर पुनः पुनः करेला तत्त्वंपदार्थना विवेके करीने गळित थयो छे देहा-

भिमान जेनो अने जाण्युं छे परमात्म तत्त्व जेणे एवा पुरुषने छ प्रकारना समाधियो अनायासे करीने स्वतःज प्रवृत्त थायछे एज तात्पर्य्यार्थ; केम के " आवृत्तिरसकृदुपदेशात् " ए व्यास सूत्रना अनुसारे "अहंब्रह्म " ए वाक्यार्थनो बोध ज्यां पर्य्यंत सुदृढ थाय त्यां पर्य्यंत समाधिये सहित एवो छतो श्रवणादिकनो अभ्यास करे ए प्रकारे आचार्य्ये कह्युं छे.

हवे वैराग्य संन्यासादिक श्रवणनां साधनोने विषे तथा दीर्घ काळ निरंतर सत्कार पूर्वक करेलां श्रवणादिरूप ज्ञाननां साधनोने विषे प्रयास जोइने तथा ब्रह्म आत्मानि एकतारूप ज्ञाननां फळनी अग्निहोत्रादिकनी पेठे तत्काळ प्राप्तिना अभावने पोतानी बुद्धिथी कल्पिने साधननां अनुष्ठानथी उपराम पामता शिष्य प्रत्ये फळनां प्रदर्शननो द्वाराये साधननां अनुष्ठानने विषे तेहेने प्रवर्त्तावबा माटे तथा विश्वास थवा माटे ब्रह्म आत्मानी एकतारूप ज्ञाननुं तत्काळ फळ देखाडनारी श्रुतिने पठन करे छेः—

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ १ ॥

अर्थः— देहथकी बाहार नामरूपात्मक सर्व वस्तुने विषे सर्पनी आधारभूत रज्जुनी पेठे व्याप्त एवो सच्चिदानन्दरूप जे परमात्मा तेज पर शब्दे करीने जाणवो, तथा अन्तः अहंकारादि सर्व दृश्यथी विलक्षण अने अस्मत् प्रत्ययनो अवलंबनभूत तथा प्रत्यक् चैतन्यमात्र अने साक्षीरूप जे जीवात्मा ते अवर शब्दे करीने जाणवो. अर्थात् प्रत्यक्थी अभिन्न परमात्मा तेहेनो साक्षात्कार थये छते एटले 'तुं ते हुं.' अने 'हुं ते तुं.' तथा 'ब्रह्म ते हुं.' अने 'हुं ते ब्रह्म.' ए रीते अखंड एकरसताये करीने करतळामलकनी पेठे साक्षात्कार कर्ये छते ते अधिकारीनो हृदयग्रंथि ('हृत्' कहेतां अहंकार अने 'ग्रंथ' कहेतां साक्षी ए बेहुना तादात्म्य अध्यासथी लोह अग्निनी पेठे जे एकता पामेलुं रूप ते) भिद्यते (भेदाय छे) अर्थात् विशीर्ण थई जायछे, तथा सर्व संशयो छेदाय छे— एटले माहारे विषे वास्तवताथी ब्रह्मत्व छे के नथी? अने ब्रह्मत्व छतां पण साक्षात्कार थयो छे के नहि? अने साक्षात्कार थये छते पण त्यार पछी माहारे कर्त्तव्य कार्य्य छे के नहि? तथा कर्त्तव्यनो अभाव छते पण माहा-

रे जीवन्मुक्ति छे के नहि? जीवन्मुक्ति छते पण वर्त्तमान देहना पतनथी अनन्तर भावि विदेहमुक्ति थशे के नहि? अने विदेह मुक्ति थवाथी पण काळान्तरने विषे फरीथी जन्म थशे के नहि? इत्यादिक संशयो छेदाई जायछे अर्थात् परावरनां ऐक्य दर्शनरूप शस्त्रे करीने संशयरूप पाशो खंडित थायछे, तथा ए अधिकारीनां कर्मो क्षीण थायछे. (संचित, अनारब्ध ए शब्दे करीने वाच्य पुण्य अपुंण्य मिश्ररूप जे कर्म तेज अहिं विवक्षित छे, प्रारब्ध कर्मनो तो भोगथकीज क्षय जाणवो.) १

उपर कहेला प्रकारनी जे स्थिति तेज जीवन्मुक्ति कहेवाय तेंहेना प्रमाणमां श्लोकः—

यस्मिन्काले स्वमात्मानं योगी जानाति केवलम्। तस्मात्कालात्समारभ्य जीवन्मुक्तो भवेत्सदा ॥ १ ॥

भावार्थः— योगी एटले त्वंपदार्थ तत्पदार्थनां शोधनपूर्वक भागत्याग लक्षणाथी अपरोक्ष करनार पोताना स्वस्वरूप जे आत्माने जे काळे केवळरूप एटले अद्वैत, अखंड, एकरस अनुभव करे ते काळने आदि लेईने सर्वदा जीवन्मुक्त होय छे. १

उपर कहेलाज अर्थना विशेष दृढीकारने अर्थे श्री वासिष्ठमां सिद्ध गीतामांथी वाक्योः—

द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दर्शनप्रथमाभासमात्मानं समुपास्महे ॥ १ ॥ यस्मिन्सर्वं यस्य सर्वं यतः सर्वं यस्मायिदम् । येन सर्वं यद्धिसर्वं तत्सत्यं समुपास्महे ॥२॥ सर्वाशाः किल संत्यज्य फलमेतदवाप्यते । येनाशाविषवल्लीनां मूलमाला विलूयते ॥ ३ ॥ बुद्ध्वाप्यत्यंतवैरस्यं यः पदार्थेषु दुर्मतिः । बध्नाति भावनां भूयो नरो नासौ स गर्दभः ॥४॥ उपशमसुखमाहरेत्पवित्रं शमवशतः शममेति साधुचेतः । प्रशमितमनसः स्वके स्वरूपे भवति सुखे स्थितिरुत्तमा चिराय ॥ ५ ॥

अर्थः— शुद्ध प्रत्यगात्म स्वरूपनो निष्कर्ष करीने करतलामलकनी पेठे साक्षात्कार कराव-

ता छता कोइ सिद्धो कहेछे के द्रष्टा, दर्शन, दृश्य ए त्रिपुटीने वासनाये सहित त्याग करीने (आ ठेकाणे त्रिपुटीना त्यागे करीने शुद्ध आत्माने विषे जाग्रत् अने स्वप्न ए बन्ने अवस्थानो निरास सूचन कर्यो; तथा वासनाना त्यागे करीने ए बन्ने अवस्थानी बीजभूत अने वासनाना जाळे करीने पूर्ण एवी अज्ञानात्मक सुषुप्तिनो निरास सूचन कर्यो.) त्रिपुटीथी पर अने चक्षु, मन आदि इंद्रियोनी वृत्तियोथी प्रथमज तेमनी उत्पत्तियोमां साक्षीरूपे करीने भासमान अर्थात् त्रिपुटीथी पूर्वसिद्ध अने सर्वने अनुभवसिद्ध एवो जे त्रिपुटीथी विवेचन कर्यो तुरीयस्वरूप प्रत्यगात्मा तेनी उपासना करीये छैये (प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मस्वरूपे स्थिति पाम्या छैये.) १ जे ब्रह्म, नाम रूपात्मक सर्वनी आधारताथी तथा सर्वेनुं स्वामीरूप होवाथी तथा सर्वनो अभिन्न निमित्तोपादानरूप अपादान (अवधिभाव)थी तथा परार्थत्वरूप संप्रदानभावथी तथा सर्व एवा कर्तृकरणादि भावथी अर्थात् सप्तविभक्त्यर्थरूपताथी मायाये करीने सर्व जगत् व्यवहारनुं निर्वाहक अने सर्वात्मक एवुं होय छे ते सर्वेनुं अधिष्ठान परमार्थ सत्य ब्रह्मज प्रत्यगात्मारूप छे; ए रीते

अभेदे ऐक्य साक्षात्कार करीने ब्रह्मात्मैक्यरूपे अवस्थान पाम्या छैये. २ अन्य सिद्धो पूर्वोक्त स्वरूप तत्त्वनी प्राप्तिने विषे वैराग्यनेज मुख्य साधन कहेछे के, सर्व आशाओना परित्यागथीज हृदयमां रहेलुं अने ज्ञाननुं फलरूप एवुं प्रत्यक् स्वरूप ब्रह्म प्राप्त थाय; जे स्वरूपना लाभथी आशारूप विष लताओनी मूलमाला (वासना जालथी जटिल एवी हृदयग्रंथि) छेदाइ जायछे—

"रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते"

ए भगवद्वचननां प्रामाण्यथी. ३ पूर्वोक्त वैराग्यनाज दृढाकारने अर्थे कहेछे के, जे दुर्मति पुरुष, भोग्य विषयोने विषे वैरस्यपणुं जाण्या छतां पण तेमने विषे फरीथी वासना बांधे ते नर नहि, किंतु गर्दभ जाणवो. ४ अन्य सिद्धो तो उपशमज मुख्य साधन छे अनें वैराग्यादि इतर साधनो तो उपशमने अर्थे छे एवा आशयथी उपसंहार करेछे के, उपशम एटले बाह्य आन्तर इंद्रियोना स्वस्वविषयोने विषे व्यापारनो उपशम तेणे करीने सर्व विक्षेप दुःखनी शान्ति होवाथी आविर्भाव पामनार जे आत्मसुख एज संपादन करवुं. ते आत्मसुख, विषय सुखनी पेठे दोषनो

हेतु नथी, किंतु चित्तप्रसादनुं हेतु छे माटे पवित्ररूप छे; तथा उपशमवान् जे पुरुष तेनुं चित्त निरिंधन अग्निनी पेठे शान्ति पामे छे, अने शान्त एटले निर्वासन थयुं छे मन जेनुं एवो जे पुरुष तेने निरतिशयानन्दरूप एवां स्वकीय परमार्थ स्वरूपने विषे स्थिति एटले भूमिकाओनी परंपराने विषे आरोहणना क्रमथी उत्तम एवी सप्तम भूमिकाने विषे प्रतिष्ठा होय छे. ५

इति श्रीमदुदयशंकरात्मज
गौरीशंकरविरचिते
स्वरूपानुसंधाने
तृतीयप्रक्रिया
समाप्ता.
॥ ३ ॥

अथ श्री स्वरूपानुसंधाने

चतुर्थ प्रक्रिया प्रारंभः ४.

मांडूक्य श्रुति अने ते उपर गौडपादाचार्य्यनी कारिकाओना तात्पर्य्यना अनुसारे विचार.

मांडूक्य भाष्यना आरंभमां मंगलाचरणः—

प्रज्ञानांशुप्रतानैः स्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्य लोकान् भुक्त्वा भोगान् स्थविष्ठान् पुनरपि धिषणोद्भासितान्कामजन्यान्। पीत्वा सर्वान्विशेषान्स्वपिति मधुरभुङ् मायया भोजयन् नो मायासङ्ख्यातुरीयं परममृतमजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि ॥ १ ॥

अर्थः— विधि मुखे करीने वस्तु जे ब्रह्म तेनुं प्रतिपादन ए प्रक्रियाने देखाडे छे के, जे परब्रह्म तेनें हुं नमुं छौं; अस्मदर्थनुं एटले अहं प्रत्ययनो विषय प्रत्यक् आत्मानुं ब्रह्मनी साथे ऐक्यताना अनुसंधाननुं स्मरणरूप नमनने सूचन करता भाष्यकारे, ब्रह्म शब्दार्थनेज प्रत्यक्त्व

सूचना कर्युं तथा तेणे करीने तत्पदार्थ अने त्वं पदार्थनो ऐक्यरूप विषय ध्वनित कर्यो; वळी यत् शब्दने प्रसिद्ध अर्थनुं द्योतकपणुं छे माटे वेदान्तमां प्रसिद्ध जे ब्रह्म तेने नमुं छौं, एवा संबंधे करीने श्रौत मंगलाचरण पण कर्युं; वळी ब्रह्मने अद्वितीयपणुं छे माटेज जन्म मरणमां कारणना अभावथी अमृतं अने अजं एम कह्युं; वळी जे जन्म मरणनो प्रबंधरूप संसार तेना निषेधे करीने स्वतःसिद्ध असंसारिपणाने देखाडता आचार्ये, संसाररूप अनर्थनी निवृत्तिरूप प्रयोजन पण द्योतन कर्युं; ज्यारे अद्वितोय अने स्वतः असंसारी एवुं ब्रह्म वेदान्त प्रमाणथी सिद्ध छे त्यारे अस्थवात्रय विशिष्ट एवा भोक्ता जीवो केम अनुभव थाय छे? वळी तेमने भोग करावनार ईश्वर श्रुतिमां श्रवण थाय छे तथा भोग्य एटले भोगववा योग्य विषय समूह पण पृथक् जाणवामां आवे छे, ए सर्व दृश्यवर्ग अद्वैत स्वरूपने विषे विरुद्ध छे; एवी शंका थये छते अद्वैत ब्रह्मने विषेज जीव, जगत अने ईश्वर ए सर्व काल्पनिक संभवे छे एवा अभिप्रायथी कहेछे के 'प्रज्ञानांशुप्रतानैः' एटले जन्मादि विक्रिया रहित कूटस्थ ज्ञप्तिरूप जे ब्रह्म वस्तु ते 'प्रज्ञान'

कहेवाय छे; "प्रज्ञानंब्रह्म" ए श्रुतिनां प्रमाणथी. ए ब्रह्मनां 'अंशु'(किरण)रूप चिदाभास जीवो सूर्यप्रतिबिंबना जेवा निरूपण कर्या छता बिंबभूत ब्रह्मथी भेदे करीने विद्यमान छेज नहि; ते चिदाभास जीवोनां 'स्थिरचर' एटले वृक्षादि मनुष्यादियोना समूहने विषे व्यापनार एवा 'प्रतान' एटले विस्तारोथी लोक एटले विषयोने व्यापीने अने देवताये अनुग्रह करेलां एवां बाह्य इंद्रियोनी द्वाराये बुद्धिनो जे ते ते विषयोने आकारे परिणाम तेथकी जन्य छे माटे स्थूळ एवा भोग एटले सुखदुःखना साक्षात्कारोने भोगवीने 'स्वपिति' एटले शयन करे छे; एणे करीने ब्रह्मने विषे जागरित कल्पित छे ए प्रकारे सूचन कर्युं. तेज ब्रह्मने विषे स्वप्न कल्पनाने देखाडे छे के, पुनः एटले जाग्रतमां हेतु धर्म अधर्मना क्षयथी अनन्तर स्वप्नना हेतु कर्मनो उद्भव थये छते स्वप्नने विषे बाह्य इंद्रियो तथा स्थूळ विषयो छे नहि किंतु वासनात्मक भासे छे; ते केवा छे के काम कर्म अने अविद्याथकि जन्य एवा ते वासनात्मक विषयोने अनुभव करीने शयन करे छे. बे अवस्थानी ब्रह्मने विषे कल्पना देखाडीने हवे सुषुप्तिनी पण कल्पना दे-

खाडे छे के, जागरित स्वप्नरूप स्थूळ सूक्ष्म सर्वे विषयोने 'पीत्वा' एटले अज्ञात स्वस्वरूपने विषे लय पमाडीने शयन करे छे (कारणभावे करीने रहेछे). ते सुषुप्तिमां आनंदने प्राधान्यना अभिप्रायथी विशेषण आपे छे के 'मधुरभुक्' एटले आनंदनो अनुभव करनार, प्रतिबिंबरूप अमोने मायाये करेलां मिथ्याभूत अवस्थात्रयना संबंधि(अवस्थात्रयवान)जेवा संपादन करीने भोगवावतुं छतुं ते ब्रह्म रहेछे; माटे ब्रह्मने विषे जे त्रण अवस्था तथा अवस्थावान् जीवो अने मायावी ईश्वर ए सर्व कल्पित छे ए वात कहेछे के 'मायासङ्ख्यातुरीयं' तुरीय (चोथुं) एवा अर्थथी ब्रह्मने सद्वितीयपणुं प्राप्त थयुं, एवी शंका प्राप्त थये छते समाधानः– कल्पित एवां त्रण स्थानकनी अपेक्षाये जे ब्रह्मने तुरीयपणुं कह्युं तेथी सद्वितीयपणुं संभवे नहि. मायाविपणाथी निकृष्टपणानी आशंका थये छते सिद्धांत कहेछे के 'परं' (शुद्ध) यद्यपि ब्रह्मने माया उपाधि द्वारा मायाविपणुं छे तथापि स्वरूप द्वाराये मायानो संबंध नथी माटे निकृष्टपणुं घटे नहि. १

प्रथम श्लोकमां विधि मुखे वस्तुनां प्रतिपादननी प्रक्रियाने अवलंबन करीने तच्छब्दार्थथी

उपक्रम करीने ते तच्छब्दार्थने त्वं पदार्थ प्रत्य-गात्ममात्रत्व कथन कर्युं; तथा विषय अने प्रयो-जननी उक्तिये करीने संबंध तथा अधिकारी सू-चन कर्या; हवे निषेध द्वाराये वस्तुनी प्रतिपादन करनारी प्रक्रियानुं आश्रयण करीने, त्वं पदार्थ-थी उपक्रम करीने ते त्वमर्थने तत्पदार्थनी सा-थे असंसारी ब्रह्ममात्रत्वनी प्रतीति करावे छे.

श्लोकः—

यो विश्वात्मा विधिजविषयान् प्रा-
श्य भोगान् स्थविष्ठान् पश्चाच्चा-
न्यान् स्वमतिविभवान् ज्योतिषा
स्वेन सूक्ष्मान् । सर्वानेतान् पुनरपि
शनैः स्वात्मनि स्थापयित्वा हित्वा
सर्वान् विशेषान् विगतगुणगणः
पात्वसौ नस्तुरीयः ॥ २ ॥

अर्थः— त्वं पदनो अर्थभूत अने स्वतः सि-द्ध एवो चिद्धातु, यत् ए सर्वनाम शब्दे करीने प-रामर्ष (ग्रहण) करवो. ते चिद्धातुने विषे जाग-रित आरोपित छे तेनुं उदाहरण आपे छे के जे चिद्धातु विश्वात्मा छे— विश्व एटले पंचीकृत

महाभूत अने तेहेनुं कार्य्यरूप स्थूळ जगत्‌रूपी विराट् शरीर एज जागरित अवस्था; तेने विषे हुं अने म्हारुं ए प्रकारे अभिमानवाळो ते विश्वात्मा कहेवाय; तेनी अर्थ क्रियाने कहेछे के 'विधिज-विषयान्' एटले अविद्या, कामथी उत्पन्न थनार एवा धर्म अधर्मथी जन्य शब्दादि विषयो, ते केवा छे के, भोग शब्द वाच्य तथा आदित्यादिये अनुग्रह करेलां बाह्य इंद्रियोनी द्वाराये जे बुद्धि वृत्तिना परिणामो तेहेना विषयभूत छे; माटे 'स्थूलतम' एवा ते शब्दादि विषयोने साक्षात् अनुभव करीने ए प्रत्यगात्मा रह्यो छे. तेज परमात्माने विषे स्वप्नावस्थानो अध्यास देखाडे छे के, जाग्रतना हेतुभूत कर्मोनो क्षयथी अनंतर स्वप्नना हेतुभूत कर्मोनो उद्भव थये छते स्थूल विषयोथी अन्य एवा अने सूक्ष्म एटले बाह्य इंद्रियो उपराम थयां छे माटे अविद्या, काम अने कर्मे प्रेरी एवी पोतानी बुद्धिमात्रना प्रभावथकीज उत्पन्न थनारा, अर्थात् वासनामय; वळी आदित्यादिक ज्योतिषो अस्त थइ गयां छे वास्ते जे आत्मभूत ज्योतिष तेणेज विषय कर्या एवा सूक्ष्म विषयोने अनुभव करीने अपंचीकृत पंच महाभूत अने तेनुं कार्य सूक्ष्म प्रपंच

हैरण्यगर्भ शरीरने विषे तथा स्वप्नस्थानने विषे अहंममतानुं अभिमान करतो छतो तैजस हो-य छे. तेज आत्माने विषे सुषुप्तिनी कल्पना देखा-डे छे, के स्थूळ अने सूक्ष्म ए विभागे करीने स्थानद्वयावच्छिन्न एवा पूर्वोक्त सर्व विशेषोने स्थू-ळ सूक्ष्म उपाधिद्वयनी द्वाराए स्थानद्वयने विषे जे संचार तेणे करीने श्रम प्राप्त थयाथी स्वप्नने पण त्याग करवानी इच्छाथी 'शनैः' एटले धी-रे धीरे अनुक्रमथो अथवा क्रमना राहित्यथी का-रणात्मक अज्ञान विशिष्ट स्वस्वरूपने विषे स्वप्न विषयोने स्थापन करीने एटले लय अथवा उ-पसंहार करीने अव्याकृत प्रधान एवो छतो 'प्रा-ज्ञ' होय छे. हवे स्थानत्रय विशिष्ट तेज प्रत्य-गात्माने "नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं" इत्यादि निषेध शास्त्रथकी जन्य एवां प्रामाणिक ज्ञाननी आरूढताथी कार्यकारणरूप सर्वे पण अनर्थोने प्रामाणिक ज्ञानना प्रभावथीज बाध करीने नि-रुपाधिक परिपूर्ण ज्ञप्तिमात्र परमात्मस्वरूपे क-रीने निष्पन्न थयुं जे प्रत्यगात्मानुं तत्त्व तेनें कहे-छे, के जे प्रत्यगात्मा सर्व विशेषोनो त्याग करी-ने अस्त थया छे गुणगण जेना एवा छता तुरी-यरूप छे पेहेला श्लोके करीने देखाडेला प्रणा-

मनुं विघ्नोना प्रवाहनी शान्तिरूप जे प्रयोजन ते स्थानत्रयनी कल्पनाथी अतीत परम वस्तुनो लाभरूप छे तेनी प्रार्थना करे छे, के व्याख्यातारूप अने श्रोतारूप एवा अमो सर्वेने पुरुषार्थमां प्रतिपक्षिभूत जे कारणो (त्रिविध प्रतिबंधो) तेमनो निरास पूर्वक निरस्त थइ छे अशेष कल्पनाओ जेथकी अने नित्य विज्ञप्ति स्वभाव एवा ए परमात्मा मोक्षना प्रदाने करीने अने तेनां हेतुभूत ज्ञाननां प्रदाने करीने रक्षण करो! २

(१) ॐकारना निर्णयने अर्थे अने आत्मतत्वनी प्रतिपत्तिमां उपायभूत एवुं पेहेलुं ॐकार प्रकरण. (२) जेम रज्जुने विषे सर्पादिक विकल्पनो उपशम थये छते रज्जुतत्त्वनी प्रतिपत्ति (सिद्धि) थाय छे तेम जे द्वैत प्रपञ्चनो उपशम थये छते अद्वैतनी प्रतिपत्ति थाय, ते द्वैतनुं हेतुथी मिथ्यात्व प्रतिपादन करवाने अर्थे बीजुं वैतथ्य प्रकरण. (३) अद्वैतने पण वैतथ्यपणानो प्रसंग प्राप्त थये छते युक्तिथकी सिद्ध जे अद्वैतत्वतेने देखाडवा माटे त्रीजुं अद्वैत प्रकरण. (४) अद्वैत विषे अद्वैतत्वनी सिद्धिमां प्रतिपक्षिभूत एवां बीजां अवैदिक वादान्तरोने तेमनीज विरुद्ध उक्तिये करीने निराकरणने अर्थे चोथुं अलात प्रकरण.

ॐकार छे ते सगुण ब्रह्मनो प्रतीक रूप छे अने निर्गुण ब्रह्मनो द्वारभूत छे. ए ॐकार चार मात्रात्मक तेनी "पादा मात्रा मात्राश्च पादाः" एटले दरेक मात्रा चार चार (विश्वादि १६) पादात्मक ते अध्यात्मक, अधिदैव अने अधिभूत इत्यादिक त्वंपदार्थ तत्पदार्थनां शोधन पूर्वक अध्यारोप तथा अपवाद दृष्टिथी व्यष्टि समष्टिनी एकतानो अने सर्वमां चैतन्य सत्तास्फूर्त्तिनी अनुस्यूतता तथा अद्वैतनो अनुभव श्रुति करावे छे तेहेनो प्रकार.

१ अकार मात्रा, सत्व गुणात्मिका, जाग्रत अवस्था, नेत्र स्थानक, स्थूल भोग, सप्तांग (१ द्यु लोक मूर्द्धा. २ सूर्य चक्षु. ३ वायु प्राण. ४ आकाश देहनो मध्य भाग. ५ जळ बस्ति (मूत्र स्थान). ६ पृथ्वी पाद. ७ आहवनीय अग्नि मुख). एकोनविंशति मुख (वागादि पांच कर्मेंद्रिय, श्रोत्रादि पांच ज्ञानेंद्रिय, प्राणादि पंचक, अन्तःकरणचतुष्टय एटले मन, बुद्धि, चित्त अने अहंकार). बहिःप्रज्ञ एटले आत्माथी अतिरिक्त जे अनात्मा सर्व दृश्य विषयो तेने विषे जेनी प्रज्ञा संलग्न रहे ते अर्थात् जेनुं प्रज्ञत्व अविद्याथी बाहिर्विषयक होय छे ते. विश्वसंज्ञिक साभास

अहंकार अभिमानी भोक्ता ते अध्यात्मक अने अधिदैव वैश्वानर तेने विराट् पण कहेछे ते समष्टि विश्वनो आयतन छे. त्यांहां पुरुषसूक्तनी श्रुतिः– "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्." व्यष्टि समष्टिनी एकात्मकताथी स्थूल भोग तेमां अन्य श्रुतिः–

"स्त्रीअन्नपानादि विचित्रभोगैः स-
एव जाग्रत्परितृप्तिमेति" ॥ १ ॥

अर्थः– 'स एव' एटले मायाये परिमोहित आत्मा, मनने अनुकूल स्त्रीयो तथा मनने अनुकूल अन्नपानो अने 'आदि' शब्दथी मनने अनुकूल आसन, आच्छादन इत्यादि विचित्र भोगोथी जाग्रतमां (चक्षुरादिक इंद्रिये करीने बाह्य विषयोनी उपलब्धिरूप अवस्थामां) सर्व तरफथी विषयसुखजन्य तृप्तिने पामे छे एटले सुख दुःखनो अनुभव करे छे. १ ए रीते जाग्रतथी सुषुप्ति पर्यंत शास्त्रीय अथवा लौकिक कामनाओने करतो छतो विश्वाभिमानी श्रमित थई जाय छे; जेम शकुनि पक्षी आकाशमां चारो करवा फरी फरीने श्रमित थयो छतो पोताना माळामां आवे छे; ए रीते जाग्रतमां वृत्तियो श्रमित

थइ गये अकार मात्रा उकारमां मळी. विश्व तैजसमां मळ्यो अने वैश्वानर हिरण्यगर्भमां मळ्यो ए प्रमाणे जाग्रतनो अस्तकाल अने स्वप्ननो उदयकाळ ए बंने कालनी संधि(अंतराळावस्था)मां बंने उपाधिथी रहित अन्तर्यामीनो अनुभव थाय छे. हवे–

२ उकार मात्रा, रजो गुणात्मिका, स्वप्नावस्था, कण्ठ स्थानक, सूक्ष्म भोग, सप्तांग, एकोनविंशति मुख, अन्तःप्रज्ञ (बहिरिंद्रियोनो उपराम थये छते वासनामय मनोमात्रता थकी अन्तः जेनी प्रज्ञा ते). तैजसाभिमानी (स्थूल विषयोए रहित अने केवल प्रकाशस्वरूप एवी विषयभूत जे प्रज्ञा तेने विषे विषयिपणे करीने जे रहे ते) भोक्ता ए अध्यात्मक अने अधिदैव हिरण्यगर्भ तेने सूत्रात्मा पण कहेछे; ते समष्टि तैजसनो आयतन छे. त्यांहां श्रुतिः– "यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरंति." व्यष्टि समष्टिनी एकात्मकताथी सूक्ष्म भोग तेमां अन्य श्रुतिः–

" स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पितविश्वलोके." ॥ १ ॥

अर्थः– सर्व इंद्रियोनो उपरामरूप स्वप्नाव-

स्थामां प्राणनो धारण करनार जीव, विविध प्रकारनी वासनाये युक्त एवो छतो पोतानां अज्ञाने करोने कल्पित एवां रथ, अश्व, मार्ग इत्यादिक विश्वने विषे "हुं सुखी, हुं दुःखी." ए प्रकारे सुख दुःखनो भोक्ता होय छे. १ ए रीते स्वप्नावस्थामां रथ, घोडा तथा रथने चालवानो मार्ग पण नथी; तो पण जे गिरि, नदी, समुद्र विगेरे अनेक प्रपञ्च भोगववामां आवे छे ते सर्वे स्वयंज्योति साक्षी आत्मा अधिष्ठाननी उपर उल्लेख थाय छे; जेम सूर्यनां कीरणनी उपर जलनो उल्लेख थाय छे तेम. ए वातनो विस्तार बृहदारण्यकमां छठा अध्यायना त्रीजा ब्राह्मणमां जनक राजाने याज्ञवल्क्य मुनिए स्वप्नावस्थामां स्वयंज्योतिपणानो अनुभव कराव्यो छे. त्यांहां श्रुतिः—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च सन्ध्यं तृतीयꣳस्वप्नस्थानं तस्मिन्सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च अथ यथाक्रमोयं परलोकस्थाने भवति त-

माक्रममाक्रम्योभयान्पाप्मन आ-
नन्दांश्च पश्यति स यत्र प्रस्वपि-
त्यस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपा-
दाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वे-
न भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपि-
त्यत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति ॥ १ ॥

अर्थः– शंका– पूर्व मंत्रमां कह्युं हतुं के, जे स्थानने विषे आदित्यादिक बाह्य तेजोनो अभाव छते कार्यकारणनो संघातरूप एवो पुरुष, बाह्य ज्योतिष अतिरिक्त स्वरूप ज्योतिषे करीने गमनादिक व्यवहार करे छे; ते आदित्यादि ज्योतिषना अभाव विशिष्ट कोई स्थानकज नथी के जेने विषे विविक्त स्वयंज्योतिष उपलभ्यमान थाय; केमके सर्व काळने विषेज ए कार्यकारणनो संघात, बाह्य ज्योतिषे करीने संबंधवाळोज जणाय छे वास्ते विविक्त स्वयंज्योतिष्ट्रूपे करीने सत्य नथी. त्यांहां सिद्धांति– कोई एक स्थानकने विषे बाह्य आध्यात्मिक भूत भौतिक सूर्यादि तेजोना संबंधे रहित विविक्त स्वयंज्योतिष्ट्रूपे उपलभ्यमान थाय छे; माटे पूर्व मंत्रमां कहेलुं सर्व पण सम्यक् छे. ए आशये

करीने समाधान करे छे, के ते आत्मा जे काळने विषे प्रकर्षे करीने स्वापनो अनुभव करे छे अर्थात् संधि स्थानने पामे छे त्यारे सर्वावान् एटले संसर्गमां कारणभूत एवी भूत भौतिक सर्व मात्रावाळो आ जागरित देहनी मात्रा(एक देशरूप अवयवो)ने ग्रहण करीने अर्थात् दृष्ट जन्मनी वासनाये वासित एवो छतो पोतेज जागरित स्थूळ देहने हणीने एटले संबंध रहित संपादन करीने (आ ठेकाणे आत्माने जे देहनुं हंतापणुं कह्युं तेहेनो अभिप्राय ए छे के, जागरित अवस्थाने विषे आदित्यादिक देवताओनो जे चक्षुरादिक इंद्रियोने विषे अनुग्रह ते स्थूळ देह व्यवहारने अर्थे छे अने आत्मा संबंधि जे देहव्यवहार ते धर्माधर्मफळनो जे उपभोग तत्प्रेरित छे, अने ए देहने विषे धर्माधर्मफळना उपभोगनुं जे उपरमण ते कर्मना उपरामे कर्युं छे, माटे कर्मकृत देह हनननो आत्माने विषे उपचारथी तेहेने हंता कह्यो छे.) ते वासनावासित आत्मा वासनामय स्वप्न देहने पोते निर्माण करीने(आ ठेकाणे पण कर्मकृत निर्माणनां उपचारथी आत्माने विषे निर्माण कर्तृत्व जाणवुं.) पोतानी मात्रोपादानरूप दीप्तिये एटले सर्व वास-

नात्मक अन्तःकरणनी वृत्तिना प्रकाशे करीने, ते वृत्ति स्वप्नने विषे विषयभूत अने सर्व वासनामय एवी छती प्रकाशे छे, अनें ते वृत्ति स्वप्नने विषे स्वयंभा कहेवाय छे. विषयि तथा विविक्तरूप तथा अलुप्तदृक् स्वभावरूप स्वरूप ज्योतिषे करीने पूर्वोक्त विषयभूत वासनामय वृत्तिभाने विषय करतो छतो प्रस्वाप करें छे. पूर्वे कह्या प्रमाणे जे वर्त्तन तेहनेज प्रस्वाप (स्वप्न) जाणवो. ए स्वप्नावस्थामां ए आत्मा पोतेज विविक्त ज्योतिष (बाह्य आध्यात्मिक भूत, भौतिक सूर्यादिना संसर्गे रहित स्वप्रकाशरूप) होय छे. शंकाः— ए आत्माये जाग्रत देहनी मात्रा (वासना)नुं ग्रहण कर्युं छे माटे ते छते स्वप्नने विषे आत्मा स्वयंज्योतिष केम कहेवाय?

उत्तरः— ए दोष अहिं जाणवो नहि; केमके ते वासनामयत्व तो विषयभूत छे, माटे तेणे करीनेज स्वयंज्योतिष आत्मा देखाडी शकाय, विषय विना स्वयंज्योतिष आत्मा देखाडी शकातोज नथी; जेम सुषुप्ति काळने विषे कोई पण विषय विना स्वयंज्योतिष आत्मा देखाडी शकातो नथी तेम. ज्यारे ते वासनात्मक विषयभूत स्वयंभा उपलभ्यमान होय, त्यारेज मियानथी

वङ्गनी पेठे सर्व संसर्गे रहित चक्षुरादि कार्यकारणथी व्यावृत्त स्वरूप अलुप्तदृक् ते आत्म ज्योतिष स्वस्वरूपे प्रकाशमान ग्रहण कराय; माटेज ए आत्मा स्वप्नने विषे स्वयंज्योतिष अनुभव थाय ए सिद्ध थयुं. १ तात्पर्य ए जे— यद्यपि जाग्रतमां अने स्वप्नमां आत्मानुं स्वयंज्योतिषपणुं सिद्ध छे परंतु जाग्रतमां सूर्य, चंद्र, अग्नि अने वाक् ए चार ज्योति वडे संकीर्ण छे तेथी जाग्रतमां स्वयंज्योतिषपणुं अनुभवमां आवतुं नथी अने स्वप्नमां ए सूर्यादि ज्योतिनो अभाव छे तेथी तेमां स्वयंज्योतिपणानो स्पष्ट अनुभव थाय छे.

शंकाः— स्वप्नने विषे आत्मा स्वयंज्योतिष न कहेवाय? केमके जागरितने विषे जेम, तेमज ग्राह्यग्राहकादि सर्व व्यवहार स्वप्नमां पण देखाय छे; वळी चक्षुरादिकना अनुग्राहक आदित्यादिनो आलोक पण जागरितनी पेठेज देखाय छे माटे स्वप्नने विषेज स्वयंज्योतिष ए अवधारण केम थई शके? समाधानः— जाग्रत स्वप्नमां वैलक्षण्यपणुं छे ते श्रवण कर! जागरितमां इंद्रिय, बुद्धि, मन आदिकना प्रकाशादिक व्यापारथी संकीर्ण आत्मज्योतिष छे, अने स्वप्नमां तो इंद्रियोनो तथा तेमनां अनुग्राहक

आदित्यादि प्रकाशनो पण अभाव छे; माटे ते आत्मज्योतिष केवळ विविक्त होय छे वास्ते वैलक्षण्यपणुं छे. शंकाः— जेम जागरितने विषे विषयो उपलभ्यमान थाय छे, तेमज स्वप्नमां पण उपलब्धि छे; माटे इंद्रियोना तथा अनुग्राहकना अभावथी वैलक्षण्यपणुं कह्युं ते केम घटे? समाधानः— त्यांहां श्रुतिः—

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो
भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः
सृजते न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भ-
वन्त्यथानन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते
न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रव-
न्त्यो भवन्त्यथ वेशान्ताः पुष्करि-
ण्यः स्रवन्त्यः सृजते स हि कर्त्ता २

अर्थः— ते स्वप्नने विषे रथादिक विषयो नथी, तथा रथादिकने विषे जोडवा योग्य अश्वादिक पण नथी, अने रथादिकने चालवाना मार्गो पण नथी; तथापि ए आत्मा, रथोने तथा अश्वोने तथा मार्गोने पोतेज स्रजे छे. शंकाः— रथादिकनां साधनभूत काष्ठादिकनो अभाव छे माटे कही रीते

स्त्रजे ? समाधानः— जाग्रत लोकनी वासनामात्रने ग्रहण करीने अने ते देहनो विघात करीने ए आत्मा स्वाप्न लोकने स्त्रजे छे. ए वासनात्मक अंतःकरणनी वृत्तिज स्वप्न लोकनी उपलब्धिमां निमित्तभूत शुभाशुभ कर्मे प्रेरी छती दृश्यरूपे रहे छे एम पूर्वे कह्युं हतुं तेहेने केम भूली गयो? स्वप्नने विषे करण तथा तेहेना अनुग्राहक आदित्यादिक प्रकाश तथा तेथी अवभास्य एवा रथादिक विषयो विद्यमान छे तथापि ते केवळ वासनामात्रज छे, अने ते सर्वे कर्मेनी प्रेरणाथी उद्भूत एवी अन्तःकरणनी वृत्तिने विषे देखाय छे; ते सर्व अलुप्तदृक् जे ज्योतिषथी जणाय छे ते आत्मज्योतिष, ए स्वप्नने विषे कोशथी असीनी पेठे केवळ विविक्त छे; तथा ते स्वप्नने विषे जाग्रत प्रसिद्ध सामान्य आनन्द नथी अने मुद (पुत्रादिकना लाभ निमित्त हर्ष) नथी तथा प्रहर्ष (अतिशयित आनन्द) पण नथी; तथापि तेमने आत्मा स्त्रजे छे. वळी स्वप्नने विषे वेशान्त एटले अल्प जलाशय, महा सरोवर, नदीओ तथा गिरि समुद्रादिक नथी तथापि आत्मा तेने वासनामात्रने स्त्रजे छे. आत्माने विषे जे सृष्टिनुं कर्त्तृत्व कह्युं, ते वासनानी आश्रयभूत चि-

त्तवृत्तिनां उद्भूतपणामां निमित्तभूत कर्मरूप हेतु-थी औपचारिक (विवर्त्तरूप) जाणवुं, पण साक्षात् कर्त्तृत्व नहि; केमके आत्माने विषे साधनना अभावथी क्रिया संभवतीज नथी, अने कारक विना क्रियानो संभवज प्रसिद्ध नथी. स्वप्नमां हस्त पादादिक क्रिया कारकोनो संभव नथी वास्ते ते आरोपित जाणवो– एटले ए स्वयंज्योतिषरूप अधिष्ठान विषे पूर्वोक्त सर्व अध्यस्तरूप अर्थात् विवर्त्तरूप जाणवुं. * २

उपर प्रमाणे तैजसाभिमानी उकारमात्रात्मक स्वप्नावस्थामां विचित्र सूक्ष्म भोगो भोगवीने पूर्वोक्त शकुनिनां दृष्टान्तनी पेठे श्रमित थइने मकार मात्रामां लीन थयो. तैजस प्राज्ञमां मळ्यो अने हिरण्यगर्भ अव्याकृतमां मळ्यो. ए प्रमाणे स्वप्ननो अस्त काळ अने सुषुप्तिनो उदय काळ ए बन्नेनी अन्तरालावस्थामां निरुपाधिक अन्तर्यामिनो अनुभव थाय छे.

हवे मकार मात्रा, तमोगुणात्मिका, सुषुप्ति

---

* विवर्त्तनुं लक्षण. "कारणेन विषमसत्ताकोऽन्यथाभावो विवर्त्तः" अर्थः— कारणनी साथे विषम छे सत्ता जेनी एवो जे अन्यथा भाव एटले रूपांतरनी प्रतीति ते विवर्त्त. जेम रज्जुने विषे भुजंग.

अवस्था, हृदय स्थानक, आनंद भोग, एकीभूत्वा एकीभूत एटले जागरित अने स्वप्न ए बन्ने स्थाने करीने प्रविभक्त (पृथक् पृथक्) एवुं जे मन स्पंदमात्र स्थूळ तथा सूक्ष्म द्वैत समूह ते सर्व जेवुं पोतानुं विभक्तरूप छे तेहेना अपरित्यागे करीनेज पोताना सर्व विस्तारे सहित छतुं अव्याकृत नामना कारणभावने पामे छे (कारणात्मक होय छे) जेम दिवस निशानां तमथी ग्रस्त थयो छतो तमस्त्वपणाथीज व्यवहार थाय छे तेम स्थूळ, सूक्ष्म कार्य समूह पण कारणभावने पाम्युं छतुं कारण शब्दे करीनेज व्यवहार थाय छे, ते अवस्थारूप उपाधिथी उपहित चैतन्य आत्मा पण एकीभूत कहेवाय छे. चेतोमुख एटले “ प्रतिबोधविदितं मतं ” ए श्रुतिमां प्रसिद्ध एवा प्रतिबोध शब्दे करीने वाच्य जे स्वप्न अने जागरित तेने चेतस् कहे छे,ते चेतस् प्रत्ये द्वारभूत होवाथी प्राज्ञ चेतोमुख कहेवाय छे. सुषुप्तरूप द्वार विना स्वप्न अने जाग्रतनो संभवज नथी, केमके स्वप्न तथा जाग्रत बन्ने पण सुषुप्तिनां कार्यरूप छे; ए रीते सुषुप्तिनो अभिमानी प्राज्ञ स्थानद्वयनुं कारण होवाथी चेतोमुख ए नामनो भजनार छे. अथवा सुषुप्ताभिमानी

प्राज्ञनुं स्वप्न अने जागरित प्रत्ये क्रमथी वा अक्रमथी जे आवागमन ते प्रत्ये चैतन्यज द्वारभूत छे; केमके चैतन्य विना कोइ पण चेष्टा सिद्धज थाय नही ए अभिप्राये प्राज्ञ चेतोमुख कहेवाय छे. घनप्रज्ञ एटले जाग्रत तथा स्वप्ननामक मनना स्पंदरूप प्रज्ञानो जे अवस्थामां घनीभाव अर्थात् अविभक्त थाय छे ते. प्राज्ञाभिमानी भोक्ता एटले प्रज्ञप्तिमात्रज जेनुं असाधारण रूप अर्थात् विशेष ज्ञानना राहित्यथी ते अध्यात्मक अने अधिदैव अव्याकृत ईश्वर तेहेने शबळ ब्रह्म पण कहे छे, ते समष्टि प्राज्ञनो आयतन छे. त्यांहां श्रुतिः—

"न किंचित्कामं कामयते न किंचित्स्वप्नं पश्यति। तापी अतापी भवति विद्धोऽविद्धो भवति."

व्यष्टि समष्टिनी एकात्मकताथी आनंद भोग तेहेमां अन्य श्रुतिः—

सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोभिभूतः सुखरूपमेति।

अर्थः— सुषुप्ति काळने विषे एटले आनन्दभोगना अवसरने विषे सर्व विशेष अज्ञानरूप

स्वकारणमां लय पामे छते, अज्ञाने करीने आवृत एवो छतो सुखरूपने एटले स्वप्रकाश आनन्दात्मक स्वरूपने पामे छे.

ए रीते सुषुप्ति अवस्थामां आवरण युक्त आनन्द भोगवीने ते मकार मात्रा, आवरण(अज्ञान)-नो भंग करीने शुद्ध ब्रह्मनो अनुभव थवा सारु अर्ध मात्रामां लीन थई- एटले अर्ध मात्रा, शुद्ध सत्वगुणात्मिका, तुर्य्यावस्था, हृदयाकाश स्थानक, परमानन्द भोग, अन्तर्यामी भोक्ता ते अध्यात्मक, अने अधिदैव शुद्ध ब्रह्मस्वरूप. ए रीते अध्यारोप दृष्टिथी अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत सर्व प्रपंचने विषे अधिष्ठान स्वरूपनो अनुभव कराव्यो. हवे अपवाद दृष्टिथी "नेतिनेति" ए श्रुतिने अनुसारे अनुसंधान. त्यांहां मांडूक्यनी श्रुतिः-

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।
अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं
मन्यंते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ १ ॥

अर्थः– अवस्थात्रयथकी अतीत एवां तुर्य्य स्वरूपनो अध्यारोप दृष्टिथी विधि मुखे अनुभव थई शकेज नहि, माटे अपवाद दृष्टिथी निषेध मुखे तेहेनो अनुभव करावे छे. "नान्तःप्रज्ञमिति" आ श्रुतिमा प्रथम प्राप्त बहिःप्रज्ञ विश्वाभिमानीनो त्याग करीने तैजसाभिमानी अन्तःप्रज्ञने जे पेहेलो निषेधमां लीधो तेहेनुं कारण ए छे के, जाग्रदादि त्रण्ये अवस्थाने स्वप्नपणुं जणाववाने माटे; त्यांहां श्रुतिः– "त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः" तथा आतिवाहिक पण अन्तःप्रज्ञ छे तेथी तेहेने प्रथम ग्रहण कर्यो. 'न अन्तःप्रज्ञं' एणे करीने स्वप्नाभिमानी तैजसनो निषेध; तथा 'न बहिःप्रज्ञं' एणे करीने जाग्रत अभिमानी विश्वनो निषेध; अने 'नोभयतःप्रज्ञं' एणे करीने जाग्रत स्वप्न बेउनी अन्तरालावस्थानो प्रतिषेध; तथा 'न प्रज्ञानघनं' एणे करीने सुषुप्ति अवस्थानो प्रतिषेध; अने 'न प्रज्ञं' एणे करीने एके काळे सर्व विषयोना ज्ञातृत्वनो निषेध; अने 'न अप्रज्ञं' एणे करीने अचैतन्य(जडपणा)नो निषेध. शंकाः– आत्माने विषे प्रत्यक्षादि प्रमाणे करीने गम्यमान एवां अन्तःप्रज्ञत्वादिनो रज्जु आदिकने विषे सर्पादिकना निषे-

धनी पेठे प्रतिषेध करवाथी ते अन्तःप्रज्ञत्वादिनुं असत्वपणुं केम सिद्ध थाय? समाधानः—आत्मस्वरूपने विषे अन्तःप्रज्ञत्वादि धर्मोनो परस्पर व्यभिचार छे; जेम रज्ज्वादिकने विषे सर्प, धारा, माला इत्यादिकनो परस्पर व्यभिचार छे, अने जेम अधिष्ठानभूत रज्जुनो व्यभिचार नथी तेम आत्मस्वरूपनो पण व्यभिचार नथी; माटे आत्माने विषे कल्पित अन्तःप्रज्ञत्वादिओनो सर्पादिकनी पेठे निषेध घटे छे. शंकाः— ज्ञप्तिस्वरूपनुं सत्यपणुं सुषुप्तिने विषे व्यभिचार पामे छे. समाधानः— सुषुप्तिनुं साधक ज्ञप्तिस्वरूप अनुभव थाय छे माटे ते विषे सत्यत्वनो व्यभिचार घटे नहि. तेमां श्रुतिना अर्थनुं प्रमाणः— “विज्ञाताना विज्ञप्तिनो लोप थतो नथी, अविनाशी छे माटे.” पूर्वोक्त रीतिए तुर्यस्वरूप निर्विशेष छे माटेज ‘अदृष्टं’ एटले चक्षुरादि ज्ञानेंद्रियोनुं अविषय, अने अविषयताथकीज ‘अव्यवहार्य’ एटले व्यवहारनो विषय नहि; तथा ‘अग्राह्य’ एटले कर्मेंद्रियोथी ग्रहण थई शके नहि; वळी ‘अलक्षण’ एटले लिंग रहित अर्थात् अनुमाननुं अविषय, माटेज ‘अचिन्त्य’ एटले मननुं अविषय अर्थात् चिंतवनमां न आवे; अने मननी

अविषयताथकीज 'अव्यपदेश्य' एटले शब्द प्रमाणनुं पण अविषय; तथा 'एकात्मप्रत्ययसारं' एटले जाग्रदादि अनेक स्थानोने विषे ए आत्मा एक, ए प्रकारे जे अव्यभिचारी प्रत्यय तेणे करीने अनुभव करवा योग्य; अथवा एक आत्मप्रत्ययज (आत्माकारवृत्तिज) जे तुर्यना अनुभवने विषे प्रमाणभूत छे ते. 'नान्तःप्रज्ञं' इत्यादि पदोये करीने स्थानवान्‌ना धर्मोनो निषेध कर्यो; अने 'प्रपञ्चोपशमं' एटले जाग्रदादिक स्थानना जे धर्मो तेणे पण रहित, माटेज 'शान्तं' एटले अविक्रिय अने शिवरूप, केमके 'अद्वैतं' एटले भेद विकल्पे रहित एवां तुर्य्य स्वरूपने 'मन्यन्ते' एटले ज्ञानी लोको माने छे; अने प्रतीयमान एवा जाग्रदादि त्रण पादथी विलक्षण छे माटे तेज तुरीय स्वरूप आत्मा तथा तेहेनोज साक्षात्कार करवो; जेम प्रतीयमान एवा सर्प दंडादिकथी अतिरिक्त रज्जु स्वरूपने जाणे छे, तेम "तत्त्वमसि" इत्यादिक वाक्योनो अखंडाकार अनुभव करवो. त्यांहां बृहदारण्यकनी श्रुतिः—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥१॥

अर्थः– 'अदः' एटले अपरोक्ष एवुं तत्पद लक्ष्य जे ब्रह्म ते पूर्ण छे, एटले आकाशनी पेठे व्यापक, निर्भेद अने निरुपाधिक छे; एज सोपाधिक छतुं एटले नाम रूपमां स्थित अने व्यवहारयुक्त छतुं 'इदं' एटले त्वं पद लक्ष्य प्रत्यगात्मस्वरूप छे; ते पण पूर्णस्वरूपज छे. शंकाः—सोपाधिक प्रत्यगात्मस्वरूपने पूर्णत्व केम घटे? समाधानः– उपाधिपरिच्छिन्न एवां विशेष स्वरूपे अमे पूर्णत्व कहेता नथी, किंतु अविशेष पारमार्थिक परमात्मस्वरूपे पूर्णत्व कहीये छीये. ते विशेष स्वरूप कार्यात्मक ब्रह्म, पूर्णब्रह्मरूप कारणथी उत्पन्न होय छे; यद्यपि कार्यस्वरूपे उद्भव पाम्युं तो पण पोताना पारमार्थिक पूर्ण परमात्मभावनो त्याग करतुं नथी, ते कार्यात्मक पूर्ण ब्रह्मनुं पूर्णत्व ग्रहण करीने एटले लक्ष्य एवा तत्पदार्थनी संघाते एकरसतानुं संपादन करीने अर्थात् अविद्याये करेला देहेंद्रिय विषयादिरूप उपाधिना संसर्गथी जन्य एवा आभासत्व, परिच्छिन्नत्वनो विद्याये करीने तिरस्कार कर्याथी अनन्तर, अबाह्य, प्रज्ञानघन, एकरस एवुं केवल ब्रह्मज अवशिष्ट रहे. १

आत्मस्वरूप दुर्विज्ञेय छे माटे सिंहावलोकन

न्याये करीने आचार्यनी उक्तिनो विचार.

मांडूक्यप्रथम प्रकरण.

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते । अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥ १ ॥

अर्थः— जे आ संसारी जीव ते बीजरूप एवुं तत्त्वनुं अग्रहण, तथा कार्य्यरूप अन्यथा ग्रहणस्वरूप एवो अनादि काळथी प्रवृत्त मायारूपी बे प्रकारनो जे स्वप्न तेणे करीने " आ म्हारो पिता; आ म्हारी स्त्री; आ म्हारो पुत्र; आ म्हारो दौहित्र, पौत्र, क्षेत्र, तथा पशुओ; ए सर्वेनो हुं स्वामी छौं, सुखी छौं, दुःखी छौं; आणे मने क्षय पमाड्यो; आणे मने वृद्धि पमाड्यो. " ए प्रकारनां स्वप्नोने जाग्रत तथा स्वप्नरूप स्थानद्वयने विषे जोतो छतो सुइ रहे छे (अज्ञानमां मग्न रहे छे); परंतु ज्यारे वेदांतोना अर्थतत्त्वनो जाणनार परम दयाळु गुरुए " तुं पूर्वे कह्या प्रमाणे सुखदुःखादि हेतु फळरूप नथी; किंतु "तत्त्वमसि" (ते ब्रह्म तुं छो) " ए रीते बोध पमाड्यो होय त्यारे ते एम जाणे छे के, ए ब्रह्मस्वरूपने विषे बाह्य तथा आंतर एवा जन्मादि षड्-

भाव विकारो छेज नहि; माटे 'अज' एटले बाह्याभ्यंतर सर्व भाव विकारे रहित; तथा जे आनंदात्मस्वरूपने विषे जन्मादिकनुं कारणभूत अविद्यात्मक अज्ञानरूपी बीजरूप निद्रा विद्यमान नथी, माटे 'अनिद्रः;' तथा ते तुर्यस्वरूप आत्मा स्वप्न रहित छे, केमके अन्यथा ग्रहणरूप स्वप्ननुं निमित्तभूत अविद्यानो नाश थयो छे; अने जे हेतुथी अज, अनिद्र, अस्वप्नरूप छे,ते हेतुथी 'अद्वैत' एटले सर्व द्वैत प्रपंचथी रहित एवा तुर्य आत्मस्वरूपने जाणे छे. १

नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथञ्चन । न पृथङ्नापृथक्किञ्चिदिति तत्त्वविदो विदुः ॥ १ ॥

अर्थः— तेत्रीशमां श्लोकमां कह्युं के अद्वैत शिवरूप छे ते शी रीते? ते उपर कहेछे के, एकनुं बीजाथी नानाभूत पृथक्क ज्यांहां जोवामां आव्युं होय त्यांहां अशिव होय, पण अद्वैत परमार्थ सत्यस्वरूप आत्माने विषे प्राणादिक सर्व जगत परमार्थस्वरूपे निरूपण कर्युं छतुं वस्त्वंतररूप होय नहि; जेम रज्जुनुं स्वरूप प्रकाशथी निरूपण कर्ये छते कल्पित एवो नानाभूत सर्प

मालादिक नथी तेम. वळी ए प्राणादिक जगत कल्पित छे माटे स्वतः सत्ताथकी पण कोइ काळे विद्यमान नथी; जेम रज्जुने विषे सर्प कल्पित छे माटे स्वतः सत्तावान् नथी तेम; तथा जेम अश्वथी महिष पृथक् विद्यमान छे तेम प्राणादिक जगत परस्पर पण भिन्न नथी, माटे असत्पणाथकी परस्पर पण पृथक् नथी, तथा आत्मस्वरूपथकी पण पृथक् नथी. ए प्रकारे आत्मतत्त्वना जाणनारा ब्राह्मणो परमार्थ तत्त्वने जाणे छे, वास्ते अशिवमां हेतुभूत पृथक्पणाना अभावथी जे अद्वैत स्वरूप तेज शिवरूप छे. १

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा दृष्ट्वा तत्त्वं तु बाह्यतः। तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥ १ ॥

अर्थः– "हुंज परब्रह्मरूप छौं म्हाराथी अन्य किंचिन्मात्र पण नथी." ए प्रकारनी स्मृतिनो प्रवाह करवो; ते पण अमुक काळे एम नियम नथी, किंतु नित्य निरंतर करवो. ए वात कहे छे, के कल्पित एवुं बाह्य पृथिव्यादिक तथा आध्यात्मिक देहादिक रज्जु सर्पादिकनो पेठे अने स्वप्न मायादिकनी पेठे असत् छे; किंतु जे अधि-

ज्ञानस्वरूप तेज 'तत्त्व' एटले सद्रूप छे; (वाचारंभण श्रुतिनां प्रमाणथी,) अने आत्मा तो अध्यास दृष्टियेज बाह्याभ्यंतर सहित छे अने वस्तु दृष्टिये तो अजन्मा छे; तथा पूर्व रहित, अपर रहित, अंतर रहित, बाह्य रहित, आकाशनी पेठे सर्वत्र व्यापक छे, तथा सूक्ष्म, अचल, निर्गुण, निष्कल, निष्क्रिय अने सत्यरूप छे एवो जे आत्मा तेज तुं छो. ए श्रुतिना अर्थथी तात्त्विक दृष्टिये करीने पोते तत्त्वभूत तथा तत्त्वस्वरूपने विषेज रमण करनार, बाह्यार्थने विषे नहि; जेम अतत्त्वदर्शी कोइ पुरुष, चित्तने आत्मारूपे मानतो छतो, चित्तना चलननी पाछळ आत्माने चलित मानतो छतो तत्त्वथकी चलित देहादिभूत आत्माने कदाचित् माने छे, के "हमणां हुं आत्मतत्त्वथकी प्रच्युत थयो." अने मन समाहित थये छते कदाचित् तत्त्वभूत प्रसन्न आत्माने माने छे के "हमणां हुं तत्त्वीभूत थयो." आत्मवेत्ता पुरुष तेम होतो नथी; केमके आत्मा तो एकरूप छे वास्ते तेने विषे स्वरूपथकी प्रच्यवननो संभवज नथी, माटे सदा काळज "हुं ब्रह्म छौं" ए प्रकारे अप्रच्युत होय. अभिप्राय ए छे के, सदा काळने विषे स्वरूपत-

स्वथकी अप्रच्युत आत्मस्वरूपनो जोनार होय.
(" शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शि-
नः " तथा " समं सर्वेषु भूतेषु " ए स्मृ-
तिनां प्रमाणथी.) १

अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् ।
सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्च न १

अर्थः— जन्ममां निमित्तभूत एवी अविद्या-
नो अभाव छे माटे बाह्याभ्यंतर सहित आत्म-
स्वरूप 'अजं' एटले अजन्मा छे— अविद्यारूप
निमित्ते करीने रज्जुसर्पादिकनी पेठे जन्म होय
ए प्रकारे पूर्वे कही आव्या छिये ते अविद्या स-
त्यस्वरूप आत्माना बोधे निवारण करी छे, मा-
टे आत्मस्वरूप अजन्मा छे; अने एज हेतुथी
'अनिद्रं' एटले अविद्यास्वरूप अनादि माया-
रूपी निद्राये रहित; मोहरूपी स्वापथकी अद्वैत
आत्मस्वरूपे करीने प्रबुद्ध थयो छे माटे 'अ-
स्वप्नं' एटले बाह्याभ्यंतर स्वप्ने रहित; अबोधे क-
रेलां आत्मा संबंधि जे नाम रूप ते प्रबोधानंतर
रज्जुसर्पनी पेठे नष्ट थई गयां छे माटे ब्रह्म-
स्वरूप आत्मा कोई पण नामे करीने कही श-

कातो नथी, तथा कोई पण रूपे करीने निरूपण थई शकतो नथी, माटे 'अनामरूपक' एटले नाम रूपे रहित; ("यतो वाचो निवर्त्तते" ए श्रुतिनां प्रमाणथी.) वळी 'सकृद्विभातं' एटले सर्वदाज प्रकाशरूप छे; केमके स्वरूपनुं अग्रहण तथा अन्यथा ग्रहण, आविर्भाव, तिरोभावादिथी रहित छे एटले रात्रीरूप अग्रहण तथा दिवसरूप अन्यथाग्रहण अने अविद्यारूप तम ए सर्वे सदा अप्रभातपणामां कारण छे, ते सर्वेनो अभाव होवाथी नित्य चैतन्य भारूप छे माटे सदाज प्रकाशमान कह्युं ते युक्त छे; माटेज 'सर्वज्ञं' एटले पूर्ण 'ज्ञ' स्वरूप एवां ब्रह्मने विषे 'उपचार' एटले समाध्यादि उपाय करवा योग्य नथी, जेम बीजा अनात्मवेत्ता पुरुषोने समाधानादि उपाय करवा योग्य छे तेम विद्वानने नहि; अविद्या दशामांज ध्यान समाध्यादि सर्व व्यवहार छे, विद्यादशामां तो अविद्याज नथी, माटे ध्यानादिक कोई पण व्यवहार होयज नहि– बाधितनी अनुवृत्तिये करीने तो समाध्यादि व्यवहाराभास सिद्ध होय छे. १

प्रातिभासिकजीवो यस्तज्जगत्प्रा-

तिभासिकम्। वास्तवं मन्यतेन्यस्तु
मिथ्येति व्यावहारिकः॥ १ ॥

अर्थः— स्वप्नमां कल्पित प्रातिभासिक नामनो जे जीव ते स्वप्नमां कल्पित प्रातिभासिक नामनां जगतने वास्तव माने छे एटले सत्य जाणे छे, पण मिथ्या नहि; केमके पोतानी ज्यां पर्यंत स्थिति त्यां पर्यंत जगतनी पण स्थिति छे; तथा प्रातिभासिकथी अन्य व्यावहारिक नामनो जे जीव ते पूर्वोक्त प्रातिभासिक जगतने तथा तेनो द्रष्टा प्रातिभासिक जीवने पण मिथ्या माने छे, सत्य माने नहि; केमके स्वप्नथी पूर्वे तथा स्वप्नानंतर प्रबोधने विषे ते बन्ने प्रातिभासिक दृश्य द्रष्टानी स्थिति नथी. १

व्यावहारिकजीवो यस्तज्जगद्व्याव-
हारिकम्। सत्यं प्रत्येति मिथ्येति
मन्यते पारमार्थिकः॥ २ ॥

अर्थः— अने जे व्यावहारिक जीव ते मायाकल्पित व्यावहारिक जगतने सत्य जाणे छे मिथ्या जाणतो नथी; केमके पोतानी ज्यां पर्यंत स्थिति त्यां पर्यंत व्यावहारिक जगतनी पण

स्थिति छे; अने ते व्यावहारिक जीवथी अन्य पारमार्थिक जे जीव ते व्यावहारिक जगतने तथा तेनो द्रष्टा व्यावहारिक चिदाभासने मिथ्या माने छे सत्य मानतो नथी; केमके नित्य प्रलयनामक सुषुप्तिने विषे व्यावहारिक दृश्य जगत तथा तेनो द्रष्टा व्यावहारिक जीव ए बन्नेनी स्थितिनो अभाव अनुभव सिद्ध छे, "नासदासीन्नोसदासीत्" इत्यादि श्रुतिने अनुसारे. व्यावहारिक दृश्य द्रष्टा बेउने अनादित्व छतां पण "गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठा" इत्यादि श्रुतिना अनुसारे वर्त्तमान देहनुं राहित्यरूप विदेह कैवल्य दशाने विषे व्यावहारिक दृश्य द्रष्टानी प्रतीतिनो पण आत्यंतिक नाश निश्चित छे माटे. श्रुति, आचार्य्य अने अनुभवथी स्वभावसिद्ध ब्रह्मैकात्मत्वनो साक्षात्कार कर्ये छते भाविदेहनुं राहित्यरूप जीवन्मुक्ति दशाने विषे व्यावहारिक जीव जगतनी कादाचित्क प्रतीति थाय छे तो पण ते बन्नेनी सत्तानो आत्यंतिक नाश श्रुति, युक्ति अने अनुभवथी सिद्ध छे माटे. वास्ते प्रातिभासिक जीव जगत जेम मिथ्याभूत छे तेमज व्यावहारिक जीव जगत पण मिथ्याभूत छे. ए तात्पर्य्यार्थ. २

पारमार्थिकजीवस्तु ब्रह्मैक्यं पार-
मार्थिकम्। प्रत्येति वीक्षते नान्य-
द्वीक्षते त्वनृतात्मना ॥ ३ ॥

अर्थः— पारमार्थिक एटले साक्षात् परमात्मस्वरूप जे जीव ते वर्त्तमान देहनुं राहित्यरूप विदेह कैवल्यनी प्राप्ति पर्यंत ब्रह्मचित् शब्दे करीने लक्ष्य अने साक्षीरूप तथा स्वगत सजातीय विजातीयभेद रहित तथा बंध मोक्ष व्यवहारथी अतीत सत्, चित्, आनंदरूप अने स्वस्वरूप एवा ब्रह्मैक्यनेज पारमार्थिक जाणे छे, अन्य जोतो नथी; " यत्र नान्यत्पश्यति " " यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् " ए श्रुतिनां प्रमाणथी. यद्यपि प्रबळ प्रारब्धने वशे स्वस्वरूप अवस्थानथी चिदाभास आकारे करीने व्युत्थान पाम्यो छतो कदाचित्जीव जगत आदिकने जुवे छे, तो पण मिथ्यात्वरूपेज जुवे छे, सत्यत्वे करीने नहिं. ए तात्पर्य्यार्थ. ३

माधुर्य्यद्रवशैत्यानि नीरधर्मास्तरं-
गके। अनुगम्याथ तन्निष्ठे फेनेप्यनु-
गता यथा ॥ ४ ॥

अर्थः– आरोपितने अधिष्ठानथी अनन्यपणुं तथा तन्मात्रपरिशेषपणुं दृढ करवा माटे दृष्टांत कहेछे के, जेम माधुर्य, द्रवत्व अने शीतलत्व ए जळना गुण छे ते जळनी उपर वायुवशथी तरंग उत्पन्न थये छते जळनो विवर्त्त छे, माटे जळनिष्ठ ते तरंगने विषे अनुगत थइने अनन्तर तरंगनो विवर्त्तरूप अने तरंगनिष्ठ एवा फेनने विषे पण अनुगत थायछे. जळ, तरंग, फेन ए प्रकारे भेद विद्यमान छते पण माधुर्य, द्रव अने शैत्यथकी अतिरिक्तताये करीने जळ, तरंग, फेनोना स्वरूपनो अभाव छे माटे ते माधुर्यादिरूपज छे. ए रीते पूर्व पूर्व अधिष्ठाननोज उत्तर उत्तर विवर्त्त छे वास्ते उत्तर उत्तर कार्य्यनुं पूर्व पूर्व अधिष्ठानथी अनन्यत्व छे. ४

साक्षिस्थाः सच्चिदानन्दाः संबंधा-
द्व्यावहारिके। तद्द्वारेणानुगच्छंति त-
थैव प्रातिभासिके ॥ ५ ॥

अर्थः– पूर्वोक्त दृष्टांत प्रमाणे ब्रह्मस्वरूप साक्षीने विषे रहेला अने स्वरूपलक्षण शब्दे करीने वाच्य एवा सत्त्व, चित्त्व, आनंदत्वरूप धर्मो तरंगने विषे जळगुणना संबंधनी पेठे व्यावहा-

रिक जीव जगतने विषे संबंध पामीने प्रातिभासिक जीव जगतने विषे पण अनुवृत्त होयछे; जेम पूर्वोक्त दृष्टान्तमां तरंगनो विवर्त्त फेन तरंगथी अभिन्न छे, तथा जळनो विवर्त्त तरंग जळथी अभिन्न छे, अने सर्वने विषे अनुस्यूत एवा माधुर्यादि गुणो जळथी अभिन्न छे; ते प्रकारे प्रातिभासिक जगत जीव, व्यावहारिक जगत जीवथी अभिन्न छे, अने व्यावहारिक जगत जीव, साक्षी चैतन्यथी अभिन्न छे, अने साक्षीनिष्ठ सच्चिदानन्द धर्मो ब्रह्मचैतन्यथी अभिन्न छे. ५

पूर्वोक्त सर्व अर्थनो उपसंहाररूप चतुर्थ प्रकरणनी समाप्तिमां गौडपादीय कारिका.

दुर्दर्शमतिगंभीरमजं साम्यं विशारदं।
बुद्ध्वापदमनानात्वं नमस्कुर्मो यथाबलं॥१॥

अर्थः– 'दुर्दर्शं' एटले महा दुःखे करीने जेनो साक्षात्कार थाय एवुं; केमके अस्ति, नास्ति इत्यादिक चार कोटीथी वर्जित छे अर्थात् दुर्विज्ञेय; अने एज कारणथी 'अतिगंभीरं' एटले मूढ प्रज्ञ पुरुषोने महा समुद्रनी पेठे दुष्प्रवेश; त्यांहां प्रमाणः–

मग्नस्याब्धौ यथाऽक्षाणि विह्वला-

नि तथाऽस्य धीः। अखंडैकरसं श्रुत्वा
निःप्रचारा बिभेत्यतः ॥ १ ॥

तथा 'अजं' एटले जन्मादि विकारोए रहित; तथा 'साम्यं' एटले सर्व वैषम्ये रहित; तथा 'विशारदं' एटले अत्यंत निर्मल; तथा 'अनानात्त्वं' एटले सर्व नानात्त्वथी रहित एवुं 'पदं' एटले आनंदात्मस्वरूपने 'बुद्ध्वा' एटले यथार्थ जाणीने, आत्मस्वरूपभूत थया छता अमो ते पदने नमस्कार करीये छैये. यद्यपि परमार्थ वस्तु नमस्कारादि व्यवहारनुं अविषय छे तथापि मायाशक्तिने अनुसारे व्यवहारनी विषयतानी कल्पना करोने नमस्कार क्रिया जाणवी. १

मांडूक्य भाष्यना छेवट मंगलाचरणना श्लोको.

अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्य्ययो-
गादगति च गतिमत्तां प्रापदेकं ह्य-
नेकम्। विविधविषयधर्म्मग्राहि मु-
ग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तृ ब्रह्म
यत्तन्नतोऽस्मि ॥ १ ॥

अर्थः— जे ब्रह्म, सर्व उपनिषदोमां प्रसिद्ध छे, अने सर्व परिच्छेद (देशकृत, काळकृत, व-

स्तुकृत) तेणे रहित छे तेने प्रत्यक्भूत हुं नमस्कार करुं छौं (ऐक्यताये करोने प्रकटोभाव करुं छौं). प्रणामनुं प्रयोजन कहेछे, के जे प्रणाम करनारा एटले ऐक्यताथो साक्षात्कार करनारा ब्रह्मनिष्ठ उत्तमाधिकारीओ तेमनी अविद्याने तथा तेनुं कार्य्यभूत संसार भयने आचार्य्यना उपदेशथकी जनित जे ब्रह्माकार वृत्ति तेंमां आरूढ थयुं एवुं ब्रह्मज हणे छे; केमके जड एवी वृत्ति चैतन्य वस्तुनां सामर्थ्य विना अज्ञानने अने तेनां कार्य्यने टाळवाने समर्थ नथी; अर्थात् बुद्धिमां इद्ध एटले प्रदीप्त थयो बोध तथा बोधे करीने इद्ध बुद्धि अज्ञान अने तेनां कार्य्य जन्म मरणादि संसारनो नाशरूप फळने संपादन करे छे एज तात्पर्य्य. हवे ब्रह्मनां तटस्थ लक्षणने कहेछेः– यद्यपि ब्रह्म, जन्मादिक सर्व विक्रियाये शून्य छे एटले निर्विकार शुद्ध छे, तथापि पोतानी शक्तिरूप अनिर्वाच्य अज्ञान वैभवरूप ऐश्वर्यना योगथी आकाशादिक कार्य्यरूपे करी जन्मनो संबंध पामीने जगतनुं निदान एटले आदि कारण एवा व्यवहारने भजनार होय छे; (ब्रह्मनें जगतनुं कारणपणुं श्रुतिमां तथा व्याससूत्रमां पण प्रसिद्ध छे.) यद्यपि ए ब्रह्म, कूटस्थ-

पणाथी अने व्यापकपणाथी गति रहित छे तथापि पूर्वोक्त अज्ञाननां महात्म्यथी कार्य्य ब्रह्मपणाने पामीने गतिमानपणाने पामे छे. यद्यपि ए ब्रह्म, वास्तवताथी समस्त नानापणाये रहित, एकरस, अद्वितीय एवुं उपनिषदोये प्रतिपादन कर्युं छे तथापि जीव, जगत अने ईश्वर ए प्रकारे अनादि, अनिर्वाच्य अविद्याना वशथी अनेक जेवुं भासे छे. कोनी दृष्टिये ब्रह्मने विषे अनेकपणुं भासे छे? ते कहेछे के, विविध प्रकारना जे विषयधर्मो तेमने सत्य तथा समीचीन बुद्धिये करीने ग्रहण करवाथी विवेक रहित छे अंतःकरण जेमनुं एवा मूढनी दृष्टिये ब्रह्मने अनेकपणुं भासे छे; शांत एटले विवेकीनी दृष्टिये तो ब्रह्मने विषे एकत्वपणुंज प्रामाणिक छे. १

प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेद-
नाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्य म-
ग्नान्यविरतजननग्राहघोरे समुद्रे ।
कारुण्यादुद्दधारामृतमिदममरैर्दुर्लभं
भूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपूज्यं परम-
गुरुममुंपादपातैर्नतोऽस्मि ॥ २ ॥ ॥

अर्थः— ग्रंथनी रचनानां प्रयोजननुं प्रदर्शन-

पूर्वक व्याख्यान कर्युं. हवे आगम शास्त्रना रच- नार परम गुरु गौडपादाचार्य्यने भगवान् भाष्य- कार प्रणाम करेछे. जे गुरु आ ज्ञानरूपी अमृतने करुणाथी प्राणियोना उपकारने माटे उद्धार करता हवा ते आ परम गुरुने नमस्कार करुं छौं. ते परम गुरु केवा छे के, पूज्य एवा अन्य गुरुओ मध्ये अति पूज्य छे माटे पूज्यपूज्य छे. ए गुरुनां च- रणारविंदने विषे पोतानुं उत्तमाङ्ग एटले मस्तक- नां जे वारंवार पतन एटले नम्रीभाव, तेणे करीने नमुं छौं. ए आचार्य्य केवां ज्ञानरूपी अमृतने उद्धरण करता हवा? ते कहेछे के, मेधा एटले धारणा सहित जे प्रज्ञा, ते रूपी मंथन दंडे करीने विलोडन कर्यो एवो वेदरूपी जे समुद्र, तेनी अंदर रहेनारां ज्ञानरूपी अमृतने उद्धरण करता हवा. ज्ञानरूपी अमृतने प्रसिद्ध अमृतथी अवांतर वैषम्यपणुं देखाडे छे के, भगवान् ना- रायणे क्षीरसमुद्रमां रहेलुं जे अमृत उद्धरण कर्युं ते तो देवताने अनायासे प्राप्त थयुं हतुं, अ- ने आ ज्ञानरूप अमृत तो ज्ञान साधनोना प्र- यास विना देवताने पण दुर्लभ छे. श्री आचा- र्य्ये करुणाथी ए ज्ञानरूप अमृत वेदरूप समुद्र- थी प्राणियोना उपकारने माटे उद्धरण कर्युं, ते

आचार्य्यने करुणा केम उत्पन्न थई ? ए आकांक्षा उपर कहेछे के, जे आ समुद्रनां जेवो दुस्तर संसार तेमां निरंतर जे जनन एटले अनेक देहनां ग्रहणो, ते रूपी जे मगरो तेमणे करीने अति भयंकर एवा संसार समुद्रमां मग्न एटले डुबनारनी पेठे परवश एवां प्राणियोने जोईने आचार्य्यने करुणा प्रकट थई तेथी ज्ञानरूप अमृतने उद्धरण करीने सहु प्राणियोने आपीने तेमने रक्षण करता हवा. २

यत्प्रज्ञालोकभासा प्रतिहतिमगमत्
स्वांतमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्च घो-
रे ह्यसकृदुपजनोदन्वति त्रासनेमे ।
यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनय-
प्राप्तिरग्राह्यमोघा तत्पादौ पावनीयौ
भवभयविनुदौ सर्वभावैर्नमस्ये ॥ ३ ॥

अर्थः— गुरुभक्तिने विद्याप्राप्तिने विषे अंतरङ्ग साधनपणाने अंगीकार करीने गुरुनां चरणारविंदने प्रणाम करे छे. ते गुरुना चरणारविंदने सर्वभावथी एटले शरीर, वाणी, मनना प्रकटीभावथी नमुं छौं. ए गुरुचरण पावनरूप छे माटे सर्वने विषे पण पवित्रतानुं संपादन करनारां छे;

वळी ए चरण पोताना संबंधि भक्त जनोनां सं-
सारकृत दुःखने कारणभूत मूलाज्ञान सहित टा-
ळीने परम पुरुषार्थने विषे परिसमाप्ति करनारां
छे. गुरुरूपनुं वर्णन करे छे के, म्हारां अन्तःकर-
णने विषे जे मोह तेनो हेतुभूत जे अविवेक
तेनुं कारणभूत जे अनादि अज्ञानरूप अंधकार,
ते जे गुरुनी प्रज्ञारूपी जे आलोकदीप्ति, तेणे वि-
नाश पमाड्युं, ते गुरुनां चरणने नमस्कार. आ-
चार्य्यना प्रसादथी केवळ अज्ञानज तुच्छ थई
जायछे एटलुंज नहि, किंतु अज्ञाननुं कार्य्य अ-
नर्थजात एटले संसृति पण कारणभूत अज्ञान-
नी निवृत्ति थये छते स्थिति न पामतुं (न रहे-
तुं) छतुं आभासरूप होय छे. ए वात कहेछे के,
वारंवार देव, तिर्यक् आदि अनेक योनियोने वि-
षे जे जन्म (अनेक प्रकारना देहोनुं ग्रहण)
ते रूपी अत्यंत त्रास पमाडनार भयंकर समुद्र
एटले कोइ समे पूर्वोक्त अज्ञान कार्य्यरूपें मज्ज-
न पामतुं छतुं अनभिव्यक्त रहेछे, तेज अज्ञान
अवस्थाविशेषमां कार्य्यरूपे मज्जन न पामतुं
छतुं, अनर्थनुं करनार परिवर्त्तन पामे छे; ए प्र-
कारे संसार सागरमां परिवर्त्तमान अज्ञान, स्व-
कार्य्य संघाते आचार्य्यना प्रसादथी निवृत्त थयुं

छे. आचार्य्यना प्रसादथी एक मनेज पूर्वोक्त फळनी प्राप्ति थइ एटलुंज नहिं, किंतु ए आचार्य्यना चरणनी सेवामां तत्पर एवा घणा पुरुषोने पण ते फळ प्राप्त थयुंछे. ए वात कहे छे के, जे गुरुनां चरणारविंदने आश्रय करनारा अने तेनी शुश्रूषाने विषे प्रीतिमान् एवा अनेक शिष्योने पण श्रुति एटले मनन, निदिध्यासन सहकृत श्रवण ज्ञान तथा इंद्रियोनी उपरतिरूप शांति तथा विनय (अनुद्धतपणुं) ते सर्वेनी प्राप्तिश्रेष्ठ एटले प्रतिष्ठित अने अमोघ एटले सफल सिद्ध थायछे. ए प्रकारे आचार्य्यना प्रसादथी पोताने तथा बीजा घणाएक शिष्योने पण परम पुरुषार्थने विषे परिसमाप्तिनो संभव छे, वास्ते पुरुषार्थनो कामनावाळा पुरुषोए आचार्य्यनी परिचर्या काय, मन अने वाणीए करीने अवश्य करवी जोइये. ३ श्लोकः–

माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये ।
तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दशोपनिषदं पठ ॥१॥

इति श्री मदुदयशंकरात्मज गौरीशंकर-
विरचिते स्वरूपानुसंधाने चतुर्थ
प्रक्रिया समाप्ता. ॥ ४ ॥

अथ श्री स्वरूपानुसंधाने

पंचम प्रक्रिया प्रारंभः ५

वेदान्तनां प्रस्थानत्रय तेमां (१)श्रुति प्रस्थाननां १२ बार भाष्य. (२) सूत्र प्रस्थाननुं १ एक भाष्य. (३) स्मृति प्रस्थाननां ३ त्रण भाष्य.ए रीते भगवत्पाद श्री शंकराचार्ये प्रस्थानत्रय उपर षोडश भाष्य कर्यांछे.

श्रुति प्रस्थान.

एटले

उपनिषदोनां बार भाष्यः—

(१) ईश. (२) केन. (३) कठ. (४) मुण्डक. (५) प्रश्न. (६) माण्डूक्य. (७) तैत्तिरीय. (८) ऐतरेय. (९) छान्दोग्य. (१०) बृहदारण्यक. (११) केननुं वाक्य भाष्य. (१२) उत्तरनृसिंहतापिनी.

---

(१) ईशावास्योपनिषद्‌ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

येनात्मना परेणेशा व्याप्तं विश्वमशेषतः । सोहं देहद्वयोः साक्षी वर्जितो देहतद्गुणैः ॥ १ ॥

अर्थः– जे परमेश्वर परमात्माये सर्व जगत् व्याप्युं छे, तेज परमात्मा हुं छौं; तथा स्थूल, सूक्ष्म बेउ देहनो साक्षीरूप अने बेउ देह तथा तेमना धर्मोये रहित छौं. १

केटलाएक कर्मजडो माने छे के, "ईशावास्यं" इत्यादि मंत्रो कर्मना शेषभूत छे, मंत्रत्वना अविशेषथकी "इषेत्वादि" मंत्रनी पेठे. ते प्रत्ये भाष्यकार कहेछे के, ईशावास्यादि मंत्रो कर्मने विषे विनियोगवाला नथी; केमके ते अकर्मशेष एटले कर्मना अनंगभूत एवा आत्मानां यथार्थ स्वरूपना प्रकाशक छे. ते आत्माने विषे यथार्थपणुं तो शुद्धत्व, अपापविद्धत्व, एकत्व, नित्यत्व, अशरीरत्व, सर्वगतत्व इत्यादि

आगळ कहेवाशे; ते यथार्थपणुं कर्म संघाते विरुद्ध छे माटे मंत्रनो कर्मने विषे विनियोगनो अभाव युक्तज छे. ते आत्मानुं यथार्थ स्वरूप उत्पाद्य, विकार्य, आप्य, संस्कार्य, कर्त्ता, भोक्ता नथी के जेणे करीने कर्मनुं शेषपणुं कही शकाय; वळी सर्व उपनिषदोनुं तथा गीता मोक्षधर्म विगेरे अध्यात्म शास्त्रनुं तात्पर्य आत्माना यथार्थ स्वरूपना निरूपणने विषेज उपक्रमोपसंहारादि षड्विध लिंगे करीने जणाय छे; माटे आत्माने विषे आविद्यकत्व, अनेकत्व, कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व, अशुद्धत्व, पापविद्धत्व इत्यादि धर्मोने लेइनेज लोक बुद्धिथी सिद्ध एवां कर्मो विधान कर्यां छे. जे पुरुष दृष्टादृष्ट स्वर्गादि फलोनो अर्थी छतो "हुं ब्राह्मण छौं; काणत्व, कुब्जत्व इत्यादि अनधिकारना धर्मवालो नथी." ए रीते पोताने माने तेनो कर्मने विषे अधिकार ए प्रकारे अधिकारवेत्ताओ कहेछे; माटे ईशावास्यादिक मंत्रो आत्माना यथार्थ स्वरूपना प्रकाशे करीने तेने विषे स्वाभाविक कर्मोपासनानुं निवर्त्तन करता छता, शोकमोहादि संसारधर्मोना विच्छेदनमां साधनभूत एवां जीवब्रह्मनी एकतानां विज्ञानने उत्पादन करेछे. ए रीते ब्रह्मात्मैक्य-

रूप विषय; प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव संबंध; शोक मोहादि अनर्थनी निवृत्ति तथा परमानन्द प्राप्तिरूप प्रयोजन; मुमुक्षु अधिकारी ए चार अनुबंधे विशिष्ट एवा ईशादि मंत्रोनुं संक्षेपथी व्याख्यानः—

ईशावास्यमिदꣳ सर्व्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥

अर्थः— नाम रूप क्रियात्मक यत्किञ्चित् जे जगत् ते स्वात्मस्वरूप सर्वना नियन्ता परमेश्वर परमात्मारूपे आच्छादन करवुं एटले परमेश्वर परमात्माथी अभिन्न जे हुं, तेज आ सर्व जगत् छे ए रीते परमार्थ सत्य स्वरूपनी भावनाये करीने अनृत एवुं चराचरात्मक सर्व जगत् तिरोधान करवुं; जेम सूर्यनो प्रकाश सर्वत्र व्यापक छे तेमां जे त्रसरेणुओ भासेछे ते भ्रान्तिमात्र छे, वस्तुतः प्रकाशज सत्य छे; तेम नाम रूपात्मक सर्व जगत्, व्यापक आत्म प्रकाशने विषे भ्रान्तिमात्र छे, पारमार्थिकपणाथी तो आत्मस्वरूपज छे. आ मंत्रे वास्तवरूपे तो परमात्मारूपज सर्व छे, पण भ्रान्तिये करीने जे अ-

नीश्वर रूपे ग्रहण कर्युं हतुं ते सर्व ईश्वरज छे, अने ते ईश्वर हुंज छौं ए रीते ब्रह्मात्माना ऐक्यनो छांदोग्यमां "तत्त्वमसि" ए वाक्यनी पेठे उपदेश कर्यो छे. ए प्रमाणे उपदेशजन्य ज्ञानमात्रे करीने जे पुरुषने अनृत दृष्टि निवृत्त न थाय ते पुरुषने विचारादि प्रयत्न करीने तात्त्विक स्वरूपनो प्रकाश थये छते अनृत दृष्टिनो तिरस्कार थशे. एवा अभिप्राये करीने दृष्टान्त कहेछे के, जेम जलादिकना संबंधे करीने शडी गयेलां चंदन काष्ठनो क्लेदथी उत्पन्न थयेलो दुर्गंध ते काष्ठने घसेथी प्रकट थयेला पोताना पारमार्थिक सुगंधे करीने तिरोधान थई जायछे तेम आत्माने विषे अध्यस्त एवुं कर्तृत्व भोक्तृत्वादि विशिष्ट द्वैतरूप नाम रूप क्रियात्मक सर्व पण विकारनुं वृंद परमार्थ सत्य आत्मस्वरूपनी भावनाये करीने तिरोहित थायछे (तजाइ जायछे). ए प्रकारे ईश्वरथी अभिन्न आत्मभावनाये युक्त पुरुषने पुत्रादिक त्रण एषणाओना संन्यासने विषेज अधिकार छे, कर्मने विषे नहि; माटे ते त्यागे करीनेज हे पुरुष! स्व आत्मानुं पालन कर; केमके त्याग करेलो, अथवा मरण पामेलो

पुत्र, अथवा भृत्य आत्माना संबंधिपणाना अभावथी आत्मानुं पालन करी शकतो नथी; वास्ते निष्क्रिय आत्मस्वरूपे जे अवस्थान तेने विषे त्यागने अनुकूल होवाथी ते त्यागे करीनेज आत्मानुं रक्षण युक्त छे. शरीरना संधारणमां उपयोगी कौपीन भिक्षाशनादिथी अधिक द्रव्यना परिग्रहने विषे कदा राग थयो होय, तो तेना निरोधने विषे यत्न करवो; केमके ते राग स्वरूपावस्थानमां विरोधिभूत छे. माटे ए अभिप्राये करीने नियम विधि कहेछे के, हे पुरुष ! त्याग करो छे एषणाओ जेणे एवो तुं पोतानुं अथवा परनुं कोईनुं पण धन आकांक्षा न कर, अथवा तुं धननी इच्छा न कर; केमके ते धन कोनुं होयछे? कोइनुं पण नहि के जेनी इच्छा राखीए. शा कारणथी के, तें आत्माज सर्व छे ए रीते आत्मभावनाये करीने नामरूपात्मक सर्व पण त्याग कर्युं छे माटे आत्माथी अतिरिक्त कांइ छेज नहि; वास्ते मिथ्या धन विषयक आकांक्षा नही करवी. १

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलं। अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये ॥ १ ॥

आ षड्विध लिंगना अनुसारे ईशोपनिषद्नो तात्पर्य निर्णय.

आ ईशावास्य उपनिषद्मां ईश्वररूप परमात्मानी भावनाये करीने नाम रूप क्रियात्मक सर्व जगत् आच्छादन करवुं एटले सर्वात्मभावनी भावना करवी. एवो उपक्रम करीने "सपर्य्यगाच्छुक्रमगात्" ए आठमा मंत्रमां ते आत्मस्वरूप स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोथी तथा पाप पुण्यादिना संबंधथी रहित एवुं शुद्ध ब्रह्मरूप छे. ए रीते उपसंहार १. तथा मंत्र ४ "अनेजदेकं" एटले स्थिरत्वनी प्रच्युतिरूप चलने रहित अर्थात् सर्वदा एकरूप. वळी मंत्र ५ मो "तदन्तरस्य सर्वस्य" एटले ते आत्मतत्त्व सर्व जगत्ना अन्तरमां तथा बाहार व्यापक छे. ए रीते वारंवार कथनरूप अभ्यासना दर्शनथी २. अने चोथा मंत्रमांज "नैनद्देवा आप्नुवन्" एटले ए आत्मतत्त्वने मन आदिक इंद्रियो तथा तेना अधिष्ठाता देवताओ पामता नथी एटले साक्षात्कार करी शकता नथी. ए रीते इतर प्रमाणे करीने अगम्यतारूप अपूर्वताना कथनथी ३. अने मंत्र ७ मो "तत्र

को मोहः कः शोकऽ एकत्वमनुपश्यतः" एटले आत्मैकत्वनो साक्षात्कार करनार ज्ञानी पुरुषने शोक शो अने मोह शो? अर्थात् होयज नहि. ए रीते शोक मोहादि अनर्थनी निवृत्ति अने परमानन्दनी प्राप्तिरूप फलना कथनथी ४. अने मंत्र २ " कुर्वन्नेवेह कर्माणि " एटले अनात्मज्ञ एवा पुरुषे कर्म करतां छतांज जीववानी इच्छा राखवी एणे करीने जीवननी इच्छावान् भेददर्शि पुरुषने कर्म करणना अनुवादे करीने मंत्र. ४ "असुर्या नाम ते" एटले जे आत्मघाती अर्थात् आत्मानी विस्मृतिवाळा तें अज्ञानावृत आसुर लोकने पामे. ए प्रमाणे निंदाये करीने एकात्म दर्शननी स्तुतिरूप अर्थवाद दर्शाव्यो.५ अने चोथा मंत्रमां " तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति " एटले ते चैतन्य स्वभाव आत्मतत्त्व छतेज अर्थात् तेनी सत्ताथीज वायु सर्व प्राणीओने चेष्टा करावे छे. ए रीते उपपत्ति एटले युक्ति दर्शावी छे. ६

ए प्रमाणे षड्विध लिंगोथी आ उपनिषद्ना सर्वे मंत्रोनुं ऐकात्म्य एटले जीव ब्रह्मनी एकताना प्रतिपादनने विषेज तात्पर्य छे. त्यांहां श्लोकः—

सत्ये मय्येव भातं चरमचरमतोंत-
र्बहिश्चाहमेको मत्तोन्यन्नास्ति कि-
ञ्चिज्जगदपि सवितुर्मंडले पूरुषोहं।
इत्थं यस्य प्रबोधो गुरुवरकरुणापां-
गतस्तस्य तृष्णा संदेहो मोहशोकौ
भयजननजरामृत्यवो नैव संति ॥१॥

अर्थः— सत्यस्वरूप माहारे विषेज भासमान थयुं एवुं जगत् माहाराथकी किञ्चिन्मात्र पण अन्य नथी; अने आन्तरथी पण आन्तर तथा बाह्य हुंज एक छौं; तथा सूर्य मंडलमां जे पुरुष ते हुंज छौं. ए प्रकारे श्रेष्ठ गुरुना करुणा युक्त कटाक्षथी जेने प्रबोध प्राप्त थयो होय ते पुरुषने तृष्णा, संदेह, मोह, शोक, भय, जन्म, जरा, मरण इत्यादि विकारो रहेज नहि, किंतु ब्रह्मरूपज होयछे. १

---

(२) केनोपनिषद्‌ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

यच्छ्रोत्रादेरधिष्ठानं चक्षुर्वागाद्यगो-

चरम् । स्वतोध्यक्षं परब्रह्म नित्य-
मुक्तं भवामि तत् ॥ १ ॥

अर्थः– जे ब्रह्म श्रोत्रादिक इंद्रियोनुं अधिष्ठानरूप छतां तेमनुं अगोचर छे; तथा स्वतः अध्यक्ष एटले नियंतारूप अर्थात् सर्वेनुं प्रवर्त्तक अने नित्यमुक्त एवुं छे तेज ब्रह्मथी अभिन्न प्रत्यक् स्वरूप हुं छौं. १

"केनेषितम्" इत्यादि सामवेदीय तलवकार शाखानी उपनिषद्नुं व्याख्यान करवाने इच्छता एवा भगवान् श्री भाष्यकार– अहं प्रत्ययनो विषयभूत आत्माने संसारित्वरूप हेतुथी उपनिषदे प्रतिपादन करवा योग्य असंसारि ब्रह्मभावनो असंभव छे माटे ब्रह्म आत्मानी एकतारूप विषयना अभावथी आ केनोपनिषत् व्याख्यान करवा योग्य नथी एवी वादिनी शंका थये छते, अहंकारना साक्षी आत्माने विषे संसारीपणानुं ग्राहक प्रमाण कोई पण नथी, वास्ते प्रत्यक् स्वरूपने विषे ब्रह्मत्वनां प्रतिपादनमां विरोधनो संभव नथी; माटे ब्रह्मात्मैक्यरूप विषयना संभवथी आ उपनिषद्ने विषे व्याख्यान करवा योग्यपणानी प्रतिज्ञा करेछे.

"केनेषितम्" इत्यादि उपनिषत् परब्रह्मविषयक कहेवी छे वास्ते नवमाध्यायनो प्रारंभ.

आ नवम अध्यायथी पूर्वे आठ अध्यायोमां सर्व कर्मो समाप्त कर्यां, तथा समस्त कर्मोनो आश्रयभूत प्राणनी उपासनाओ तथा कर्ममां अंगभूत पाञ्चभौतिक साप्तभौतिक सामविषयक उपासनाओ कथन करी; तदनंतर वंशान्त ग्रंथे करीने गायत्र सामनी प्राण दृष्टिए उपासना पण कथन करी ए प्रकारे पूर्वोक्त कर्म तथा उपासना सम्यक् प्रकारे अनुष्ठान करी छती, निष्काम मुमुक्षु पुरुषनी सत्व शुद्धिने अर्थे होयछे, अने उपासना रहित सकाम पुरुषने तो केवळ श्रौत स्मार्त्त कर्मो अनुष्ठान कर्यां छतां दक्षिण मार्गनी प्राप्तिने अर्थे अने पुनरावृत्तिने अर्थे होयछे; तथा स्वाभाविक अशास्त्रीय प्रवृत्तिथी पशुथी आरंभीने स्थावर पर्य्यंत अधोगति होयछे तेमां श्रुतिः—

तथैतयोः पथोर्न कतरे च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानमिति ॥

अर्थः— जे प्राणिओ दक्षिण तथा उत्तर ए बे मार्ग मध्ये एकने विषे पण प्रवृत्त न थाय, ते वारंवार आवृत्ति पामनार अति क्षुद्रभूत होयछे— वारंवार जन्ममरणरूप तृतीय स्थान तेमने प्राप्त थायछे. अन्य श्रुतिः—

"प्रजा ह तिस्रोत्यायमीयुरिति"

अर्थः— अंडज, स्वेदज, उद्भिज्जरूप त्रण प्रकारनो प्रजाओ पितृयाण मार्गने तथा देवयान मार्गने अतिक्रमण करीने कष्टरूप गतिने पामती हवी* तथा बाह्य, अनित्य, अने संस्कारविशेषथी जन्य एवां साध्य फळथी तथा तेनां साधनोथी तथा तेमना संबंधथकी विरक्त एवो शुद्ध सत्ववान् जे निष्काम पुरुष तेनेज प्रत्यगात्मस्वरूपने विषे जिज्ञासा प्रवृत्त थायछे ए विषे काठक श्रुतिनो संवाद. "परांचि खांनि०" मुण्डकश्रुतिः— "परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं" इत्यादि. ए प्रकारे जे

* (आ श्रुतिनो अर्थ बीजी प्रक्रियामां लख्यो छे.)

વિરક્ત હોય તેનેજ પ્રત્યગાત્મવિષયક વિજ્ઞાન તથા શ્રવણ, મનન નિદિધ્યાસનનું સામર્થ્ય પ્રાપ્ત થાય, અન્યથા નહિ. એ વાક્યે કરીને એમ જણાવ્યું કે, બાહ્ય વિષયથી આક્ષિપ્ત છે ચિત્ત જેનું એવા અવિરક્ત પુરુષને આત્મજિજ્ઞાસાજ ન થાય, એમ કરતાં થઇ હોય તો પણ તે સફલ હોય નહિ; જેમ શૂદ્રને યાગને વિષે ઇચ્છાજ ન થાય, કદાપિ થઈ હોય તો તે સફલ નથી તેમ; વળી પ્રત્યક્ અભિન્ન બ્રહ્મનાં વિજ્ઞાનથી સંસારનું બીજભૂત અને કામ કર્મ પ્રવૃત્તિમાં હેતુભૂત અજ્ઞાન નિઃશેષતાથી નિવૃત્ત થાયછે તેમાં શ્રુતિઃ– " तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्त्वमनुपश्यतः " " तरति शोकमात्मवित्." * વળી " भिद्यते त्हृद-यग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चा-स्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ १ ॥ * માટે બાહ્ય સાધનોથી સાધ્ય એવાં ઐહિક, આમુષ્મિક ફલોથી વિરક્ત એવા પુરુષનેજ પ્રત્યક્ અભિન્ન બ્રહ્મવિષયક જિજ્ઞાસા થાય; એ પ્રકારે " केनेषितम् " ઇત્યાદિ શ્રુતિયો પ્રતિપાદન કરેછે. શ્રુતિમાં શિષ્ય આચાર્યના પ્રશ્નોત્તરરૂપે

* (પ્રક્રિયા ૨ માં અર્થ છે.) * (પ્રક્રિયા ૩ માં અર્થ છે.)

करीने जे कथन ते तो सूक्ष्म वस्तु दुर्विज्ञेय छे माटे तेनो सुखे करीने बोध थवाने; अर्थे वळी प्रश्नोत्तररूपताथी ब्रह्मवस्तुने विषे केवळ तर्के करीने अगम्यपणुं पण सूचन कर्युं, अर्थात् गुरु शरण विना शास्त्रथी अथवा केवल तर्कथी सम्यक् बोध न थाय तेमां श्रुतिनुं प्रमाणः– "नैषा तर्केण मतिरापनीया" इति; तथा अन्य श्रुतिः– "आचार्यवान् पुरुषो वेद आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापत्" इति; तथा स्मृतिनुं प्रमाणः– "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" इति; माटे गुरुशिष्यनां प्रश्नोत्तररूपे उपनिषद्नो प्रारंभ. श्रुतिः–

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन
प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां
वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क
उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

अर्थः– कोई एक अधिकारी शिष्य ब्रह्मनिष्ठ गुरुने शास्त्रोक्त विधिथी शरणे थइने प्रत्यगात्माथी अन्यने विषे रक्षितापणुं न जोतो छतो, अने नित्य, शिव, अचल, अभयने इच्छतो

छतो प्रश्न करे छे. हे गुरो! कोण कर्त्ताए स्व इच्छाये प्रेर्यु एवुं मन पोताना विषयो प्रत्ये प्रवृत्त थायछे? (आ श्रुतिना पेहेला पादमां 'ईषितम्' 'प्रेषितम्' ए बे पद जे आप्यां छे ते मन आदिक इंद्रियोनुं प्रेरकपणुं प्रसिद्ध एवा कार्यकारण संघातरूप जीवने छे, किंवा संघातथी अतिरिक्त कोइक स्वतंत्रने स्व इच्छामात्रथी प्रेरकपणुं छे? एवो संदेह जणाववाने माटे छे.) शंकाः— स्वतंत्र एवुं मन पोताना विषयोने विषे पोतेज प्रवृत्त थाय एवुं प्रसिद्ध छे माटे संदेहनाज अभावथी प्रश्न अघटित छे. समाधानः— जो कदा मन प्रवृत्ति निवृत्तिने विषे स्वतंत्र होय तो कोइ पण पुरुषने अनिष्टनुं चिंतन होवुंज न जोइए, परंतु जाणतो छतो पण अनर्थने विषे संकल्प करेछे; वळी अति उग्र दुःखदाइ कार्यने विषे निवारण कर्यु छतुं पण ए मन प्रवृत्त थायछे माटे मनने अस्वतंत्र होवाथी शिष्ये संदेह पामीने जे प्रश्न कर्यो ते युक्तज छे. वळी कोणे प्रेर्यो छतो प्रथम प्राण चलन क्रिया करेछे? (आ ठेकाणे सर्व इंद्रियोना व्यापार प्राण व्यापार पूर्वक छे ते लेइने प्रथम पद आप्युंछे.) वळी कोणे प्रेरी एवी शब्दरूप वाणीने लौकिक जनो बोले-

छे? तथा चक्षु अने श्रोत्र इंद्रियने कह्यो द्योतनात्मक देव प्रेरेछे? १

हे शिष्य! तें जे पुछयुं के, मन आदि इंद्रियोनो स्व स्व विषयो विषे प्रेरक देव कोण छे? अनें शी रीते प्रेरेछे? तेनो उत्तर कहुंछौं. श्रुतिः—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो
ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुष-
श्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लो-
कादमृता भवन्ति ॥ २ ॥

अर्थः— हे शिष्य! तें जे प्रेरक पुछयो ते वस्तुस्वरूप 'श्रोत्रस्य' एटले शब्दना श्रवणनुं करणभूत अने शब्दनुं अभिव्यंजक जे श्रोत्र इंद्रिय तेनुं श्रोत्ररूप छे. शंकाः— आवा व्यापारवाळो आ श्रोत्रादि इंद्रियोनो प्रेरक एवो उत्तर कहेवो जोइए, त्यांहां 'श्रोत्रनुं श्रोत्र' एवो उत्तर अयुक्त छे. समाधानः— हे शिष्य! तें जे दोष कह्यो ते घटे नहि; केमके ए वस्तुने विषे व्यापारादि कोइ पण विशेष छेज नहि; जो कदा श्रोत्रादि इंद्रियोना व्यापारथी अतिरिक्त व्यापारें युक्त एवो श्रोत्रादिनो प्रेरक होय— जेम दात्रना व्यापारथी अतिरिक्त व्यापारवाळो लविता

एटले छेदक होयछे तेम– त्यारे तो 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं' ए उत्तर अघटित कहेवाय, पण तेम नथी; केमके श्रोत्रादियोनो प्रेरक लवितानी पेठे स्व व्यापारे युक्त छे नहि, किंतु संघातरूप श्रोत्रादियोनो जे श्रवण आलोचन, संकल्प, अध्यवसायादि रूप फल पर्यंत व्यापार ते रूप लिंगे करीने केवल गम्यमान थायछे; शी रीते के, श्रोत्रादि संघात जेना प्रयोजनने अर्थे होयछे, ते प्रेरक ते संघातथी अतिरिक्त असंहत छे; जेम जेना प्रयोजनने अर्थे गृहादि संघात होयछे ते देवदत्त ते संघातथी पृथक् होयछे, अने संघात रूप श्रोत्रादि परने अर्थे छे माटे तेनो प्रयोक्ता कोइ पण गम्यमान होयछे, तेथी जे उत्तर कह्यो ते युक्तज छे. त्यारे श्रोत्रस्य श्रोत्रं ए उत्तरनो भावार्थ शो ? श्रोत्रने बीजा श्रोत्रनी जरूर नथी; जेम प्रकाशने प्रकाशांतरनी जरूर नथी तेम. हे शिष्य! 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं' ए उत्तरनो अभिप्राय ए छे के, श्रोत्र इंद्रिय पोताना विषयने प्रकाश करवा विषे समर्थ जोयुंछे, ते विषय प्रकाशनुं सामर्थ्य जड श्रोत्र इंद्रियने विषे स्वप्रकाश, नित्य, असंहत, सर्वान्तर एवुं चैतन्यवस्तु छतेज होयछे, अन्यथा नहि, ए भावार्थ छे. तेमां श्रुति प्रमाणः–

" आत्मनैवायं ज्योतिषास्ते तस्य भासा सर्वमिदं विभाति." " येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः " स्मृतिः– " यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेखिलम् " " क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत " कठश्रुतिः– " नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां "

विद्वाननेज स्वबुद्धिथी गम्य सर्वथकी आंतरतम, कूटस्थ, अजर, अमर, अभय, अज अने श्रोत्रादितुं पण श्रोत्रादिरूप एवुं कोइ एक स्वप्रकाश वस्तु छे के जेनाथी श्रोत्रादिकने स्वविषय प्रकाशनुं सामर्थ्य प्राप्त थायछे ए रीतना उत्तरे करीने सर्व जनने प्रसिद्ध एवी जे श्रोत्रादिनेविषेज आत्मचैतन्यपणानी प्रसिद्धि ते निवर्त्तन करी; तथा जे वस्तुस्वरूप 'मनसो मनः' एटले जे आत्मचैतन्ये प्रकाश कर्युं छतुंज मन संकल्प अध्यवसायादि व्यापारने विषे समर्थ होयछे; तथा 'यद्वाचो ह वाचं' एटले जे आत्मचैतन्ये प्रकाश कर्युं छतुंज वाक् इंद्रिय पोताना विषयने विषे प्रवर्त्तेछे; तथा 'प्राणस्य प्राणः' एटले जे आत्माना अधिष्ठानथीज प्राणमां प्राणन साम-

र्थ्य छे; त्यांहां श्रुतिः– “ को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनंदो न स्यात्.” “ ऊर्द्धं प्राणमुन्नमयत्यपानं प्रत्यगस्यति ” तथा ‘ चक्षुषश्चक्षुः ’ एटले चक्षुरिंद्रियमां जे रूपग्रहणनुं सामर्थ्य ते अधिष्ठानरूप आत्मचैतन्यथकीज छे. उपरनी श्रुतिनुं तात्पर्य ए छे के, सर्व एवा करण वर्गनी जे अधिष्ठाननी सत्तास्फूर्त्तिथी प्रवृत्ति छे, ते प्रत्यक् वस्तु ब्रह्मरूप छे ए रीते प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्मस्वरूपने जाणीने ‘ धीराः ’ एटले धीमान् पुरुषो, श्रोत्रादिकने विषे आविद्यक एवा आत्मभावनो त्याग करीने ‘ प्रेत्यास्माल्लोकात्’ एटले पुत्र, मित्र, कलत्रादिकने विषे अहंममताना त्यागथको सर्व एषणाथी रहित थइने अमृत होयछे एटले अमरणधर्मा होयछे त्यांहां श्रुतिः– “ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ” “ परांचि खानि० आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ” “ यदा सर्वे प्रमुच्यंते० अत्र ब्रह्म समश्नुते ”

‘केनेषितं’ ए प्रथम मंत्रे करीने मनआदिक इंद्रियोनो स्वतंत्र प्रेरक कोण? एवां शिष्यप्रश्ननी

द्वाराए बीजो मंत्रः– " श्रोत्रस्य श्रोत्रं " एणे करीने श्रोत्रादि इंद्रियोनुं पण श्रोत्रादिरूप एटले सन्निधानथीज स्वसत्तास्फूर्त्ति आपीने तेमनुं प्रवर्त्तक सर्वांतर एवुं जे प्रत्यगात्मस्वरूप तेज ब्रह्म ए रीते ब्रह्मात्मैकत्वनो उपक्रम करीने द्वितीय खंडनो मंत्र ५ मो " भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः "

अर्थः– स्थावर जंगम सर्व प्राणियोने विषे आंतर साक्षीस्वरूपे रहेलुं जे प्रत्यक् स्वरूप तेज ब्रह्म ए रीते उपसंहारथी १.

तथा प्रथम खंडनो मंत्र ४ " यद्वाचानभ्युदितम् " मंत्र ५ " यन्मनसा न मनुते " मंत्र ६ " यच्चक्षुषा न पश्यति " मंत्र ७ " यच्छ्रोत्रेण न शृणोति " मंत्र ८ " यत्प्राणेन न प्राणिति "

समुदायनो अर्थः– जे प्रत्यक् वस्तु वागादिक इंद्रियोथी पोतपोताना कथनादिक व्यापारे करीने विषय करी शकातुं नथी; अने जेणे ते इंद्रियोने प्रकाशमान कर्यां ते प्रत्यक् स्वरूपनेज ब्रह्म तुं जाण; लोकमां जे सोपाधिक अनात्मभूत ईश्वरादिकनुं उपासन करेछे ते ब्रह्म नहि ए

रीते वारंवार कथनरूप अभ्यासथी २. तथा प्रथम खंडनो मंत्र ३
" अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि"

अर्थः– जे प्रत्यगभिन्न ब्रह्म व्याकृतथी तथा अव्याकृतथी अन्य छे ए रीते प्रत्यक्षादि प्रमाणे करीने अगम्यत्वरूप अपूर्वताना कथनथी ३. तथा प्रथम खंडनो मंत्र २ " अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति "

अर्थः– श्रोत्रादिक अनात्मवर्गने विषे अविद्याकृत अनर्थदायक आत्मभावनो परित्याग करीने तेमनुं अधिष्ठानभूत एवुं प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्मने जे जाणे ते अमृतभावने पामे ए रीते फलना कथनथी ४. तथा तृतीय खंडमां " ब्रह्म ह देवेभ्यः " इत्यादि बार मंत्र वडे यक्षाख्यायिकाना वर्णने करीने ब्रह्मात्मैकत्वनी स्तुतिरूप अर्थवादना कथनथी ५. तथा द्वितीय खंडनो मंत्र ४ " प्रतिबोधविदितं मतं "

अर्थः– जे प्रत्यक् ब्रह्म बुद्धिना प्रत्ययोने विषेज तेमनुं प्रकाशक अने तेओथी अतिरिक्त परम काष्ठारूप एवुं जाणवामां आवेछे ए रीते उपपत्तिनां कथनथी ६.

ए षड्विध लिंगथी तथा चतुर्थ खंडमां मंदाधिकारीओने अन्तःकरणनी शुद्धिद्वारा सम्यक् बोधने अर्थे तपादिक साधनो तथा तृतीय खंडमां अध्यात्मादि उपासनो विधान कर्यांछे, माटे उपर कह्या प्रमाणे केन उपनिषद्‌ना सर्वे मंत्रोनुं ब्रह्मात्मैकत्वना प्रतिपादनमांज तात्पर्य छे. त्यांहां

श्लोकः—

स्वांतप्राणाक्षिवाणीप्रभृति च विषया-
भासकं यस्य योगाद्यन्न प्राप्नोति चैन-
द्विदितमविदितं यद्भवेन्नात्मरूपम् ।
इंद्राद्या देवमुख्या अपि किल न विदु-
र्यस्य शक्तिं निगूढां तद्बुद्धं येन सोसौ
भवति नरवरोनंतसौख्यप्रतिष्ठः ॥ १ ॥

अर्थः— मन, प्राण, चक्षु, वाक् इत्यादि इंद्रियोनुं कदम्ब जेनी सत्तास्फूर्त्तिना वशथीज विषयोनुं अवभासक छे; तथा जे मन आदि जेने विषय करी शकतुं नथी;तथा जे तत्त्व विदित एटले जाग्रत्, स्वप्न, अने अविदितथी एटले नामरूपात्मक व्याकृतथी तथा अव्याकृतथी अन्य छे एटले कूटस्थ साक्षी छे; वळी इंद्रादि देवताओ

पण जेनी निगूढ चिच्छक्तिने जाणता नथी; ते प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म तत्त्व जेणे साक्षात्कार कर्युं होय, ते पुरुष ब्रह्मरूप छतो अपरिच्छिन्न सुखने विषे प्रतिष्ठा पामे. १

(३) कठोपनिषद्ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

ॐ धर्माधर्माद्यसंसृष्टं कार्य्यकारणवर्जितम् । कालादिभिरविच्छिन्नं ब्रह्म यत्तन्नमाम्यहम् ॥ १ ॥

अर्थः— जे ब्रह्म पुण्यपापादिकना संबंधे रहित छे; तथा कार्यकारणथी एटले अविद्या अने तेनुं कार्य प्रपंचथी रहित छे; तथा काल, देश अने वस्तु ए त्रण्ये करेला परिच्छेदथी रहित छे तेने हुं नमुंछों एटले अभेदरूपे अनुसंधान करुंछों. १

कठोपनिषद्नुं व्याख्यान करवाने इच्छता श्री भाष्यकार प्रथम "उपनिषद्" ए शब्दनी व्याख्या करेछे.

सद् धातुना शैथिल्य, गति, अवसादन एटले नाश ए त्रण अर्थ छे; ते धातुने 'उप+नि' ए बे

उपसर्ग जोडवाथी अने क्विप् प्रत्यय लगाडेथी 'उपनिषद्' ए शब्द ब्रह्मविद्यानो वाचक सिद्ध थायछे; शी रीते के "उपनिषीदतीति उपनिषद्" एटले दृष्ट श्रुत विषयोथी विरक्त थईने पोतानुं आश्रयण करीने परिशीलन करनारा मुमुक्षुओना संसारनुं बीजभूत अविद्या कामादिक अनर्थने जे नाश करे ते ब्रह्मविद्या 'उपनिषद्' ए शब्दे करीने वाच्य होयछे; त्यांहां श्रुतिः– "निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते" इति; अथवा वैराग्यादि साधनसंपन्न एवा मुमुक्षुओने ब्रह्मैक्यताने जे पमाडे ते ब्रह्मविद्या 'उपनिषद्' ए शब्दे करीने वाच्य होयछे; त्यांहां श्रुतिः– "ब्रह्म प्राप्तो विरजोभूद्विमृत्युरिति" अथवा भूरादि लोकोनो आदि एटले प्रथम जन्य एवो जे ब्रह्मा, तेथी जन्य जे अग्नि, तद्विषयक एवी जे विद्या स्वर्गादि फलनी प्राप्तिमां हेतु होवाथी द्वितीय वरे करीने प्रार्थना करी, ते पण लोकांतरने विषे प्रवृत्त थनार पुरुषना गर्भवास, जन्म, जरा इत्यादि उपद्रवोने शिथिल करवाथी 'उपनिषद्' कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः– "स्वर्गलोका अमृतत्त्वं भजंते" इति. उपर कह्या प्रमाणे

'उपनिषद्' ए शब्दे करीने वाच्य ब्रह्मविद्या अने अग्निविद्या छे ए वात सिद्ध थई.

ग्रंथने विषे जे उपनिषद् शब्दनी प्रवृत्ति ते तो "आयुर्घृतम्" एनी पेठे औपचारिक जाणवी; ए रीते उपनिषद्नां निर्वचनेज ब्रह्मविद्यानो वैराग्यादिक साधन संपन्न अधिकारी; तथा प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मरूप विषय; तथा संसाररूप अनर्थनी आत्यंतिक निवृत्ति अने निरतिशय सुखप्राप्तिरूप प्रयोजन; तथा साध्यसाधनभाव संबंध ए अनुबंध चतुष्टय सूचन कर्यां ए रीते अनुबंध चतुष्टय विशिष्ट ब्रह्मविद्यानी करतलामलकनी पेठे साक्षात्कार करावनार आ कठोपनिषद्नुं यथामति व्याख्यान करीशुं.

त्यांहां प्रथम ब्रह्मविद्यानी स्तुतिने अर्थे आख्यायिकाने कहेछे के, वाजश्रवसे एटले उद्दालक ऋषिये विश्वजित् यज्ञने विषे ब्राह्मणोने दक्षिणामां जीर्ण, पय रहित, तृण पण खाइ न शके एवी गायो आपी त्यारे वाजश्रवसनो पुत्र नचिकेताये स्वपितानी अधोगति थशे एम जाणीने तेने यज्ञनां संपूर्ण फळनी प्राप्तिने अर्थे कह्युं के, "हे पिता! तमे मने कोने आपशो?" त्यारे पिताये अनादर कर्यो; तो पण एज रीते

वारंवार पुत्रे कह्युं त्यारे पिताये कोप करीने कह्युं के "हे पुत्र! तने में यमने आप्यो." त्यार पछी नचिकेता स्वपितानुं वचन सत्य करवा माटे यम राजाने त्यां गयो अने ते यम अन्यत्र (बीजे ठेकाणे) गया हता तेथी त्यांहां त्रण दिवस रह्यो; पछी यमे आवीने तेनुं विधि पूर्वक आतिथ्य कर्युं अने कह्युं के "हे नचिकेता ! तुं त्रण दिवस रह्यो माटे त्रण वर माग." त्यारे नचिकेताये पितानो पोता संबंधि क्लेश मटया पूर्वक मने पाछो जवाथी "एज माहारो पुत्र छे." एवी प्रतीति रहे ए रीते प्रथम एक वर माग्यो; ते आपीने फरीथी यमे कह्युं के "द्वितीय वर माग." त्यारें तेणे अग्निविद्या मागी; तेथी प्रसन्न थइने ते पण आपी; त्यार पछी अग्निविद्या एटले विराट्नी उपासना जाण्या नंतर पुत्रराज्यादि सर्व विषयोथी वैराग्य देखाडीने नचिकेताये यम राजा प्रत्ये प्रत्यक् ब्रह्मविषयक त्रीजो प्रश्न कर्यो त्यांहां श्रुतिः—

येयम्प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्ती-
त्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्या-
मनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वर-
स्तृतीयः ॥ १ ॥

अर्थः—आ देह मरण पामे छते शरीरेंद्रिया-दिकथी अतिरिक्त अने बीजा देहनो संबंध पामनार कोई आत्मा छे एम केटलाएक कहेछे; तथा नथी एटले देह मरणानंतर कोई छेज नहि एम पण कहेछे; माटे तेनो निर्णय यथार्थ रीते कहो? केमके परम पुरुषार्थ तो आत्मज्ञानने आधीन छे. (एटली वात प्रथम वल्लीमां छे.)

द्वितीय वल्लीमां यम राजाये विद्या अविद्यारूप श्रेय प्रेयनुं कथन कर्युं त्यांहां श्रुतिः—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे
नानार्थे पुरुषꣳसिनीतः। तयोः श्रेय
आददानस्य साधु भवति हीयते
ऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

अर्थः— श्रेय पृथक् छे अने प्रेय पण पृथक् छे ते बेउ पोताना कर्त्तव्यपणाथी पुरुषने बांधे छे एटले ज्यां सुधी पोतामां अकर्त्ता अभोक्ता-पणानो दृढ निश्चय थयो नथी त्यां सुधी; ए बेउ मध्ये केवळ श्रेयने ग्रहण करनार पुरुषनुं शुभ एटले निश्रेयस थाय, अने केवळ प्रेयने ग्रहण करनार पुरुष परम पुरुषार्थथी भ्रष्ट थायछे. १

ए रीते प्रेयथी विरक्त होवाथी शिष्यनी प्रशंसा

करीने यमे आत्मस्वरूपना उपदेशनो उपक्रम कर्यो त्यांहां श्रुतिः–

तन्दुर्द्दर्शङ्गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितङ्ग-
ह्वरेष्टम्पुराणम् । अध्यात्मयोगाधि-
गमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥

अर्थः– हे शिष्य! तें पुछ्यो जे आत्मा ते 'दुर्द्दर्श' छे एटले अति सूक्ष्मताथी महान् प्रयत्ने करीने जाणवाने शक्य छे; तथा 'गूढ' छे; केमके 'अनुप्रविष्ट' छे एटले मायिक एवां विषय विकारनां विज्ञाने करीने आच्छादित छे; वळी 'गुहाहित' छे एटले बुद्धिमां रह्यो छे त्यांहांज तेनी उपलब्धि थायछे; वळी 'गह्वरेष्ट' एटले महा विषम एवां अनर्थरूप संकटने विषे रहेनार; तथा 'पुराण' एटले पूर्वेथीज नवो ने नवो छे ते आत्माने कोइक धीर पुरुष 'अध्यात्मयोगाधिगमेन' एटले चित्तने विषयोथी उपसंहार करीने आत्माने विषेज जे समाधानरूप योग तेणे करीने 'मत्वा' एटले निश्चय करीने हर्ष, शोकने त्याग करेछे; केमके आत्माने विषे उत्कर्ष अपकर्षनो अभाव छे.

तृतीय वल्लीमां पूर्वे फल सहित विद्या अवि-

द्यानुं कथन मात्र कर्युं तेनाज निर्णयने अर्थे रथ-रूपकनी कल्पनाये करीने स्वरूपज्ञाननुं सुकरपणुं वर्णन कर्युंछे त्यांहां श्रुतिः—

आत्मान॰ रथिनं विद्धि शरीर॰ रथमेव तु। बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ इत्यादि.

अर्थः— कर्मफळनो भोक्ता जीवने तुं रथी एटले रथस्वामी जाण, अने शरीरने रथरूप जाण, तथा निश्चयात्मक बुद्धिने सारथीरूप जाण, अने मनने प्रग्रह एटले राशरूप जाण, तथा इंद्रियोने अश्वरूप जाण, तथा शब्दादि विषयोने मार्गरूप जाण. तात्पर्य ए के, विवेक विशिष्ट बुद्धि छे सारथी जेने, अने निग्रहित मन छे राश जेने एवो जे पुरुष ते आ संसार मार्गनो पाररूप अने गंतव्य एवां विष्णुनां (व्यापक ब्रह्मनां) पदने एटले स्वरूपने पामे.

चतुर्थ वल्लीमां आत्मज्ञाननां प्रतिबंधकनुं वर्णन कर्युंछे; केमके प्रतिबंध जाण्ये छतेज तेनी निवृत्तिने अर्थे प्रयत्न करी शकाय त्यांहां श्रुतिः— “ परांचि खानि॰१” (आ श्रुतिनो अर्थ प्रक्रिया २ बीजीमां कर्योछे.)

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् । अथ धीराऽअमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥

अर्थः– पेहेली " परांचि खानि०" श्रुतिमां कह्या प्रमाणे जे पराक्रूप बाह्य देहादिकनुं दर्शनरूप अविद्या ते आत्मदर्शनना प्रतिबंधमां कारणभूत छे; ए अविद्या तथा तेणे दर्शावेला दृष्ट अदृष्ट भोगने विषे जे तृष्णा ए बेउथी प्रतिबद्ध थयुंछे आत्मदर्शन जेमने एवा पराक् दर्शि अल्प बुद्धि पुरुषो बाह्य एवा विषयो प्रत्ये दोडेछे, तेथी ते सर्वत्र व्याप्त एवा अविद्या काम कर्मनो समुदायरूप मृत्युना पाशमां बंधायेला रहेछे एटले देहेंद्रियादिकना संयोग वियोगरूप जन्म, मरण, जरा, रोगादि अनर्थ समूहने पामेछे; माटे जे विवेकी पुरुषो ते नित्य एवां प्रत्यक् ब्रह्मस्वरूपे अवस्थानरूप अमृतत्त्वने जाणीने अनित्य एवा सांसारिक पदार्थोनी प्रार्थना करता नथी; केमके ते प्रत्यगात्म दर्शनमां प्रतिकूल छे अर्थात् पुत्रादि त्रण एषणाओथी रहित छता प्रत्यक् प्रवणनिष्ठ होयछे.

पांचमी वल्लीमां आत्मतत्त्व अति दुर्विज्ञेय होवाथी शरीरने विषे पुरना रूपकथी तथा आत्माने विषे पुरस्वामीना रूपकथी स्वरूपनिर्धार कराव्योछे त्यांहां श्रुतिः—

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च वि-
मुच्यते । एतद्वैतत् ॥

अर्थः— जेम अनेक द्वार युक्त अने सर्व उपकरण सहित संघातरूप नगर कोइ स्वतंत्र स्वामीने अर्थे होयछे एम जोवामां आवेछे; तेमज इंद्रियोरूपी एकादश द्वारवालुं संघातरूप शरीर असंहत राजस्थानी आत्माने अर्थे होवाने योग्य छे ते नगरनो स्वामी जन्मादि विक्रियाये रहित अने नित्य प्रकाशस्वरूप जे प्रत्यक्‌थी अभिन्न ब्रह्म तेनुं सम्यक् प्रकारे ध्यान करीने एटले " सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि० ॥" ए रीते जाणीने शोक करे नहि; केमके प्रत्यक् ब्रह्मनां विज्ञानथी अभय प्राप्त थये छते शोकनो अवसरज नथी एटले आज देहने विषे अविद्याकृत काम कर्म बंधनथी विमुक्त होयछे, अने विमुक्त एवो छतो मुक्त थायछे अर्थात् पुनः शरीर ग्रहण न करे.

छठी वल्लीमां जेम लोकमां शाल्मल्यादि वृक्ष नां तूलनां अवधारणथी मूळनुं अवधारण थायछे- तेम संसाररूप कार्य वृक्षनां अवधारणे करीने मूळभूत ब्रह्मनुं अवधारण कराव्युंछे त्यांहां श्रुतिः—

ऊर्द्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वैतत् ॥

अर्थः—'ऊर्द्ध्वमूलः' एटले ऊर्द्ध्व छे विष्णुनुं परम पदरूप मूळ जेनुं एवो, अने 'अवाक्शाखः' एटले स्वर्ग, नरक, तिर्यक्, प्रेत इत्यादिरूप नीची छे शाखाओ जेनी एवो, तथा 'सनातनः' एटले अनादि चिर काळथी प्रवृत्त थयेलो एवो आ संसाररूप अश्वत्थ वृक्षनु जे मूळ तेज शुद्ध अने तेज ब्रह्म छे अने तेज अमृत छे; केमके वाचारंभण श्रुतिए ब्रह्मथी अतिरिक्त सर्वने मिथ्या कह्युंछे; ते परमार्थ सत्य ब्रह्मस्वरूपनेज गंधर्व नगर मरीची जळने तुल्य अने परमार्थ दर्शनना अभावथी गम्यमान सर्वे लोको उत्पत्ति, स्थिति, लयने विषे आश्रय करीने रह्याछे; ते ब्रह्मने

कोइ पण विकार अतिक्रमण करी शकतो नथी ते ए एटले जे ब्रह्मरूप मूळथी जगत्रूप वृक्ष निकळ्यो ते ब्रह्म. श्रुतिः– यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येस्य ह्रदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

अर्थः– जे परमार्थदर्शी पुरुषने जे काळने विषे बुद्धिमां रहेला सर्वे कामो कामयितव्यना एटले इच्छाना विषयोना अभावथी विशीर्ण थाय त्यारे प्रबोधथी पूर्वे मरणधर्मी हतो एवो ते पुरुष प्रबोधथी उत्तर काळने विषे अविद्या, काम, कर्मरूप मृत्युना अभावथी अमृत एटले अमरणधर्मी होयछे; अने आज जन्मने विषे सर्वे बंधनोना उपशमथी ब्रह्मने पामेछे अर्थात् ब्रह्मीभूत होयछे.

उपर कह्या प्रमाणे कठवल्लीना सर्वे मंत्रोनुं ब्रह्मात्मैक्य प्रतिपादनने विषे तात्पर्य छे. त्यांहां श्लोकः–

सूक्ष्मात्सूक्ष्मो महीयान्महत उत
धिया साधनैर्यो न लभ्यो बुद्धिस्थो यो
शरीरो रविविधुदहना यस्य भासा
विभांति। षड्भिर्भावैः स्वभावे रहित

उपसदास्तीति रूपेण वेद्यस्तं सा-
क्षात्कृत्य धीरो गुरुवचनबलाज्जा-
यते नित्यशांतः॥ १ ॥

अर्थः— जे प्रत्यगात्मा सूक्ष्मथकी सूक्ष्मतर छे; तथा महान्थी महत्तर छे; तथा जे बुद्धिमां अंतर्यामिरूपे रह्यो छतो पण बुद्धिये ग्रहण करी शकातो नथी; तथा विवेकादि साधनचतुष्टय तथा श्रवणादिनां राहित्यथी अलभ्य छे; तथा जे त्रिविध शरीरथी रहित छे; तथा सूर्य, चंद्र, अग्नि आदि तेजो जेनी प्रभाये करीनेज भासमान थायछे; तथा जे जन्मादि षड्भाव विकारे रहित छे; तथा जे उपनिषद् वाक्योथी अस्ति एटले सन्मात्ररूपे करीनेज वेद्य छे ते प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मनो गुरुना वचनोना बळथी साक्षात्कार करीने धीर पुरुष नित्य शान्त ब्रह्मस्वरूप होयछे. १

(४) मुण्डकोपनिषद्ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

ॐयदक्षरम्परं ब्रह्म विद्यागम्यमि-

तीरितम् । यस्मिन् ज्ञाते भवेज्ज्ञातं सर्वं तत्स्यामसंशयम् ॥ १ ॥

अर्थः— जे अक्षररूप परब्रह्म विद्याये करीने गम्यमान थाय एम म्होटा पुरुषोये कह्युंछे; वळी जे ब्रह्मस्वरूप जाण्ये छते सर्व पण विज्ञात होय ते ब्रह्म हुं छौं एमां संशय नहि. १

आ मुण्डकोपनिषद्मां विद्यासंप्रदायना प्रवर्त्तकोनी परंपरानुं जे कथन कर्युं ते ब्रह्मविद्यानी स्तुतिथी अधिकारीओना प्ररोचनने अर्थे छे के, जेथी ते विषे अधिकारीओ प्रवृत्त थाय; ए ब्रह्मविद्यानो प्रयोजननी साथे साध्यसाधनभाव संबंध "भिद्यते हृदयग्रंथिः" ए ठेकाणे कहेवाशे; वळी ऋग्वेदादिरूप अपर विद्यानुं जे कथन कर्युं ते विधिनिषेधात्मक अपर विद्या संसारना कारणभूत अविद्यादि दोषनी निवृत्ति करी शकेज नहि एवुं जणाववाने अर्थे छे; तथा परम पदनी प्राप्तिमां साधनभूत एवी ब्रह्मविद्या इतर सर्व साधने साध्य एवा विषयना वैराग्य पूर्वक गुरु प्रसादथी प्राप्त थाय, ए रीते "परीक्ष्य लोकान्" इत्यादि मंत्रोये करीने कथन कर्युंछे; तथा "ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति" "परामृतात्

परिमुच्यन्ति सर्वे" इत्यादि वाक्ये करीने प्रयोजन पण वारंवार कथन कर्युंछे; यद्यपि सर्व आश्रमीओने ज्ञानने विषे अधिकार छे तथापि जे सन्न्यासनिष्ठ ब्रह्मविद्या तेज मोक्षनुं साधन छे कर्मसहित नहि ए रीते "भैक्षचर्याञ्चरन्तः" "सन्न्यासयोगात्" इत्यादि वाक्योये सूचन कर्युंछे; ए प्रकारे अनुबंधचतुष्टय विशिष्ट एवी आ उपनिषद् व्याख्यान करवा योग्य छे.

शौनक ऋषि शास्त्रविधि पूर्वक अंगिरा मुनिने शरणे थइने प्रश्न करतो हवो के "हे भगवन्! कोण एक स्वरूप जाण्ये छते सर्व वस्तु विज्ञात होय?" तेना उत्तरमां अंगिराए प्रथम तो "द्वे विद्ये वेदितव्ये" "परा चापरा च इति" एटले हे शौनक! पर विद्या अने अपर विद्या ए बेउ जाणवा योग्य छे एवुं कहीने प्रथम ऋग्वेदादिरूप एटले कर्म उपासनारूप अपर विद्या चित्तशुद्धिने अर्थे कथन करी; अनंतर—

"अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते"।

अर्थः— जेणे करीने ते अक्षर स्वरूपनो साक्षात्कार थाय ते पर विद्या एटले वेद्य विषयक विज्ञान कहुंछौं एवी प्रतिज्ञा करीने—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

अर्थः— जे अक्षर ब्रह्मस्वरूप 'अद्रेश्यम्' एटले सर्व एवां ज्ञानेंद्रियोथी अगम्य छे; तथा 'अग्राह्यं' एटले कर्मेंद्रियोनुं अविषय छे; तथा 'अगोत्रम्' एटले वंशरहित छे अर्थात् एनुं कोइ मूळ नथी के जेथी वंशवाळुं कहेवाय; तथा 'अवर्णं' एटले स्थूलत्वादि अने शुक्लत्वादि द्रव्य धर्मोथी रहित छे; तथा 'अचक्षुःश्रोत्रं' एटले नाम रूप छे विषय जेमनो एवां श्रोत्र अने चक्षु इंद्रियथी रहित छे; तथा 'अपाणिपादं' एटले हस्तपादादि कर्मेंद्रियोथी रहित छे; वळी 'नित्यं' एटले अविनाशी छे; तथा 'विभुं' एटले ब्रह्माथी आरंभीने स्तंब पर्यंत प्राणि भेदे करीने विविध प्रकारे होनार; तथा 'सर्वगतं' एटले सर्वत्र व्यापक; तथा 'सुसूक्ष्मं' एटले अत्यंत सूक्ष्म छे; वळी 'अव्ययं' एटले अवयवोना अपचयरूप अपक्षये रहित छे अर्थात् अवयवना राहित्यथी शरीरनी पेठे अपक्षयवाळुं नथी तथा

गुण द्वाराये पण अपक्षयवाळुं नथी निर्गुण छे माटे; तथा 'भूतयोनिं' एटले सर्व भूतोनुं कारणभूत; तथा सर्वनुं आत्मारूप एवां अक्षर स्वरूपने 'धीराः' एटले जे विवेक बुद्धिवाळा पुरुषो तेज 'परिपश्यन्ति' एटले अपरोक्ष करेछे ए रीते उपक्रम करीने मुण्डक ३, खंड १, मंत्र ७-

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च
तत्सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सुदूरे त-
दिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहित-
ङ्गुहायाम् ॥ १ ॥

अर्थः— ते ब्रह्मस्वरूप 'बृहत्' एटले अति म्होटुं छे; तथा 'दिव्यं' एटले स्वयंप्रकाश अर्थात् इंद्रियोनुं अगोचर अने एज हेतुथी 'अचिन्त्यं' एटले जेनुं स्वरूप चिन्तवनमां महान् प्रयत्ने आवे; तथा 'सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं' एटले सूक्ष्म एवां आकाशादिकथकी पण अति सूक्ष्म छे; तथा 'विभाति' एटले आदित्य चंद्रादि विविधरूपे करीने देदीप्यमान छे; वळी 'दूरात्सुदूरे' एटले दूर देशथकी पण अत्यंत दूर छे; केमके अविद्वानोने अत्यंत अगम्य छे; वळी 'इहान्तिके च' एटले आ देहने विषे तथा समीपने विषे पण छे;

केमके विद्वानोनें आत्मारूप छे, अने सर्वथकी आन्तर छे; तथा 'पश्यत्सु इहैव निहितङ्गुहायाम्' एटले साक्षात्कार करनार योगी पुरुषोने तो आज शरीरमां बुद्धिरूप गुहामां निगूढ रहेलुं अनुभव करवामां आवेछे१. आ प्रकारे उपसंहार कर्यो छे १. तथा मुण्डक २, खंड १, मंत्र २,

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यंत-
रो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो
ह्यक्षरात् परतः परः ॥

अर्थः— जे प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म 'दिव्यः' एटले स्वप्रकाशरूप छे; तथा 'अमूर्त्तः' एटले सर्व मूर्त्तिये रहित छे अर्थात् निराकार छे; तथा 'पुरुषः' एटले पूर्णस्वरूप अथवा शरीररूपी पुरने विषे रहेनार छे; तथा 'सबाह्याभ्यन्तरः' एटले बाह्य अभ्यन्तर सर्व दृश्य सहित छे अर्थात् अध्यस्त एवां सर्व दृश्यनो अधिष्ठानरूप छे; तथा 'अजः' एटले जन्मरहित छे; केमके जेम जलबुद्बुदादिकनी उत्पत्तिमां वायु आदि निमित्त छे; वळी जेम आकाशनां छिद्रभेदोमां घटादि निमित्तभूत छे तेम आत्माने विषे कोई पण जन्मनुं निमित्त नथी; कारण के सर्वथी आद्य छे. (जन्मरूप विका

रना निषेधे करीने षड्भाव विकारोनो निषेध जाणी लेवो.) तथा 'अप्राणः' एटले यद्यपि मूढ जनोने अविद्याना वशथी देहना तादात्म्ये करीने सप्राण जेवो आत्मा भासेछे; जेम आकाशने विषे मालिन्यादि नथी, तो पण भासेछे तेम; तथापि परमार्थ दृष्टिये क्रिया शक्तिमान् चलनात्मक प्राणथी रहित छे; तथा 'अमनाः' एटले मनथी रहित छे; (प्राण अने मनना निषेधे करीने अपानादि सर्व वायुभेदो तथा कर्मेंद्रियो तथा तेमना गमनादिक विषयो तथा ज्ञानेंद्रियो अने तेमना विषय शब्दादिओथी पण रहित छे एम जाणवुं.) ए रीते उपाधिना राहित्यथकी अद्वयरूप छे माटे 'शुभ्रः' एटले शुद्ध छे; तथा 'परतः अक्षरात्परः' एटले पोताना कार्यरूप विकारनी अपेक्षाये पर एवुं जे नामरूपनुं बीजभूत अव्याकृत तेथकी पण पर छे एटले निरुपाधिक छे इत्यादि मंत्रोये करीने वारंवार स्वरूपकथनरूप अभ्यास देखाडयोछे २. मुण्डक ३, खंड १ मंत्र ८

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ॥

अर्थः— जे प्रत्यक् ब्रह्म अरूप छे माटे चक्षु-

रिंद्रियथी ग्रहण करी शकातुं नथी; तथा अवाच्य छे माटे वाक् इंद्रिये करीने पण कथन करी शकातुं नथी; तथा श्रोत्रादि इतर इंद्रियोये करीने पण विषय करी शकातुं नथी; तथा सर्वनी प्राप्तिमां साधनभूत एवां तपे करीने पण ग्रहण करी शकातुं नथी; तथा वेदोक्त एवां अग्निहोत्रादि कर्मे करीने पण ग्रहण करी शकातुं नथी ए रीते प्रत्यक्षादि इतर प्रमाणे करीने अगम्यतारूप अपूर्वता कथन करी छे. ३. तथा मुण्डक २, खंड २, मंत्र ८ " भिद्यते हृदयग्रंथि०" (आ श्रुतिनो अर्थ त्रीजी प्रक्रियामां लख्योछे.) ए रीते निःशेष अनर्थनी निवृत्ति अने परमानन्दनी प्राप्तिरूप फल कथन कर्युंछे ४. तथा मुण्डक १, खण्ड ५, मंत्र ७

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥

अर्थः— अग्निष्टोमादि यज्ञो 'अदृढाः' एटले शिथिल एवां वाहाणरूप छे; तेमने चलावना-

१६ (शोळ) ऋत्विज, पत्नी अने यजमान अढार नाविक छे; तेमां यज्ञरूप वाहाणने विनाशी होवाथी तेमां रहेला नाविको पण स्वर्गादि फळनी संघाते विनाश पामेछे; जेम कुंडना विनाशथी क्षीरदध्यादिकनो नाश थायछे तेम; एम छतां जे अविवेकी मूढ पुरुषो केवल कर्मनेज श्रेयरूप मानीने आनंद पामेछे ते पुरुषो किंचित्काल पर्य्यंत स्वर्गमां रहिने पछी वारंवार जन्म, मरण, जरादिकनेज पाम्या करेछे. इत्यादिक मंत्रे करीने अज्ञानीओनी निंदा द्वाराये ब्रह्मात्मैक्यनी स्तुतिरूप अर्थवाद कथन कर्योछे ५. तथा मुण्डक २, खण्ड २, मंत्र १

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्च ॥

अर्थः— जे प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म 'आविः' एटले श्रवण, मनन, विज्ञान इत्यादि उपाधिरूप इंद्रियोना धर्मे करीने सर्व प्राणीओना हृदयमां आविर्भूत एवुं छतुं जणायछे; ते आविर्भूत ब्रह्म 'सन्निहितं' एटले हृदयमां सम्यक् स्थित छे; वळी 'गुहाचरं' एटले दर्शन श्रवणादिरूप प्र-

कारे करीने हृदयगुहामां गमन करनार ए रीते प्रसिद्ध छे; वळी सौथी पण म्होटुं छे माटे महत् कहेवायछे; तथा बुद्ध्यादि सर्व पदार्थोनुं अधिष्ठान होवाथी पद कहेवायछे. जे ब्रह्मने विषे ' एजत्' एटले चंचल पक्षी आदि; तथा ' प्राणत्' एटले प्राणापानादिमान् मनुष्य पशु आदि; तथा ' निमिषत्' एटले उन्मेष निमेषादि क्रियावाळुं; तथा ' अनिमिषत्' एटले स्थिर एवुं सर्व द्रव्य, ते ' समर्पितम्' एटले अधिष्ठानने विषे अध्यस्तरूपे रह्युंछे ए रीते उपपत्ति कथन करीछे. ६

उपर जणावेलां षड्विध लिंगोथी आ मुण्डकोपनिषद्ना सर्वे मंत्रोनुं ब्रह्मात्मैक्यना प्रतिपादनमांज तात्पर्य छे. त्यांहां श्लोकः—

जायन्ते विस्फुलिंगा अनलत इह
यद्वत्प्रदीप्तात्सरूपास्तद्वत्सर्वेपि भा-
वा खलु यत उदिता यांति यस्मिँ-
ल्लयं ते । अप्राणः सर्वविद्यः प्रणव-
वरधनुः स्वात्मबाणैकलक्ष्यस्तं
जानन्नामरूपे त्यजति स भवति ब्र-
ह्मरूपो विशोकः ॥ १ ॥

अर्थः— जेम देदीप्यमान अग्निथी विस्फुलिंगो उत्पन्न थायछे अने अग्निमांज लय थायछे तेमज आकाशादि सर्व पदार्थो जेनाथी उत्पन्न थायछे अने जेने विषेज पाछा लय पामेछे; तथा जे प्राण रहित अने सर्व वेत्ता छे; तथा जे ॐकाररूप धनुष्‌ने विषे संधान करेला स्वस्वरूपभूत आत्मारूप बाणनो एकलक्ष्यरूप छे ते प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मने साक्षात्कार करनार पुरुष नाम रूपनो त्याग करीने ब्रह्मरूप थयो छतो शोक रहित होयछे. १

---

(५) प्रश्नोपनिषद्‌ना अनुसारे विचार.

मुण्डकोपनिषद्‌मां प्रतिपादन करेला अर्थनोज विस्तारने अर्थे आ प्रश्नोपनिषद्‌रूप ब्राह्मण छे. ऋषियोना प्रश्न उत्तररूपे जे आख्यायिका ते तो संवत्सर पर्यंत ब्रह्मचर्य पालन इत्यादि नियमे युक्त एवा जे शिष्य तेनेज ब्रह्मविद्या ग्रहण करवा योग्य छे; अने पिप्पलाद मुनिना जेवा सर्वज्ञ आचार्यनेज उपदेश करवा योग्य छे; अन्यने नहि ए रीते ब्रह्मविद्यानी स्तुतिने अर्थे छे. आ उपनिषद्‌मां पेहेला त्रण ऋषियोना त्रण

प्रश्नोमां जे अपरविद्यानो विषय देखाड्योछे, ते तो वैराग्य द्वाराये परविद्याने विषे अधिकार प्राप्तिने अर्थे छे.

(१) भारद्वाज सुकेशा; (२) शैब्य सत्यकाम; (३) सौर्यायणि गार्ग्य; (४) आश्वलायन कौशल्य; (५) भार्गव वैदर्भि; (६) कात्यायन कबंधि ए छ ऋषियो ब्रह्मने विषे निष्ठावाळा छता पण अपरब्रह्मने विषेज परब्रह्मपणुं जाण्याथी अपरविद्यानुंज अनुष्ठान करता छता अने परमार्थ सत्यब्रह्मने अन्वेषण एटले खोळता छता विधि पूर्वक पिप्पलाद मुनिने शरणे गया; त्यारे पिप्पलादे कह्युं के, श्रद्धा, तप, ब्रह्मचर्य इत्यादि नियमे युक्त एक संवत्सर पर्यंत आंहि रह्यो, त्यार पछी अमो जे जाणता हइशुं ते कहिशुं; ते प्रकारे कर्या नंतर प्रथम कात्यायन कबंधिये प्रश्न कर्यो के, हे भगवन्! आ सर्व प्रजाओ कोनाथी उत्पन्न थायछे? उत्तरः—हे कबंधि! पूर्व कल्पमां कर्म उपासनानो अनुष्ठान करनार कोइ एक जीवे आ कल्पमां हिरण्यगर्भ थईने सृष्टि करवानी इच्छाथी "हुं प्रथम आदित्य अने चंद्रने उत्पादन करी तद्भाव पामीने, पछी चंद्रादित्यसाध्य संवत्सरभाव पामीने, पछी

तेना अवयवरूप उत्तर दक्षिण बे अयन, मास, पक्ष, दिन, रात्री ए भाव पामीने, पछी तेथी साध्य व्रीहि आदि अन्नभाव द्वारा रेतसभाव पामीने ते द्वारा सर्व प्रजाओने सृजुं." ए रीते चिंतवन करीने प्रथम अत्ता प्राणरूप आदित्य तथा अद्य एटले अन्नरूप चंद्र ए बेउनुं रयिरूप युगल सृज्युं; अने तद्वारा सूक्ष्म, स्थूल सर्व प्रजाओ सृजी; तेमां जे पुरुष इष्टापूर्त्तादि केवळ कर्मनुं अनुष्ठान करे ते दक्षिण मार्ग द्वारा चंद्र लोकमां जइने पुण्यना क्षयथी अनन्तर पुनरावृत्ति पामे, ते मार्ग पितृयाण कहेवायछे; तथा जे पुरुष श्रद्धा, तप, ब्रह्मचर्य युक्त थइने उपासनानुं अनुष्ठान करे ते आदित्य लोकनो जय करेछे अने पुनरावृत्ति पामतो नथी इत्यादि वात प्रथम प्रश्नना उत्तरमां निरूपण करीछे. १

भार्गव वैदर्भिये द्वितीय प्रश्न कर्यो के, हे भगवन्! ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय, प्राण, मन तथा पंचभूत ए मध्ये केटला देव आ शरीरनुं विधारण करेछे अने प्रकाश करेछे? तथा ए सर्व मध्ये वरिष्ठ (श्रेष्ठ) देव कोण छे? उत्तरः— हे शिष्य! आकाश, वायु, अग्नि, जळ, पृथ्वी, वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र इत्यादि सर्वे शरीरने प्रका-

शमान करीने प्रत्येक प्रत्येक विवाद करवा लाग्या के "हुं शरीरनुं धारण करुंछौं." त्यारे श्रेष्ठ प्राणे कह्युं के "तमे शरीरनां धारणनो अभिमान करो मां; हुंज पांच प्रकारे विभक्त थईने शरीरनुं विधारण करुंछौं." ए रीते प्राणना बोलवा उपर इतर देवोने विश्वास न आवतां प्राणे अभिमानथी उत्क्रमण थवा जेवुं कर्युं, के तुरतज इतर देवो व्याकुळ थई गया, अने प्राण पाछो प्रतिष्ठित थयो, के तुरतज बीजा देवो प्रतिष्ठित थया, अने प्राणनी स्तुति करवा लाग्या के "हे प्राण! तुंज श्रेष्ठ छो; त्हारे आधारेज सूर्य, चंद्र, पर्जन्यादि सर्व जगत् रह्युंछे; अने सूर्य, चंद्र, इंद्रादिरूप पण तुंज छो; माटे अमारी रक्षा कर" इत्यादि वात बीजा प्रश्नना उत्तरमां निरूपणकरीछे. २

कौशल्य आश्वलायने त्रीजो प्रश्न कर्यो के "हे भगवन्! ए प्राण कोनाथी उत्पन्न थायछे? अने आ शरीरमां शी रीते आवे? तथा पांच प्रकारे विभक्त थइने शी रीते रहेछे? अने शी रीते उत्क्रमण करेछे? अने अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतने शी रीते धारण करेछे? उत्तरः— जेम शरीरथी असत् छाया एटले पडछांयो उत्पन्न थांयछे तेमज आत्मारूप अक्षर पुरुषथी अनृतरूप प्राण उत्प-

ब थायछे, अने कर्मरूप निमित्ते करीने शरीरमां आवेछे; तथा राजानी पेठे सर्व इंद्रियोने पृथक् पृथक् स्थानोमां पृथक् पृथक् व्यापारने विषे अधिकार आपेछे; तथा ए प्राण पांच प्रकारना वृत्तिभेदे करीने शरीरमां रह्योछे; वळी ए प्राण हृदयगत सुषुम्णा नाडीनी द्वाराये पुण्यवान्ने पुण्य लोकमां पमाडेछे अने पापीने अधो लोकमां पमाडेछे; तथा एज प्राण बाह्य आदित्यरूप अधिदैवतरूपे रह्यो छतो, चक्षुरादिरूप अध्यात्मने तथा अधिभूत एटले स्थूळ शरीर अने विषयोने अनुग्रह करेछे (चलावेछे); तथा मरण काळे जीवनुं चित्त जे शरीरादिकने विषे जाय, ते जीव संकल्पात्मक चित्त अने इंद्रियोनी साथे मुख्य प्राणमां आवे. तात्पर्य ए के, मरण समये क्षीण थईछे इंद्रिय वृत्तियो जेनी एवो छतो प्राण वृत्तिरूपे करीनेज रहेछे, के जेने ज्ञाति लोको श्वास मात्र चालेछे एम कहेछे; ते प्राण उदानवृत्तिये करीने उत्क्रमण करतो छतो ते भोक्ता जीवने पुण्य पापना वशथी संकल्पानुसारी लोकने पमाडेछे ए रीते जे पुरुष प्राणने जाणीने उपासना करे तेनी पुत्रपौत्रादिरूप प्रजा विच्छिन्न थाय नहि; अने शरीरपात थया नंतर प्रा-

णना सायुज्यथकी अमृत होयछे एटले सापेक्ष अमृतभावने पामे. उपर कहेला अर्थनो संग्राहक श्लोकरूप मंत्रः—

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते ॥ १ ॥

अर्थः— पूर्वोक्त प्राणनी परमात्माथकी उत्पत्तिने तथा ' आयतिं ' एटले शुभाशुभ कर्मवशथी शरीरमां आवागमनने तथा ' स्थानं ' एटले स्थितिने तथा ' विभुत्वं ' एटले सम्राट्नी पेठे सर्व इंद्रियोने पायु उपस्थादि ते ते स्थानो विषे अधिकारना प्रदानरूप स्वामीपणाने तथा प्राणादि वृत्तियोनां पांच प्रकारे स्थापनने तथा बाह्य आदित्यादि अधिदैवतरूपे अवस्थानने तथा चक्षुरादि अध्यात्मरूपे अवस्थानने जे जाणे ते अमृतभाव पामे एटले सापेक्ष अमृतभाव पामे १. इत्यादि वात त्रीजा प्रश्नना उत्तरमां निरूपण करीछे. ३

पूर्वे त्रण प्रश्नोना उत्तरे करीने चित्तशुद्धिद्वारा परविद्याने विषे अधिकारप्राप्तिने अर्थे अपरविद्या विषयक साध्य साधनरूप नामरूपात्मक

व्याकृतमां अंतर्गत अने अनित्य एवा संसारनी समाप्ति करी; हवे असाध्य साधनरूप तथा प्राणनुं अविषय माटेज क्रियात्मक कर्मेंद्रियोनुं पण अविषय, तथा मननुं अविषय माटेज ज्ञानेंद्रियोनुं पण अविषय, तेथी सुखरूप, निर्विकार, सत्य अने परविद्याये करीनेज गम्य तथा कल्पित सर्व प्रपञ्चनुं अधिष्ठानभूत पुरुषाख्य प्रत्यक् अभिन्न जे ब्रह्म तेना निरूपणने अर्थे उत्तर एवा त्रण प्रश्नो छे.

सौर्यायणि गार्ग्ये प्रश्न कर्यो के " हे भगवन्! शिरःपाणि आदि अवयववान् एवा पुरुषने विषे कह्यां करणो स्वाप करेछे एटले स्व व्यापारथी उपराम पामेछे? १. तथा कह्यां करणो जागरूक होयछे एटले व्यापारथी उपराम पामतां नथी? २. तथा कह्यो देव स्वप्नोने जुवेछे ? ३. तथा जाग्रत् स्वप्ननो उपराम थये छते श्रम रहित सुख कोने होयछे? ४. तथा सुषुप्ति प्रलयने विषे करणादि संघात कोने विषे एकीभूत थइने सम्यक् प्रतिष्ठित होयछे? तात्पर्य ए के, सुषुप्ति अने प्रलयने विषे कार्यकरणनो संघात जेने विषे लीन होयछे ते कोण? ५.उत्तरः— हे गार्ग्य! जेम अस्त पामता सूर्यनां किरणो सूर्य मंडलमां एकीभूत

णना सायुज्यथकी अमृत होयछे एटले सापेक्ष अमृतभावने पामे. उपर कहेला अर्थनो संग्राहक श्लोकरूप मंत्रः—

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते ॥ १ ॥

अर्थः— पूर्वोक्त प्राणनी परमात्माथकी उत्पत्तिने तथा ' आयतिं ' एटले शुभाशुभ कर्मवशथी शरीरमां आवागमनने तथा ' स्थानं ' एटले स्थितिने तथा ' विभुत्वं ' एटले सम्राट्नी पेठे सर्व इंद्रियोने पायु उपस्थादि ते ते स्थानो विषे अधिकारना प्रदानरूप स्वामीपणाने तथा प्राणादि वृत्तियोनां पांच प्रकारे स्थापनने तथा बाह्य आदित्यादि अधिदैवतरूपे अवस्थानने तथा चक्षुरादि अध्यात्मरूपे अवस्थानने जे जाणे ते अमृतभाव पामे एटले सापेक्ष अमृतभाव पामे १. इत्यादि वात त्रीजा प्रश्नना उत्तरमां निरूपण करीछे. ३

पूर्वे त्रण प्रश्नोना उत्तरे करीने चित्तशुद्धिद्वारा परविद्याने विषे अधिकारप्राप्तिने अर्थे अपरविद्या विषयक साध्य साधनरूप नामरूपात्मक

व्याकृतमां अंतर्गत अने अनित्य एवा संसारनी समाप्ति करी; हवे असाध्य साधनरूप तथा प्राणनुं अविषय माटेज क्रियात्मक कर्मेंद्रियोनुं पण अविषय, तथा मननुं अविषय माटेज ज्ञानेंद्रियोनुं पण अविषय, तेथी सुखरूप, निर्विकार, सत्य अने परविद्याये करीनेज गम्य तथा कल्पित सर्व प्रपञ्चनुं अधिष्ठानभूत पुरुषाख्य प्रत्यक् अभिन्न जे ब्रह्म तेना निरूपणने अर्थे उत्तर एवा त्रण प्रश्नो छे.

सौर्यायणि गार्ग्ये प्रश्न कर्यो के "हे भगवन्! शिरःपाणि आदि अवयववान् एवा पुरुषने विषे कह्यां करणो स्वाप करेछे एटले स्व व्यापारथी उपराम पामेछे? १. तथा कह्यां करणो जागरूक होयछे एटले व्यापारथी उपराम पामतां नथी? २. तथा कह्यो देव स्वप्नोने जुवेछे? ३. तथा जाग्रत् स्वप्ननो उपराम थये छते श्रम रहित सुख कोने होयछे? ४. तथा सुषुप्ति प्रलयने विषे करणादि संघात कोने विषे एकीभूत थइने सम्यक् प्रतिष्ठित होयछे? तात्पर्य ए के, सुषुप्ति अने प्रलयने विषे कार्यकरणनो संघात जेने विषे लीन होयछे ते कोण? ५.उत्तरः— हे गार्ग्य! जेम अस्त पामता सूर्यनां किरणो सूर्य मंडलमां एकीभूत

होयछे अने सूर्य उदय पामे छते पाछां प्रसार पामेछे तेमज सर्वे एवां विषयेंद्रियादिकनुं वृंद स्वप्न कालने विषे द्योतनात्मक मनने विषे एकीभाव पामेछे अर्थात् अविशेषपणाने पामेछे अने मन जागरूक थये छते पाछुं प्रसार पामेछे तेथी सर्व पण देवदत्तादि पुरुष स्वाप कालने विषे चक्षुरादि ज्ञानेंद्रियोये करीने बाह्य शब्दादि विषयोने ग्रहण करी शकतो नथी; तथा कर्मेंद्रियोये करीने भाषणादि व्यापार करी शकतो नथी; किंतु शयन करेछे एम तेने कहेछे. १ आ शरीररूपी पुरमां पांच प्राणरूपी अग्निओज जागेछे- तेमां अपान गार्हपत्य छे अने व्यान अन्वाहार्यपचन एटले दक्षिणाग्नि छे; जे माटे गार्हपत्यरूप अपानथी प्राणनुं प्रणयन(उर्द्ध्वगमन)थवापणुं छे, तेथी प्राण आहवनीयरूप छे; जे माटे उच्छ्वास, निश्वासरूप बे आहुतिने साम्ये करीने शरीरनी स्थितिने अर्थे पमाडेछे माटे ते वायु समान एटले होता कहेवायछे; (होतारूप समाननी पंचाग्निमां जे गणना करी ते छत्री न्याये करीने जाणवी.) तथा मन यजमानरूप छे; अने इष्ट फलनी प्राप्तिमां निमित्तभूत होवाथी उदान वायु इष्ट फलरूप छे; ते उदान मनरूप यजमानने

स्वप्नवृत्तिथी पण प्रच्युत करीने सुषुप्ति काळने विषे दिनदिनप्रति ब्रह्मरूप स्वर्गने पमाडेछे. (आ ठेकाणे अग्निहोत्रना रूपकथी विद्वान् पुरुषनो स्वाप पण अग्निहोत्ररूपज छे एम जाणवुं.) वळी उपर कह्या प्रमाणे प्राणनी उपासना कथन करी एम पण समजवुं नहि; किंतु इंद्रियो उपराम पामे छते प्राणज जागेछे एवो अर्थ विवक्षित छे. २ (उपर करेला वर्णने करीने त्वं पदार्थना शोधनरूप ज्ञाननी स्तुति करी एवो तात्पर्यार्थ छे.) तथा सर्वे इंद्रियो उपराम पामे छते अने प्राण देह रक्षाने अर्थे जागरूक रहे छते सुषुप्तिनी उत्पत्तिथी पेहेला अंतरालावस्थाने विषे मनरूप देव सर्वे इंद्रियो पोताने विषे एकीभाव पामे छते विषय विषयितारूप महिमानो पोताने विषे अनुभव करेछे एटले जाग्रत काळे जोयेला पदार्थोने जुवेछे, अने श्रुत पदार्थोनुं श्रवण करेछे; तथा देश काळादिकनो अनुभव करेछे, तथा दृष्ट, अदृष्ट, श्रुत, अश्रुत, अनुभूत, अननुभूत सर्वने जुवेछे; ए रीते मनरूप उपाधिवाळो आत्मा स्वप्नोने जुवेछे. ३ ते मन देव ज्यारे चिंताख्य सूर्य तेजे करीने अने ब्रह्म तेजे करीने नाडीओ विषे अभिभूत (तिरस्कार) थयुंछे वासनारूप द्वार जेनुं एवो होय-

छे, त्यारे करणोनी साथे मननो वृत्तिरूप किरणो हृदयमां उपसंहार थायछे तेथी ते मन 'चेतना' शब्दे करीने वाच्य एवां सामान्य विज्ञानरूपे करीने सर्व शरीरमां व्यापीने रहेछे; ए काळने विषे मन देव स्वप्नोने जोतो नथी, केमके वासनारूप द्वारनो तिरस्कार थयोछे; त्यार पछी आ शरीरमां विज्ञानरूप निर्बाध अने अविशेषे करीने सर्व शरीर व्यापक एवुं जे सुप्रसन्न स्वरूप सुख तद्रूप होयछे; अर्थात् सुषुप्तिमां. ४ (एटला ग्रंथे करीने आनन्दमय शब्दे वाच्य अने अनभिव्यक्त तथा मन आदि वासनावाळुं जे ज्ञानस्वरूप ते सुषुप्तिनुं धर्मिरूप छे ए वात कथन करी.) हवे गार्ग्यना पांचमा प्रश्नो उत्तररूप जे तुर्य स्वरूप तेने विवेचना करीने आ शरीरमांज देखाडेछे कें, हे शिष्य! ए सुषुप्ति काळने विषे अविद्या, काम, कर्महेतुक कार्यकरणो उपशांत होयछे अने तेओ उपशान्त थये छते पूर्वे उपाधियोथी अन्यथा भावना करेलुं एवुं जे आत्मस्वरूप ते अद्वय, एक, शान्त, शिवरूप होयछे; एज अर्थनुं दृष्टान्तपूर्वक प्रतिपादन करेछे के, हे सौम्य! जेम पक्षिओ भ्रमण करी करीने निवासने अर्थे वृक्ष प्रत्ये जायछे तेमज पृथ्वी तथा तेनी मात्रा गंध; अप्

तथा तेनी मात्रा स्पर्श; आकाश तथा तेनी मात्रा शब्द अर्थात् स्थूळ सूक्ष्म भूतो; तथा चक्षुरिंद्रिय अने द्रष्टव्य; श्रोत्र अने श्रोतव्य; घ्राण अने घ्रातव्य; रसना अने रसयितव्य; त्वक् अने स्पर्शयितव्य; वाक् अने वक्तव्य; हस्त अने आदातव्य; उपस्थ अने आनंदयितव्य; पायु अने विसर्जयितव्य; पाद अने गंतव्य अर्थात् बुद्धिकर्मेंद्रियो अने तेमना विषयो; मन अने तेनो विषय मंतव्य; बुद्धि अने बोद्धव्य; अहंकार अने अहंकर्त्तव्य; चित्त अने चेतयितव्य अर्थात् अन्तःकरणचतुष्टय अने तेना विषयो; तेज अने द्योतयितव्य; प्राण अने विधारयितव्य ए सर्व नामरूपात्मक अक्षर परमात्माने विषे लीन थायछे. ५. पूर्वोक्त सर्व उपाधियोथी पर अने ते उपाधियोमां कर्तृत्व भोक्तृत्वरूपे प्रविष्ट एवुं जे आत्मस्वरूप तेज द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मंता, बोद्धा, कर्त्ता अने विज्ञानमय छे; ते प्रमाता आत्मा जेम जळमां पडेलुं सूर्यनुं प्रतिबिंब जळनुं शोषण थये छते बिम्बभूत सूर्यने विषे विलय पामेछे तेमज परम अक्षरस्वरूपने विषे एटले बिम्बभूत साक्षीस्वरूपने विषे विलय पामेछे. अभिप्राय ए के, उपाधिने लेइने आत्मा

उपहित हतो ते उपाधियोनो लय थये छते पोते अनुपहितस्वरूपज होयछे एज लय शब्दनो अर्थ; ए रीते शोधित तुरीय स्वरूपनुं शुद्ध ब्रह्मनी साथे ऐक्य, अने ऐक्य ज्ञाननुं फल कहेछे के, ते शोधित तुरीय आत्मा अच्छाय एटले तमोवर्जित तथा नामरूपात्मक शरीरोपाधिथी रहित तथा सर्व धर्मोथी रहित, शुद्ध, सत्य, निर्विकार, प्राण, मन आदिकनुं अविषय, कल्पित सर्व प्रपञ्चनुं अधिष्ठानरूप, शान्त एवुं शिवस्वरूप होयछे. सर्वैषणाओथी विनिर्मुक्त अने सर्वत्यागी एवो जे कोइ अधिकारी पुरुष ए रीते ब्रह्मात्मैकत्वनो गुरुथी साक्षात्कार करे ते सर्वज्ञ होयछे एटले पूर्वे अविद्याथी असर्वज्ञ हतो ते अविद्यानो ऐक्य ज्ञानथी नाश थये छते सर्वज्ञ होयछे अने सर्वरूप होयछे. पूर्वोक्त अर्थनो संग्राहक श्लोक मंत्रः—

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्व्वैः
प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र ।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स स-
र्व्वज्ञः सर्व्वमेवाविवेशेति ॥

अर्थः— विज्ञानात्मा एटले प्रमाता तथा अग्न्यादि देवताओनी संघाते सर्वे इंद्रियो तथा

पृथिव्यादि सर्वे भूतो जे अक्षरने विषे विलय पामेछे ते अक्षर ब्रह्मने हे सौम्य! जे जाणे ते सर्वज्ञ होयछे; अने सर्व एटले पूर्ण होयछे. एटली वात चोथा प्रश्नना उत्तरमां निरूपण करीछे. ४.

हवे पर अपर ब्रह्मनी प्राप्तिनुं साधनत्वरूपे करीने ॐकारनी उपासनानां विधानने अर्थे आ पांचमा प्रश्ननो आरंभ छे. शैब्य सत्यकामे प्रश्न कर्यो के, हे भगवन्! मनुष्यो मध्ये जे कोइ पुरुष सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अपरिग्रह, त्याग, संन्यास, शौच, संतोष, अमायित्व इत्यादि यम नियमे युक्त थईने बाह्य विषयोथी उपसंहार कर्यां छे इंद्रियो जेणे एवो छतो यावज्जीव ॐकारनुं अभिध्यान करे एटले आभिमुख्ये करीने चिन्तवन करे ते यावज्जीव व्रतधारी ज्ञान कर्मोथी प्राप्य एवा तो अनेक लोको छे एटले चंद्र सूर्यादि स्थानो छे ते मध्ये ॐकारनी उपासनाथी कया लोकने जीते? ॐकारनुं उपासन अपर ब्रह्मना अवलंबने कर्युं होय तो अपर ब्रह्मनी प्राप्तिनुं साधन छे अने परब्रह्मना अवलंबने करीने कर्युं होय तो पर ब्रह्मनी प्राप्तिनुं साधन छे एवा अभिप्रायथी उत्तर आपेछे के, हे सत्यकाम! सत्य, अक्षर, पुरुषाख्य जे परब्रह्म तथा प्रथम-

जन्य प्राणाख्य हिरण्यगर्भरूप जे अपर ब्रह्म ते बन्ने ॐकारात्मकज छे माटे. शंकाः– ब्रह्म दृष्टिये ॐकारनी उपासना उपदेश करी, ते करतां साक्षात्परब्रह्मनीज उपासना उपदेश केम न करी? समाधानः– ब्रह्म, आत्मा, सत्य इत्यादिक शब्दोनुं अविषय तथा सर्व धर्मोथी रहित इंद्रियातीत एवुं शुद्ध ब्रह्म केवळ मने करीने चिन्तवन करी शकायज नहि माटे प्रतिमास्थानीय ॐकारने विषे भक्तिथी ब्रह्मदृष्टिना आवेशे करीने जे ध्यान करे ते पुरुषने तो ब्रह्म पोतेज प्रसन्न थाय ए प्रकारे शास्त्रना प्रामाण्यथी जणायछे माटे ॐकारनी उपासना कहीछे; वास्तेज जे पर अपर ब्रह्म तेज उपचारथी ॐकाररूप कह्युंछे; ए रीते जाणनार पुरुष आत्मप्राप्तिमां साधनभूत ॐकारे करीने पर अथवा अपर जेनुं ध्यान करे तेने पामे, वास्ते ॐकार ब्रह्मप्राप्तिमां अत्यंत समीप साधन छे; कदापि उपासक पुरुष ॐकारनी मात्राओना विभागने न जाणतो होय तो पण तेने विशेष गति प्राप्त थाय. जे कोइ पुरुष ॐकारनी एक मात्रानुंज ध्यान करे ते पुरुषने ऋग्वेदरूप ॐकारनी प्रथम मात्रा पृथ्वीमां साधक एवा मनुष्य लोकने पमाडेछे; ते पुरुष श्रेष्ठ द्विज

जन्म पामोने तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धाये संपन्न थयो छतो विभूति(ऐश्वर्य)नो अनुभव करेछे; यथेष्टाचारी होय नाहि योगभ्रष्टने कोइ काळे पण दुर्गतिनी प्राप्ति थाय नहि ए वात भगवद्गीतामां पण कहेलीछे. द्वि मात्रानो विभाग जाणनार जे पुरुष द्वि मात्रा विशिष्ट ॐकारनुं ध्यान करे ते पुरुष स्वप्नात्मक यजुर्मय अने सोमदैवत्य एवां मनने विषे संपन्न होयछे एटले एकाग्रताये करीने मनने विषे आत्मभाव पामे; तथा ते पुरुषने द्वितीय मात्रारूप यजुर्वेद अन्तरिक्ष छे आधार जेनो एवा सोम लोकने पमाडे; ते पुरुष त्यांहां विभूतिनो अनुभव करीने मनुष्य लोकने विषे पुनरावृत्ति पामे. जे पुरुष त्रिमात्रक ॐकाररूप प्रतीके करीने सूर्य मंडलमां अंतर्गत परपुरुषनुं ध्यान करे ते पुरुष सूर्यने विषे संपन्न होय एटले तदात्मभावने पामे; ते पुरुष सोम लोकथी जेम, तेम पुनरावृत्ति पामतो नथी; किंतु जेम सर्प त्वचाथी निर्मुक्त थायछे तेम पुण्य पापथी निर्मुक्त थयेला ते पुरुषने तृतीय मात्रारूप सामवेद हिरण्यगर्भ लोकने एटले जीवघनने पमाडे; (जीवो लिंगात्मा हिरण्यगर्भने विषे संहत थईने एटले घनीभाव पामोने रह्याछे माटे हिरण्यगर्भ जीवघन

कहेवायछे.) हिरण्यगर्भभावने पाम्यो ते पुरुष ध्यान करतो छतो जीवघनथी पण पर एवा परमात्मपुरुषनो साक्षात्कार करे.

पूर्वोक्त अर्थना संग्राहक मंत्र श्लोक २.

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनुविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः ॥ १ ॥
ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं ससामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति॥२॥

अर्थः— ॐकारनी अकार, उकार, मकारात्मक एवी त्रण मात्राओ 'मृत्युमत्यः' एटले मृत्युगोचर छे; तात्पर्य ए के, ब्रह्मदृष्टि विना ए त्रण मात्राओना उपासक जे पुरुष तेमने मृत्यु अनतिक्रमणीय होयछे एटले जीताइ शकाय नहि, अने ब्रह्मदृष्टिये करीने जो उपासना करे तो दोष नहि ए वात कहेछे के, जे विश्वाख्य जाग्रत् पुरुष ते वैश्वानरथी अभिन्न छे अने स्थूळ

शरीर तथा जागरित ए तेनुं स्थान छे; तथा तैजसाख्य जे स्वप्न पुरुष ते हिरण्यगर्भथी अभिन्न छे अने लिंग शरीर तथा स्वप्न तेनुं स्थान छे; तथा प्रज्ञाख्य जे सुषुप्ति पुरुष ते ईश्वरथी अभिन्न छे अने अव्याकृत तथा सुषुप्ति तेनुं स्थान छे ए रीते तादात्म्ये करीने अभिध्यानरूप जे योगक्रियाओ तेमने विषे त्रण मात्राओ समुदायरूपे अथवा पृथक्रूपे प्रयुक्त करी होय तो ते ज्ञानी चलित होय नहि; (एणे करीने सर्वात्मक एवा ब्रह्मरूप ईश्वरने विषे ॐकारना अभेदे करीने ध्यान कथन कर्युं.) ए रीते ध्यान कर्ये छते चलन केम न होय? एवी शंका करवी नहि; केमके पोतानेज सर्वात्मक होवाथी पोताथी अतिरिक्त चलनना हेतुनोज अभाव छे. १. प्रथम मात्राना उपासक मेधावी पुरुषो ऋग्वेदरूप अकार मात्राये करीने मनुष्य लोकने पामेछे; अने द्वितीय मात्राना उपासक यजुर्वेदरूप उकार मात्राये करीने सोम लोकने पामेछे; तथा तृतीय मात्राना उपासक सामवेदरूप मकार मात्राये करीने ब्रह्म लोकने पामेछे; अमेधावी पुरुष पामता नथी, ते त्रिविध लोकरूप अपर ब्रह्मने ॐकाररूप साधने करीने पामेछे अने जे अक्षर, सत्य, पुरुषाख्य, शान्त तथा जाग्रत्

स्वप्न सुषुप्त्यादिथी वर्जित, अजर, अमृत, निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्म तेने पण पामेछे.२. एटली वात पांचमा प्रश्नना उत्तरमां निरूपण करीछे.

पूर्वे कार्यकारणात्मक सर्व जगत् विज्ञानात्मानी साथे सुषुप्ति काळमां पर अक्षर स्वरूपने विषे लय पामे एम कह्युं तेथी प्रलय काळमां पण तेज अक्षर स्वरूपने विषे सर्व जगत्नो लय थाय अने ते पर अक्षरथीज पाछुं उत्पन्न थाय ए वात पण अर्थात् सिद्ध थइ. अकारणमां कार्यनो लय होयज नहि माटे आत्माथीज प्राण उत्पन्न थायछे ए प्रकारे आत्माने कारणपणुं पूर्वे कह्युंछे, अने जगत्नुं जे सत्य स्वरूप मूळ तेनां परिज्ञानथकीज परम श्रेय प्राप्त थाय ए प्रकारे सर्वे उपनिषदोनो सिद्धान्त छे; वळी "स सर्वज्ञः सर्वो भवति" (जे पुरुष सर्वनुं लयस्थान अक्षर स्वरूपने जाणे ते सर्वज्ञ होयछे अने सर्वरूप होयछे.) ए रीते ह्मणांज उपर कही आव्या छैये वास्ते वेद्य एटले जाणवा योग्य पुरुषाख्य अने सत्य एवुं ते अक्षर स्वरूप क्यांहां रह्युंछे ते कहेवुं जोइए माटे आ छठा प्रश्ननो आरंभ छे.

सुकेशा भारद्वाजे प्रश्न कर्यो के हे भगवन्! को-

सला नगरीना राजाना पुत्र हिरण्यनाभे म्हारो पासे आवीने प्रश्न कर्यो के "हे भारद्वाज! षोडशकल (सोळ कलावान्) पुरुषने तमे जाणोछो माटे मने तेनो उपदेश करो." त्यारे तेने में कह्युं के "हे हिरण्यनाभ! षोडशकल पुरुषने हुं जाणतो नथी, जो जाणतो होउं तो केम न कहुं; जे कोइ वास्तव स्वरूप आत्माने जाण्या विना अन्यथा कथन करे ते अनृतवादी पुरुष उभय लोकथी भ्रष्ट थाय, माटे जाण्या विना हुं अनृत कहेवा योग्य नहि." पछी ते राजपुत्र तूष्णीं थइने रथमां बेशीने गयो; माटे तमने पुछुंछौं के, ते षोडशकल पुरुष क्यांहां छे? उत्तरः— हे सौम्य! ते षोडशकल पुरुष आज शरीरमां अन्तःस्थित छे, देशान्तरने विषे जाणवा योग्य नथी; जेने विषे वक्ष्यमाण प्राणादि सोळ कळाओ विवर्त्तरूपे उत्पन्न होयछे ते सोळ कलारूप उपाधियोथी कला रहित छतां पण कळा सहितज जाणे होय शुं तेवो जणायछे; वास्तवथी तो विद्याये करीने निष्कल (कला रहित) लक्षित थाय छे. अध्यारोपित कलाओना अपनयन (अपवाद) थी विद्याये करीने ते निष्कल पुरुषनो

साक्षात्कार कराववोछे माटे प्रथम तो पुरुषथी कलाओनो उद्भव कहेछे केः—

हे शिष्य ! ते पुरुष सृष्टिक्रमने विषे ईक्षण करतो हवो; शी रीते के "कोण कर्त्ताविशेष देहथी उत्क्रमण कर्ये छते हुंज उत्क्रमण करूं? अने शरीरमां कोण प्रतिष्ठित थये हुं प्रतिष्ठित थाउं?" ए रीते ईक्षण करीने ते पुरुष सर्व प्राणियोना करणोनो आधारभूत अने जे उपाधिये करीने हिरण्यगर्भ एवी आख्या थाय ते लिंगात्मा समष्टि प्राणने स्रजतो हवो १. त्यार पछी सर्व प्राणियोनी शुभाशुभ कर्मने विषे प्रवृत्ति थवामां हेतुभूत एवी श्रद्धाने स्रजतो हवो २. त्यार पछी कर्मफलोना उपभोगनां साधन इंद्रियादिकना अधिष्ठानभूत माटेज कारणभूत एवां महाभूतोने स्रजतो हवो; ते महाभूतोने विषे प्रथम शब्द गुण विशिष्ट आकाशने स्रजतो हवो ३. त्यार पछी शब्द स्पर्श द्वि गुण विशिष्ट वायुने स्रजतो हवो ४. त्यार पछी शब्द, स्पर्श, रूप त्रिगुण विशिष्ट तेजने स्रजतो हवो ५. त्यार पछी शब्द, स्पर्श, रूप, रस चार गुण विशिष्ट अप्‌ने स्रजतो हवो ६. त्यार पछी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच गुण विशिष्ट पृथ्वीने स्रजतो हवो ७.

त्यार पछी एज भूतोथी आरब्ध एवां ज्ञानक्रियानां साधनभूत दश इंद्रियोने स्रजतो हवो ८. त्यार पछी ते इंद्रियोनुं नियामक संशय संकल्पादिरूप मनने स्रजतो हवो ९. ए रीते प्राणियोनां कार्यकारणोने स्रजीने पछी प्राणियोनी स्थितिने अर्थे व्रीहियवादिरूप अन्नने स्रजतो हवो १०. त्यार पछी भक्ष्यमाण ते अन्नथी सर्व कर्मने विषे प्रवृत्ति थवामां कारणभूत एवां वीर्य(बळ)ने स्रजतो हवो ११. त्यार पछी अविशुद्ध सत्व (मलिनसत्व)थी आचरण करेलां पापे करीने संकीर्ण एवा प्राणियोनां पापोनुं क्षाळन करीने चित्तशुद्धि थवामां साधनभूत एवां तपने स्रजतो हवो. १२. अने ते तपे करीने शुद्ध छे अंतर बाह्य करणो जेमनां एवा प्राणियोने अर्थे मंत्रात्मक एवा ऋगादि चार वेदोने स्रजतो हवो १३. त्यार पछी अग्निहोत्रादि कर्मोने स्रजतो हवो १४. त्यार पछी कर्मोना फलभूत एवा लोकोने स्रजतो हवो १५. अने ते लोकोमां स्रजेलां प्राणियोनां देवदत्त, यज्ञदत्त इत्यादि नामोने स्रजतो हवो १६. ए रीते जेम तैमिरिकदृष्टि पुरुष द्विचंद्रकेशोंड्रकादिकने स्रजेछे, वळी जेम स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वाप्निक सर्व पदार्थोने स्रजेछे, तेमज प्राणिओनां

अविद्यादिक दोषरूप बीजथी ए सर्व कळाओ स्रजीछे; जेम लोकमां समुद्रायण एटले समुद्र छे प्राप्यस्थान जेमने एवी स्रवती नदीओ समुद्रने पामीने अस्त थायछे अनंतर तेमनां नाम अने रूप बन्ने नष्ट थायछे केवळ समुद्र एमज कहेवायछे, तेमज द्रष्टा ते षोडशकल पुरुषनो पुरुषायणा एटले अक्षर पुरुष छे गति जेमनी एवी पूर्वोक्त प्राणादि कळाओनां नाम अने रूप बन्ने नष्ट थायछे केवळ अविनाशी पुरुष ब्रह्मवेत्ताओ कहेछे. ए प्रकारे गुरुये उपदेश कर्याछे कळाओना उत्पत्ति प्रलय जेने एवो छतो जे अधिकारी जाणे तेनी अविद्या काम कर्मजनित एवी प्राणादि कळाओनो विद्याये करीने नाश थये छते ते विद्वान् अकल एटले प्राणादि कळा रहित छतो अमृत एटले प्राणादि निमित्त मरण रहित होयछे ए विषे श्लोकरूप श्रुतिः—अरा इव रथनाभौ कळा यस्मिन्प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ जेम रथनाभिने विषे अराओ प्रतिष्ठित छे तेमज षोडश कळाओ जेने विषे प्रतिष्ठित छे ते वेद्य एवा पूर्ण पुरुषने जाणवो के हे शिष्यो! जेथी तमोने मृत्यु व्यथा

पमाडे नहि. ते शिष्योने ए प्रकारे उपदेश करीने पिप्पलाद मुनि कहेछे के, हे शिष्यो ! तमोने में जे उपदेश कर्युं एटलुंज हुं जाणुंछों, एथी अधिक बीजुं कांइ पण जाणवानुं नथो. शिष्योनी अवशिष्ट वेद्यविषयक शंकानो निवृत्तिने अर्थे ए रीते पिप्पलाद मुनिथ कह्युंछे. गुरुये शिक्षा कर्याथी कृतार्थ थया एवा ते छ शिष्यो गुरुना उपकारनो बदलो कांई पण न जोता छता गुरुचरणनी पुष्पांजलिए करीने पूजा करता हवा; अने शिरोनमन करता छता बोल्या के, "हे श्रीगुरो ! तमेज अमारा पितारूप छो; केमके विद्याये करीने नित्य, अजर, अमर, अभय ब्रह्मस्वरूप शरीर उत्पादन कर्युं; वळी हे गुरो ! तमेज अमोने विद्यारूपी नौकाये करीने विपरीत ज्ञानरूप अविद्या सागरथी मोक्षाख्य पर पारे उतारता हवा माटे प्रत्युपकारने बदले तमने केवल नमस्कार करीएछैये ! ब्रह्मविद्याना संप्रदायने करनारा परम ऋषिओने नमस्कार करीए छैये !! ब्रह्मविद्याना संप्रदायने करनारा परम ऋषिओने नमस्कार !!!

आ उपनिषद्ना तात्पर्यार्थनो श्लोकः—

प्राणश्रद्धाखवायुज्वलनजलधरा

इंद्रियं मानसं च भक्तं वीर्यं तपश्चा-
थ सकलनिगमा कर्म लोकाश्च नाम ।
यस्माज्जाताश्च यस्मिन्विलयमुपग-
ताः षोडशैताः कला यः सर्वेषां संप्र-
तिष्ठा खलु तदधिगमाज्जायते वीत-
मृत्युः १

अर्थः– प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इंद्रियो, मन, अन्न, वीर्य, तप, सर्व- वेदो, कर्म, लोक, नाम ए षोडश कलाओ जेथी उत्पन्न थइने जेमां पाछो विलय पामे अने जे सर्वनो संप्रतिष्ठारूप एटले परमाधिष्ठानरूप छे ते प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मना साक्षात्कारथी पुरुष 'वीतमृत्युः' एटले संसार रहित होयछे. १

---

(६) मांडूक्योपनिषद्ना अनुसारे विचार.

आ उपनिषद्नो सारांश चतुर्थ प्रक्रियामां कथन कर्योछे; अने तेनाज तात्पर्यार्थनो श्लोकः–

जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तिस्त्रितयमपि मतेः
साक्षिणी तस्य तुर्या सर्वेषां यस्तु

साक्षी गुणमलरहितोप्यात्तनानाभि-
धानः । भूताद्योचिंत्य एतत्सकल-
गुणनुतः प्रत्यगीशोयमात्मा ब्रह्मों-
कारादिगम्यं विदितमिति भवेद्येन स
ब्रह्मभूतः १

अर्थः– अकार, उकार, मकारात्मक जे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ते मतिनी अवस्थाओ छे; ए त्रणेनी साक्षीरूप अर्ध मात्राये उपलक्षित चित् छे ते सर्वनो साक्षी चिदात्मा गुणरूप मळे करीने रहित छतो पण ग्रहण करीछे विश्व वैश्वानर इत्यादि नाना संज्ञाओ जेणे एवो होयछे; तथा जे सर्व भूतोनो पण आद्य छे; तथा अचिन्त्य स्वरूप छे; तथा जे अनन्त गुणोथी स्तुत्य होयछे ते प्रत्यक् अभिन्न ईशरूप आत्माज ॐकारादिये करीने गम्य एटले उपलक्षित एवुं ब्रह्मरूप छे ए रीते प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म जेणे साक्षात्कार कर्युं होय ते ब्रह्मभूत होयछे. १

(७) तैत्तिरीयोपनिषद्ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव

विलीयते। येनेदं धार्य्यते चैव तस्मैं ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥ यैरिमे गुरुभिः पूर्व्वं पदवाक्यप्रमाणतः। व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान् नित्यं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥

अर्थः— जे परमात्माथकी आ सर्व जगत् उत्पन्न थयुंछे, अने जेने विषेज लय पामेछे, तथा जेणे सम्यक् धारण कर्युंछे ते ज्ञानस्वरूप प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्मने नमस्कार! १. जे गुरुये पूर्वे आ सर्वे वेदान्तो पदवाक्यनां प्रमाणथी व्याख्यान कर्यां ते गुरुने हुं नित्ये प्रणाम करुंछौं. (विद्यानी प्राप्तिमां गुरुभक्ति अन्तरङ्ग साधन छे एवुं जणाववा माटे आ गुरुविषयक मंगलाचरण छे.)२

आ उपनिषद्मां पूर्वे बार अनुवाके करीने चित्तशुद्धिने अर्थे कर्मनी साथे अविरुद्ध एवां संहितादिविषयक उपासनो कथन कर्यां; तदनंतर भूरादि व्याहृतिद्वाराये करीने सोपाधिक आत्मस्वरूपनुं प्रदर्शन कराव्युं; एटलुं कह्येथी संसारनी बीजभूत अविद्यानो निःशेषताथी उपशम थाय नहि माटे सर्वे उपद्रवोनुं बीजभूत अज्ञानना निःशेष नाशने अर्थे सर्व उपाधिविशेषोथी निर्मुक्त ए-

वां आत्मस्वरूपनुं अविद्यानाशमां हेतुभूत एवुं अपरोक्ष ज्ञान थवाने अर्थे उत्तर ग्रंथनो आरंभ छे.

ए ब्रह्मविद्यानुं प्रयोजन तो अविद्यानी निवृत्तिथी आत्यंतिक संसारनो अभाव तथा निरतिशय सुखनी प्राप्तिरूप छे ए रीते पोतेज श्रुति आदिने विषे कहेछे के,–

ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् ॥

अर्थः– वक्ष्यमाण छे लक्षण जेनां एवां ब्रह्मने प्रत्यक्थी अभिन्नताये करीने जे जाणे एटले अपरोक्ष करे ते ब्रह्मने पामे अर्थात् ब्रह्मीभूत होयछे. ए ब्रह्मनुं लक्षण शुं? ते कहेवा माटे बीजी श्रुतिः–

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥

अर्थः– सत्य, ज्ञान, अनन्त ए त्रण ब्रह्मनां विशेषणरूप छे एटले इतर विशेष्य पदार्थोथी ब्रह्मने जुदुं पाडनारां छे; तथा लक्षणरूप पण छे एटले ब्रह्मने जणावनारां छे. सत्यादि त्रण शब्दोनो परस्पर संबंध छे नहि, केमके परार्थ छे एटले गृहादिकनी पेठे परने माटे छे; जेम लोकमां राजाना सेवक पुरुषोनो परस्पर

संबंध छे नहि तेम; वास्ते परस्पर निरपेक्ष एवां सत्यादि त्रण्ये विशेषणोनो प्रत्येक प्रत्येक ब्रह्मनी साथे संबंध छे; जेम के, "सत्यंब्रह्म। ज्ञानंब्रह्म। अनन्तंब्रह्म" सत्य एटले जे वस्तु जे स्वरूपे करीने निश्चय कर्युं ते स्वरूपे करीने कोइ काळे पण व्यभिचार न पामे ते अर्थात् त्रिकाळाबाध्य एटले नित्य. जे वस्तु जे स्वरूपे करीने निश्चय कर्युं होय ते स्वरूपथी व्यभिचार पामे ते अनृत कहेवायछे; जेम वाचारंभण श्रुतिथी घट शरावादि विकार अनृत छे, मृत्तिकाज सत्य छे तेम; माटे जे सत्य स्वरूप ते ब्रह्म छे ए रीते सत्य पदे करीने ब्रह्मने विषे जन्मादि सर्व विकारोनी व्यावृत्ति करी. त्यारे 'सत्यं' ए विशेषण आपवाथी ब्रह्मने विषे कारणपणुं प्राप्त थयुं; केमके मृत्तिकानी पेठे जे कारण ते सत्य कहेवायछे; वळी कारणत्व प्राप्त थवाथी कर्तृत्वादि कारकपणुं पण अर्थात् प्राप्त थयुं; वळी मृत्तिकाना दृष्टान्ते करीने अचिद्रूपता पण प्राप्त थइ एवी शंका थये छते सर्व दोषना परिहारने अर्थे 'ज्ञानं' ए विशेषण आप्युंछे के "ज्ञानंब्रह्म" (जे ज्ञप्तिमात्र ते ब्रह्म) एणे करीने ब्रह्मने विषे कुलालादिकनी पेठे निमित्तकारणता व्यावृत्त करी; के-

मके जें कुलालादि निमित्तकारण ते तो ज्ञाता होयछे अने ब्रह्म तो ज्ञाता नहि, किंतु ज्ञप्तिमात्र छे; तथा ज्ञप्तिरूप होवाथी मृत्तिकादिकनी पेठे अचिद्रूपता पण व्यावृत्त करी. "ज्ञानं ब्रह्म" एम कहेवाथी ब्रह्मने विषे अंतवत्पणुं प्राप्त थयुं; केमके लोकमां ज्ञान अंतवाळुं जणायछे; जेमके घट ज्ञानानन्तर पट ज्ञान निवृत्त थायछे तेम; एवी शंका थये छते ते दोषनी निवृत्तिने अर्थे 'अनन्तं' ए विशेषण आप्युंछे; "अनन्तं ब्रह्म" एटले जे त्रिविधपरिच्छेद रहित ते ब्रह्म.

शंकाः– सत्यादि त्रण विशेषणोथी यद्यपि ब्रह्मने विषे अनृतादिक धर्मोनी व्यावृत्ति करी, तथापि जेम "नीलं उत्पलं" ए ठेकाणे नीलादि विशेषण विशिष्ट उत्पलरूप विशेष्य प्रसिद्ध छे तेम ब्रह्मरूप विशेष्य तो प्रसिद्ध नथी; माटे "मृगतृष्णानां जळमां कर्युंछे स्नान जेणे एवो अने ख पुष्पे कर्युं छे शिरोभूषण जेणे एवो अने हाथमां ग्रहण कर्युंछे शशशृंगनुं धनुष् जेणे एवो आ वंध्यापुत्र जायछे" आ वाक्य जेम शून्यार्थ छे तेमज "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ए वाक्यने पण शून्यार्थता प्राप्त थइ एवी शंका न करवी; केमके सत्यादि

त्रण शब्दो जेम विशेषणरूप छे तेमज ब्रह्मनां स्वरूपलक्षणरूप छे. जो कदा ब्रह्म वंध्या पुत्रनी पेठे शून्य होय तो श्रुतिये जे ब्रह्मनुं लक्षण कर्ह्यु ते निरर्थक पडे माटे एम जणायछे के, ब्रह्म शून्यरूप नथी. 'अनन्तं' ए पदे करीने ब्रह्म अने आत्मानुं एकत्व श्रुतिने विवक्षित छे एवा अभिप्रायथी भाष्यकार आ उपनिषद् शास्त्रनुं तात्पर्य कहेछे के "तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" आ श्रुतिमां ब्रह्मने विषेज आत्मा शब्दना प्रयोगथी तथा "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" आ श्रुतिमां ब्रह्मनोज जीवरूपे शरीरमां अनुप्रवेश कहेवाथी वेदिता पुरुषनुं जे आत्मस्वरूप तेज ब्रह्म छे. शंकाः— ज्यारे ब्रह्मनेज आत्मा कहिये त्यारे तेने ज्ञान प्रत्ये एटले "घटमहं जानामि" (हुं घटने जाणुंछौं.) ए रीते ज्ञानक्रियाप्रत्ये कर्तृत्व प्राप्त थयुं; वळी "सोकामयत" ए श्रुतिमां पण कामयिता आत्माने विषे ज्ञानकर्तृत्व प्रसिद्ध छे माटे ज्ञानप्रत्ये कर्त्ता होवाथी पूर्वे 'ज्ञानं' ए विशेषणे करीने ब्रह्मने विषे जे ज्ञप्तिमात्रत्व कथन कर्युं ते अयुक्त छे; वळी ब्रह्मने ज्ञप्तिमात्र कहीये तो पण

अनित्यत्व अने परतंत्रत्व प्राप्त थयुं; केमके जे धातुना अर्थो एटले क्रियाओ तेमने कर्ता आदि कारकोना सापेक्षपणाथी परतंत्रत्व छे; तथा च ज्ञानने पण धात्वर्थ होवाथी ज्ञप्तिरूप ब्रह्मने परतंत्रता अने अनित्यता प्राप्त थई. समाधानः— अनेक वृत्तिवाळां अन्तःकरणरूप उपाधिना अध्यासथी अविवेकी मूढ जनोये आत्माने विषे कर्त्तापणुं तथा सोपाधिक ज्ञानने विषे धात्वर्थपणुं एटले क्रियापणुं यद्यपि कल्प्युंछे तथापि आत्माने विषे वास्तव कर्त्तापणुं अने आत्मानाज स्वरूपभूत निरुपाधिक ज्ञानने विषे धात्वर्थपणुं छे नहि तेथी पूर्वोक्त शंका घटित नथी; माटे सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप ब्रह्म छे ए रीते लक्षण वाक्यनो अर्थ सिद्ध थयो. श्रुतिः—

योवेद निहितङ्गुहायां परमे व्योमन्
सोऽश्नुते सर्व्वान् कामान्। सह ब्र-
ह्मणा विपश्चितेति ॥ १ ॥

अर्थः— सत्य, ज्ञान, अनन्त स्वरूप जे ब्रह्म तेज बुद्धिरूप गुहाने विषे प्रत्यगात्मस्वरूपे रह्युंछे ए रीते प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्मने जे जाणे एटले

श्रवणादिके करीने अपरोक्ष करे ते पुरुष सर्वज्ञ ब्रह्मरूप थयो छतो सर्व कामोने भोगवे. १

आ उपनिषद्मां आनन्द वल्लीना आरंभमां "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म योवेद निहितङ्गुहायां" ए वाक्ये करीने जे सत्य ज्ञानानन्तस्वरूपब्रह्म तेज बुद्धि गुहामां प्रत्यक् स्वरूपे रह्युंछे ए रीते ब्रह्मैकात्मत्वनो उपक्रम करीने भृगु वल्लीना छठ्ठा अनुवाकनो मंत्र छेल्लो–

सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता ॥

अर्थः– ते आ वरुण पिताये उपदेश करी अने भृगु पुत्रे सम्यक् प्रकारे जाणी एवी जे विद्या ते हृदयाकाश गुहामां प्रत्यक् स्वरूपे स्थित एवां परमानन्दस्वरूप ब्रह्मने विषे प्रतिष्ठित थइ एटले परिअवसान पामी ए रीते ब्रह्मैकात्मत्वनो उपसंहार कर्योछे १. तथा आनन्द वल्लीनी श्रुति २

तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशःसम्भूतः इत्यादि.

अर्थः– "ते प्रत्यक् ब्रह्मथी आकाश उत्पन्न थयुं" इत्यादि अनेक श्रुतिओए आकाशादिक का-

र्यनी सृष्टिनुं कथनद्वारा तेज मूळभूत प्रत्यक् ब्रह्मनो वारंवार कथनरूप अभ्यास कह्योछे २. तथा आनन्द वल्लीना अनुवाक चोथानी श्रुति. १

यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह ॥

अर्थः— मननी साथे वाणी पण जे प्रत्यक् ब्रह्मने न पामीने निवृत्त थायछे एटले शक्तिवृत्तिये करीने बोधन करी शकती नथी ए रीते प्रत्यक्षादि प्रमाणे करीने अगम्यतारूप अपूर्वता प्रत्यक् ब्रह्मने विषे कथन करीछे ३. तथा आनन्द वल्लीना अनुवाक ७ नो छेलो मंत्रः—

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयम्प्रतिष्ठां। विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति ॥

अर्थः— 'अदृश्ये' एटले सर्व विकार रहित; तथा 'अनात्म्ये' एटले त्रिविध शरीरोथी रहित; तथा 'अनिरुक्ते' एटले निर्वचनने अयोग्य जे सविशेष पदार्थ होय तेनुं निर्वचन थई शके; ब्रह्म तो निर्विशेष छे माटे निर्वचनने योग्य नहि; तथा 'अनिलयने' एटले अनाधार एवां ब्रह्मने विषे जे साधक पुरुष प्रतिष्ठा पामे एटले आत्मभाव पामे अर्थात् ब्रह्मैकात्मत्वनो साक्षात्कार करे

ते पुरुष अभय पामे एटले भयनां हेतु अविद्या अने तत्कार्यनो उच्छेद थवाथी भूमानन्दस्वरूप होयछे ए रीते अविद्या तत्कार्यनी निवृत्ति अने निरतिशय सुखनी प्राप्तिरूप फळ कथन कर्युं छे. ४. तथा उपर कहेला मंत्रनुंज उत्तरार्धः–

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति ॥

अर्थः– जे पुरुष ब्रह्म अने प्रत्यक् स्वरूपने विषे अल्पमात्र पण भेद जुवे तेने संसार भय होयछे ए रीते भेददर्शि पुरुषने भय प्रदर्शननी द्वाराये ब्रह्मात्मैकत्वनो स्तुतिरूप अर्थवाद कथन कर्योछे ५. तथा आनन्द वल्लीना पांचमा अनुवाकनी श्रुति छेल्ली–

आनन्दआत्मा ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा ॥

अर्थः– अन्नमयादि सर्वे कोशोथी आन्तर अने ते सर्वेनो अवसानरूप एवो जे निरुपाधिक आनन्दस्वरूप आत्मा तेज ब्रह्म अने ते प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्म पुच्छप्रतिष्ठारूप छे ए रीते स्थूलारुंधति न्याये अन्नमयादि कोशोथी विवेचना करीने प्रत्यक् ब्रह्मनुं प्रदर्शनरूप उपपत्ति एटले युक्ति कथन करीछे ६.

उपर कहेलां षट् लिंगोथी तथा पेहेली शिक्षा वल्लीमां चित्तशुद्धिने अर्थे उपासनानां विधानथी तथा भृगु वल्लीमां ब्रह्मविद्यानी प्राप्तिने अर्थे तप आदि साधननां विधानथी आ उपनिषद्ना सर्वे मंत्रोनुं ब्रह्मात्मैकत्वना प्रतिपादनमां तात्पर्य छे. त्यांहां श्लोकः—

सृष्ट्वाकाशादि देहावधि सकलमिदं
तत्प्रविश्यांतरस्थो यः सर्वेषामधीशो
नियमयति सदानंदचिद्रूपएकः ।
अन्नादीन्पंचकोशान्निजगुरुवचसा
संविविच्यात्मरूपं तं विद्वान्नित्यतृप्तः
खिलभयरहितोवर्त्तते सर्वभूतः॥ १ ॥

अर्थः— जे सच्चिदानंदस्वरूप आकाशथी आरंभीने देह पर्यंत सर्वे जगत्ने स्रजीने तेनी अंदर प्रविष्ट थयो छतो सर्वने नियममां राखेछे ते प्रत्यक् स्वरूप गुरुवचननां बळे अन्नादि पंच कोशोथी पर छे एवी विवेचना करीने ब्रह्मथी अभेदे जे साक्षात्कार करे ते पुरुष संसार भये रहित थयो छतो अने नित्य तृप्त छतो पूर्ण ब्रह्मरूप होयछे. १.

———

(८) ऐतरेयोपनिषद्‌ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

आसीत्प्रागेक एवेदमखिलमपि यो
यश्च खादिक्रमेणेक्षितास्त्राक्षीद्विरा-
जं तदनुसकरणं व्यष्टिदेहं सदेवम् ।
तत्राथाविश्य जीवांशत उरुभयमा-
पन्न आप्तोपदेशा द्यो ज्ञानं प्राप्यमु-
क्तस्तमखिलतनुगं केवलात्मानमीडे १

अर्थः— सृष्टिथी पूर्वे आ सर्व जगत् जे एक आत्मरूपज हतुं अने त्यार पछी जे आत्मा सृष्टिविषयक ईक्षण करीने आकाशादिना क्रमथी विराट्‌ने स्रजतो हवो; तदनन्तर ते विराट्‌ना अवयवोये करीने वागादिक करणोये सहित अने अग्न्यादि अधिदैवोये सहित एवा व्यष्टि देहने स्रजतो हवो; तदनन्तर जे आत्मा ते व्यष्टि देहमां जीवरूपे प्रवेश करीने अविद्याना वशथी अर्थात् तादात्म्य अध्यासे करीने उरुभयने एटले जन्म मरणादि संसारानर्थने पाम्यो; तदनन्तर कोई आप्त गुरुना उपदेशथी स्वरूप ज्ञानने पा-

मीने अविद्याना नाश पूर्वक मुक्त थयो एटले ब्रह्मभाव पाम्यो ते सर्व शरीरोमां अनुस्यूत एवा कैवल्ल आत्मस्वरूपनी हुं स्तुति करुंछौं. १.

आ उपनिषद् भागथी पूर्वे अपर ब्रह्मविषयक उपासना सहित एवुं कर्म चित्त शुद्धिने अर्थे कथन कर्युं, अने कर्म सहित उपासनाये करीने प्राप्य एवुं प्राणाख्य सत्य ब्रह्मरूप फल पण कथन कर्युं; त्यांहां जे प्राणाख्य सत्य ब्रह्मनी प्राप्ति तेज मोक्ष छे अने ते पण ज्ञान कर्म समुच्चयरूप साधने करीनेज प्राप्य छे एथी पर कांइ बीजु प्राप्य नथी एम केटलाएक वादियो कथन करेछे; माटे तेमना मतनां निराकरणने अर्थे अने कर्मोपासना रहित केवल ब्रह्मात्मज्ञाननां निरूपणने अर्थे आ उपनिषद् छे.

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्य-
त्किञ्चनमिषत् ॥

अर्थः– आ सर्व जगत् सृष्टिथी पूर्वे सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, क्षुत्पिपासादि सर्व संसार धर्मोथी रहित, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अजर, अमर, अभय, अद्वैत एवो जे आत्मा तद्रूपज हतुं, आत्माथी अतिरिक्त एवुं सव्यापार अथवा निर्व्यापार कांइ पण हतुं नहि.

"स ईक्षत लोकान्नुसृजा" इति

अर्थः– ते आत्मा प्राणियोना कर्म फल भोगना अधिष्ठानभूत एवा लोकोने हुं सृजुं ? ए रीते ईक्षण करतो हवो.

अनन्तर आकाशादिकना क्रमथी अंडनुं उत्पादन करीने अंभ आदिक लोकोने स्रजतो हवो; त्यार पछी समष्टि विराट् शरीरने स्रजतो हवो; त्यार पछी विराट्ना अवयवोथी इंद्रियो तथा तेमना अधिष्ठाता लोकपालोने स्रजतो हवो; त्यार पछी ते देवताओना भोगने अर्थे अल्प एवां व्यष्टि मनुष्यादि शरीरोने स्रजतो हवो; अनन्तर अग्न्यादिक देवताओ वागादि इंद्रियरूप थईने मुखादिक गोलकोमां प्रविष्ट थइ; त्यार पछी ते ईश्वर अशना पिपासानुं संयोजन करतो हवो; त्यार पछी अन्नने स्रजतो हवो; त्यार पछी ते ईश्वरे विचार्युं के "आ बधो कार्यकरणनो संघात परार्थ स्रज्यो तो खरो पण पुर स्वामि भोक्तारूप म्हारा प्रवेश विना निरर्थक छे." ए रीते ईक्षण करीने पछी मूर्द्धसीमानुं विदारण करी भोक्ता जीवरूपे पोते प्रवेश कर्यो; त्यांहां श्रुतिः– "तस्य त्रय आवसथास्त्रयाः स्वप्नाः" ते जीवना त्रण आवसथ एटले क्रीडानां स्थानको छे;

जे के (१) जागरित काळने विषे चक्षुर्गोळक; (२) स्वप्न काळने विषे मन एटले मननुं अधिकरण एवुं कण्ठ स्थान; तथा (३) सुषुप्ति काळने विषे हृदयाकाश ए त्रण्ये अवस्था स्वप्नरूपज छे; अथवा वक्ष्यमाण एवां (१) पितृ शरीर, (२) मातृ गर्भाशय अने (३) स्व शरीर ए त्रण स्थानो जाणवां. ए जीव पूर्वोक्त त्रण स्थानकोने विषे अनुक्रमे करीने आत्मभाव पामतो छतो अने स्वाभाविक अविद्याये करीने गाढ सुषुप्तिमां रह्यो छतो नहि जागतो हवो; ते जीव कोइ परम दयालु आचार्ये वेदान्तरूप भेरी नादे करीने जगाड्यो छतो भ्रान्ति सिद्ध कर्त्ता भोक्तारूप स्व आत्माने पूर्ण ब्रह्मस्वरूप जोतो हवो एटले अभेदे करीने साक्षात्कार करतो हवो एटली वात प्रथम अध्यायमां निरूपण करीछे. आखा अध्यायनो तात्पर्यार्थ ए के, सर्व जगत्ना सृष्टि, स्थिति, प्रलयोनो करनार असंसारी सर्वज्ञ एवो जे ईश्वर ते कारणनी सामग्री विनाज आकाशादिक क्रमथी सर्व जगत्ने सृजीने जीवरूपे करीने पोतेज प्रविष्ट थयो; अनन्तर 'हुंज ब्रह्म छौं' ए रीते स्व स्वरूपनो साक्षात्कार करीने मुक्त

थयो; माटे सर्व शरीरोमां एक ईश्वररूपज आत्मा छे अन्य नहि.

ते पूर्वे वर्णन कर्यो जीव अविद्याना वशथी यज्ञादिक कर्मोये करीने धूमादिक मार्ग द्वारा चंद्र लोकने पामीने पुण्य क्षयानन्तर पाछो मृत्यु लोकमां व्रीहि यवादिभाव पाम्यो छतो भक्षण करेलां ते व्रीहि यवादि अन्नथी पुरुषना शरीरमां रेतसभावने पाम्यो; अनन्तर पुरुषे स्त्रीने विषे सिंचन करवाथी जे रेतसनुं निर्गमन ते जीवनुं प्रथम जन्म एटले प्रथम अवस्था कहेवायछे; अनन्तर माताना उदरथी कुमाररूपे जे निर्गमन ते द्वितीय जन्म एटले द्वितीय अवस्था कहेवायछे; अनन्तर आयुष्नो क्षय थये छते वर्त्तमान देहनो त्याग करीने अन्य देहनुं जे ग्रहण ते तृतीय जन्म एटले तृतीय अवस्था कहेवायछे ए रीते सर्वे पण जीवो त्रण अवस्थाये करीने जन्म मरणना प्रबंधने पामता छता संसार समुद्रमां पड्याछे; माटे जे जीव त्रण अवस्थाओमध्ये जे ते कोइ अवस्थामां पण श्रुत्युक्त आत्म स्वरूपनो साक्षात्कार करे ते जीव संसार बंधनथी मुक्त थयो छतो कृतकृत्य होयछे; जेम वामदेव ऋषि माताना गर्भाशयमांज आत्मज्ञान पा-

म्यो छतो कृतार्थ थयो तेम. एटली वात बीजा अध्यायमां निरूपण करीछे. (आ अध्यायमां त्रण अवस्थानुं जे वर्णन कर्युं ते वैराग्य थये ज्ञानोत्पत्तिने अर्थे छे.)

पूर्वे अध्यायमां त्रण जन्मना निरूपणे करीने ज्ञानोत्पत्तिने अर्थे वैराग्य निरूपण कर्युं, पण पदार्थ शोधन विना वैराग्य मात्रे करीने ज्ञानोत्पत्ति थाय नहि; माटे पदार्थ शोधन पूर्वक अखंड वाक्यार्थना बोधनने अर्थे आ त्रीजो अध्याय छे.

सनकादिक अने वामदेवादिक आचार्योनी परंपराये करीने श्रुतिये द्योतन करी तथा ब्रह्मवेत्ताओनी सभामां अत्यंत प्रसिद्ध एवी अने ब्रह्म विद्यारूप साधने करीने प्राप्य एवी सर्वात्मभावरूप फलनी प्राप्तिने श्रवण करता एवा अधिकारी ब्राह्मणो वैराग्यादि साधन संपत्ति थयानन्तर ब्रह्मने जाणवानी इच्छा करता छता अने जीवभाव पर्यंत दुःखरूप संसारथी मुक्त थवाने इच्छता छता विचार पूर्वक अन्योन्य प्रश्न करेछे त्यांहां श्रुतिः—

कोयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः
स आत्मा येन वा रूपं पश्यति येन

वा शब्दं शृणोति येन वा गंधाना
जिघ्रति येन वाचं व्याकरोति येन
वा स्वादुचास्वादु च विजानाति ॥

अर्थः– वामदेव ऋषि जे आत्मानो साक्षात्कार करीने अमृतरूप थयो ते आत्मा कह्यो एटले कोण? के जेने आपणे पण उपासना करीये! (आ ठेकाणे अभेदे करीने जे अनुसन्धान ते निर्गुण उपासना जाणवी.) ए रीते जिज्ञासा पूर्वक अन्योन्य प्रश्न करता एवा ते ब्राह्मणोने पूर्वे श्रवण करेली बे श्रुतिथी जन्य एवी स्मृति थइ; शी रीते के (पूर्वोक्त श्रुतिः–)

" तम्प्रपदाभ्याम्प्रापद्यतब्रह्मेमम्पुरुषम् "

अर्थः– ते आ पुरुष शरीरने विषे अपर ब्रह्मरूप प्राण प्रवेश करतो हवो; तथा बीजी श्रुतिः–

" स एतमेव सीमानं विदार्य तया
द्वारा प्रापद्यत "

अर्थः– ते आत्मा मूर्द्धसीमानुं विदारण करीने ते द्वाराये पुरुष शरीरमां प्रवेश करतो हवो.

ए रीते बन्ने श्रुतिनां प्रामाण्यथी प्राण अने जीव ए बन्नेने विषे आत्मतत्त्वनी एटले आत्मा

कोने कहेवो? एवी शंका प्राप्त थई; केमके ते बन्ने विना पण शरीरनी स्थिति थइ शके नहि एवी शंका थयानन्तर विचार कर्यो के, (उपनिषद्ना आरंभमां श्रुतिः–)

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्"

ए श्रुतिये विज्ञेय स्वरूप एकज आत्माना प्रतिपादन करवानो उपक्रम कर्योछे माटे उपास्य आत्मा एकज होवो जोइए ए रीते विचार करीने पाछो प्रश्न कर्यो के, ते एक उपास्य आत्मा कह्यो? पछी पाछो विचार करवाथी विशेष बुद्धि उत्पन्न थई; शी रीते के, आ शरीरमां उपलब्धा एटले द्रष्टा चक्षुरादि करण संघाते करीने रूपादि विषयोनी उपलब्धि करेछे तेमां जे प्राणाख्य मन एज चक्षुरादि संघातरूपे करीने रह्युंछे; माटे करण संघातरूप प्राणाख्य मनने करणरूप एटले परार्थ होवाथी ते उपास्य आत्मारूप नहि; किंतु मूर्द्धसीमा द्वारा प्रविष्ट थयो जे आत्मा तेज उपलब्धा होवाथी उपास्य छे ए रीते निश्चय करता हवा. मनरूप उपाधिमां रहेला ते उपलब्धा प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्मनी उपलब्धिने अर्थे वक्ष्यमाण एवी अन्तःकरणनी वृत्तियो जाणवी. तात्पर्य ए के यद्यपि ब्रह्मथी अभिन्न साक्षीचैतन्यने अविषय

होवाथी तेनुं ज्ञान साक्षात् इदंताये करीने थइ शके नहि; तो पण अन्तःकरणनी संज्ञानादिक वृत्तियोनुं प्रकाशक होवाथी ए वृत्तिद्वाराये तेनुं ज्ञान संभवेछे.

ते वृत्तियोनां नाम—

'संज्ञान' एटले संज्ञप्ति अर्थात् चेतनभाव के जेणे करीने प्राणी चेतन कहेवायछे ते.

'आज्ञान' एटले आज्ञप्ति अर्थात् ईश्वरभाव.

'विज्ञान' एटले लौकिक चतुःषष्टि कलादिकनुं परिज्ञान.

'प्रज्ञान' एटले प्रज्ञप्ति अर्थात् तात्कालिक ज्ञान.

'मेधा' एटले ग्रंथनी धारणा करवानुं सामर्थ्य.

'दृष्टि' एटले इंद्रियद्वारा सर्व विषयोनी उपलब्धि.

'धृति' एटले धारण अर्थात् जे वृत्तिये करीने खेद पामेलां इंद्रियोने थोभावी राखीये ते.

'मति' एटले मनन.

'मनीषा' एटले मनन्ने विषे स्वतंत्रपणुं.

'जूति' एटले रोगादिकथी चित्तने दुःखी थवापणुं.

'स्मृति' एटले स्मरण.

'संकल्प' एटले रूपादिकनो नील पीतादि भावे करीने संकल्प करवो ते.

'क्रतु' एटले अध्यवसाय (निश्चय).

'असु' एटले प्राणन अपाननादिरूप जीवन क्रिया निमित्त जे वृत्ति ते.

'काम' एटले दूर रहेला विषयनी आकांक्षारूप तृष्णा.

'वश' एटले स्त्री संपर्कादिकनो अभिलाष.

ज्ञप्तिमात्र उपलब्धा साक्षिस्वरूप ब्रह्मचैतन्यनी उपाधिभूत एवी जे पूर्वोक्त सर्व वृत्तियो ते ज्ञापक एटले जणावनार होवाथी साक्षिचैतन्यनां नामरूप छे एटले बोधकरूप छे; एज ब्रह्मस्वरूप आत्मा प्राणादिक उपाधियोमां प्रतिबिम्बरूपे प्रविष्ट थयो छतो हिरण्यगर्भ, वैराज, इंद्र, अग्नि इत्यादिरूप कहेवायछे; तथा सर्व शरीरोनां उपादानरूप एवां पृथिव्यादि पंच भूतो अने स्थावर जंगमात्मक अंडजादि चतुर्विध प्राणि विशिष्ट एवुं सर्व पण जगत् प्रज्ञानेत्र छे ए-

टले साक्षिचैतन्यनी सत्तास्फूर्त्तिथीज सत्तास्फूर्त्तिमान् छे; तथा उत्पत्ति, स्थिति, लय, काळने विषे प्रज्ञप्तिस्वरूपने विषेज प्रतिष्ठित छे एटले प्रज्ञप्तिने आश्रयण करीने रह्युंछे, अने ए प्रज्ञप्तिस्वरूपज सर्वनुं अधिष्ठानभूत छे; माटे "प्रज्ञानं ब्रह्म" एटले ते प्रज्ञप्तिस्वरूप साक्षिचैतन्य सर्व उपाधियोथी विनिर्मुक्त थयुं छतुं एक ब्रह्मरूपज छे ए रीते जे कोइ पुरुष प्रज्ञप्तिस्वरूप प्रत्यगात्माथी अभिन्न ब्रह्मनो साक्षात्कार करे ते अमृतरूप होयछे.

आ उपनिषद्मां "आत्मा वा०" ए वाक्ये करीने आ जगत् सृष्टिथी पूर्वे एक निर्विशेष आत्मस्वरूपज हतुं ए रीते उपक्रम करीने अध्यारोपापवाद न्याये करीने "प्रज्ञानं ब्रह्म" ए अन्तिम वाक्ये करीने जे निर्विशेष साक्षीचैतन्यस्वरूप ते ब्रह्मरूपज छे ए रीते प्रत्यक् स्वरूप अने ब्रह्मनी एकतानां निरूपणे करीने उपसंहार कर्योछे; माटे आ उपनिषद्ना सर्वे मंत्रोनुं ब्रह्मात्मैकत्वना प्रतिपादनमां तात्पर्य छे. त्यांहां श्लोकः—

योलोकाँल्लोकपालान्सकलमपि पु-

रा भोग्यजातं हि तेषां सृष्ट्वान्तः संप्रविश्य स्थिरचरमखिलं प्रेरयत्यांतरस्थः । दृष्ट्वा नात्रेषदन्यत्सकलजगदधिष्ठानरूपोहमेकः प्रज्ञानं ब्रह्मयेनाधिगतमिति सनावाप्तकामोमृतः स्यात् ॥ १ ॥

अर्थः— जे लोकने तथा लोकपालोने तथा सर्व एवां भोग्यजातने स्रजीने तेनी अंदर प्रवेश करीने स्थिरचरात्मक सर्वने प्रेरेछे एटले सव्यापार करेछे, ते प्रत्यगात्मरूप हुंज सर्व जगत्नो अधिष्ठानरूप ब्रह्म छौं, म्हारा स्वरूपथी किञ्चिन्मात्र पण अन्य नथी ए रीते " प्रज्ञानं ब्रह्म" एटले प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्म जेणे साक्षात्कार कर्युं होय ते प्राप्त थयाछे सर्व कामो जेने अर्थात् पूर्ण काम एवो छतो अमृतरूप होयछे. १

---

(९) छांदोग्योपनिषद्ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

नमो जन्मादिसंबन्धबन्धविध्वंसहे-

तवे । हरये परमानंद वपुषे परमा-
त्मने ॥ १ ॥

अर्थः— जन्म मरणादिकना संबंधरूप बंधने विध्वंस करवामां हेतुभूत एवा अने परम आनन्द छे स्वरूप जेनुं एवा परमात्मारूप श्री हरिने नमस्कार! १

आ छांदोग्य उपनिषद्मां प्रथम पांच अध्याये करीने अन्तःकरणनी शुद्धिनां संपादक होवाथी वस्तुतत्त्वनां अवभासक छे माटे ॐकार, साम, अग्नि आदिकनां उपासनो कथन कर्यां; ते मध्ये त्रीजा अध्यायमां "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान्" (आ सर्व जगत् ब्रह्म मात्रज छे, केमके तज्ज, तल्ल अने तदन् छे एटले ब्रह्मथीज उत्पत्ति, स्थिति, लय पामनारुं छे.) ए रीते कथन करेलुंछे. ए जगत्ना ब्रह्मथी उत्पत्ति, स्थिति, लय, शी रीते थाय, तेनो विस्तार कहेवाने अर्थे आ छठ्ठा अध्यायनो आरंभ छे.

उद्दालक, श्वेतकेतुना संवाद द्वाराये करीने श्रुतिः—

"उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं-

श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञा-
तमिति ”

अर्थः—“ हे श्वेतकेतो! शास्त्र द्वाराये श्रवण करेलां जे एक वस्तुए करीने अन्य अश्रुत पण श्रुत होयछे; तथा तर्कथकी मनन करेलां जेणे करीने अन्य सर्व अमत पण मत होयछे; तथा जे एकनां विज्ञाने करीने अन्य अविज्ञात पण विज्ञात होयछे ते आदेशने एटले शास्त्र आचार्यनी उक्तिथी गम्य एवुं वस्तु तें आचार्यने पुछयुं हतुं?” त्यारे शिष्ये कह्युं के, “ हे भगवन्! ए वात केम संभवे!” एवी शिष्यनी आशंका पूर्वक गुरुए कह्युं त्यांहां श्रुतिः—

“ यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं
मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं वि-
कारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम् ।
यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं
लोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं वि-
कारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ।
यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन स-
र्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं

विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यम् "

अर्थः–" हे सोम्य! जेम एक मृत्तिकानो पिंड जाण्याथी घट शरावादि सर्व पण मृन्मय जाणवामां आवेछे तेमां वाणीए करीने आरभ्य-माण एवुं जे नाम ते विकारमात्र छे, वास्तवथी तो मृत्तिकाज सत्य छे; वळी हे सोम्य! जेम एक सुवर्णनो पिंड जाण्ये छते कटक, कुंडलादि सर्व पण कार्य सुवर्णमय जाणवामां आवेछे तेमां जे वाणीये करीने आरभ्यमाण कटक, कुंडल इत्या-दि नाम ए तो विकारमात्र छे, किंतु सुवर्णज सत्य छे; वळी हे सोम्य! जेम एक लोह खण्ड जाण्ये छते क्षुर, असि इत्यादि सर्व पण कार्य लो-हमय जाणवामां आवेछे तेमां जे वाणीये करी-ने आरभ्यमाण क्षुर, असि इत्यादि नाम ए तो विकार छे किंतु लोहज सत्य छे."

इत्यादि दृष्टान्ते एक विज्ञाने सर्वनुं विज्ञा-न उपपादन करीने दार्ष्टान्तिकमां निरूपण करवा माटे–

" सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमे-वाद्वितीयम् "

अर्थः– " हे सोम्य ! आ सर्व जगत् सृष्टिथी पूर्वे सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित अने सूक्ष्म, निर्विशेष, सर्वगत, एक, निरंजन, निरवयव, विज्ञानस्वरूप, सर्व वेदान्तोथी गम्य एवुं जे सन्मात्र स्वरूप तन्मात्रज होतुं हवुं."

ए रीते सर्व भेद रहित एवां सद्वस्तुनो उपक्रम करीने अनंतर " तद्धैक आहुः" ए वाक्ये असद्वादनी आशंका करीने पछी " कथमसतः सज्जायेत" ए वाक्ये ते असद्वादनुं निराकरण करीने पछी सद्रूप ब्रह्मने विषे विजातीय एवा जडना भेदनो अभाव उपपादन करवा माटे " तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय " इत्यादि वाक्ये करीने आकाशादि सर्व जड वर्गनी ते ब्रह्मथकीज सृष्टि कहीने पछी सजातीय भेदना निराकरणने अर्थे तेज ब्रह्मनो जीवरूपे प्रवेश कथन करीने अनंतर त्रिवृत्करण पूर्वक नाम रूपनी सृष्टि कथन करीने पछी ब्रह्मने विषे स्वकार्यभूत आकाशादिकथकी भेदनी निवृत्तिने अर्थे श्रुतिः–

" यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्या-

पागादग्नेरग्नित्वं वाचारंभणं विकारो नामधेयं त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम् ''

अर्थः— लोकमां प्रसिद्ध एवुं अग्निने विषे जे रोहितरूप ते अपंचीकृत एवां तेजनुं रूप छे; तथा जे शुक्ल ते अपंचीकृत एवी अप्नुं रूप छे; अने जे कृष्ण ते अपंचीकृत एवी अन्नात्मक पृथ्वीनुं रूप छे ए प्रमाणे सूर्य, चंद्र, विद्युत्, देव, मनुष्य विगेरेमां विवेक कर्ये छते अग्न्यादि सर्वेनुं वाचारंभण विकाररूप नाममात्र अग्न्यादिपणुं निवृत्त थई गयुं; किंतु त्रणज रूप सत्य छे.

हवे ए त्रण्ये रूपोने पण असत् जणाववाने अर्थे तथा ते त्रण्येनुं मूल सत्स्वरूप देखाडवाने अर्थे श्रुतिः—

"तस्य क्व मूलं स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिःसोम्यशुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छतेजसासोम्यशुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छसन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः"

अर्थः— श्वेतकेतुए प्रश्न कर्यो के "हे गुरो! शरीररूप शुङ्गनुं एटले कार्यनुं मूल कोण?" तेना उत्तरमां "अन्न एटले पृथ्वी एनुं मूल छे; अने अन्नरूप शुङ्गे करीने तेनुं मूळ अप्‌ने जाण; तथा अप्‌रूप शुङ्गे करीने तेनुं मूळ तेजने जाण; तथा तेजरूप शुङ्गे करीने एकमेवाद्वितीय परमार्थ सत्य सदात्मरूप मूलने जाण. हे सोम्य! आ स्थावर जंगमात्मक सर्व प्रजाओ 'सन्मूलाः' एटले सत्स्वरूप छे मूल कारण जेमनुं एवी, अने स्थितिकालने विषे पण 'सदायतनाः' एटले सत्स्वरूप छे आश्रय जेमने एवी, अने अंतने विषे 'सत्प्रतिष्ठाः' एटले सत्स्वरूप छे लयस्थान जेमनुं एवी छे."

ए रीते आकाशादि सर्व जगत्‌नुं मिथ्यापणुं कथन कर्या पछी देह, वाक्, प्राण अने मन ए चारेने अन्नादिकनां कार्य होवाथी अनात्मापणुं कथन करीने (श्रुतिः—)

"स य एषोणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि"

अर्थः— "ते ब्रह्मस्वरूप सूक्ष्म तम छे, अने आ सर्व जगत् ब्रह्मात्मकज छे, अने ते ब्रह्मस्वरू-

पज सत्य छे तथा तेज साक्षी आत्मारूप छे; अने हे श्वेतकेतो! ते साक्षी आत्माथी अभिन्न सत् ब्रह्मस्वरूपज तुं छो." इत्यादि वाक्ये श्वेतकेतुने द्वारभूत करीने मुमुक्षु एवा जीवोने ते ते आशंकाओनुं निराकरण पूर्वक सूक्ष्म, सर्वात्मक, अद्वितीय, परमार्थ सत्य, आत्माथी अभिन्न ब्रह्मने नव वार गुरु उपदेश करता हवा; जेमके "प्रयतो वाङ्मनसी" इत्यादि वाक्ये करीने "सुषुप्ति तथा उत्क्रांति आदि अवस्थाने विषे जीव जे सत्‌रूपे संपन्न होयछे ते सद्ब्रह्म तुं छो" ए रीते पिताये उपदेश कर्ये छते (१). "सुषुप्तिने विषे सत्संपन्न थइ प्रजाओ ते ब्रह्मात्मक सत्स्वरूपने केम जाणतीओ नथी?" ए रीते श्वेतकेतुने आशंका थये छते "यथा सोम्य मधुं मधुकृतः" इत्यादि वाक्ये करीने "जेम मधुकरोये आहरण करेला अने मधुत्वे करीने निष्पन्न थयेला नाना वृक्षना रसना समुदायनी पेठे विवेक करवाने अशक्य होवाथी सुषुप्त्यादिकने विषे सत्स्वरूपनी प्राप्ति छतां पण ते सद्रूप ब्रह्म जणातुं नथी" ए रीते शंकानुं निराकरण करीने एज एटले "तत्त्वमसि" ए वाक्यमां कहेलां तत्त्वनो उपदेश करीने (२).

अनंतर "सुषुप्त्यादिकने विषे तो करणना अभावथी अविज्ञान हो, पण सुषुप्तिथी उठ्या पछी अमे सत्स्वरूपथी उठ्या एम केम जाणता नथी? " एवी आशंका थये छते " इमाः सोम्यनद्यः" इत्यादि वाक्ये करीने " जेम मेघोये समुद्रथी आकर्षण करीने विसर्जन करेली नदीओनुं रसानन्य होवाथी, समुद्रथी आवागमन दुर्विज्ञेय छे तेमज ब्रह्मथी उत्थित थयेला संसारीओने अमे सत्संपन्न थइने उत्थित थया एवुं ज्ञान होतुं नथी" ए रीते शंकानो परिहार करीने (३). पछी सुषुप्तिने विषे जीवने करणनो अभाव थये छते समुद्र वीच्यादिकनी पेठे नाशनी शंका थये छते " अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य" इत्यादि वाक्ये करीने " जेम वृक्षनो कुठारादिके करीने छेद कर्ये छते पण रसस्रावी होवाथी सजीवपणुं छे तेमज सुषुप्तिने विषे पण देहमां रुधिरनां दर्शनथी जीवनो नाश नथी." ए रीते शंकानो परिहार करीने पूर्वोक्त अर्थनुंज स्थापन कर्ये छते(४).पछी " अति सूक्ष्म एवां ब्रह्मथकी स्थूल जगत्नी उत्पत्ति केम थाय?" एवी आशंका थये छते " न्यग्रोधफलमत " इत्यादि वाक्ये करीने " जेम वटधानामां अंतर्गत सूक्ष्म बीजरूपथी म-

हा वटनी उत्पत्ति होयछे तेमज सूक्ष्म सद्ब्रह्मस्वरूपथी जगत्नी पण उत्पत्ति संभवे" ए रीते शंकानुं निराकरण करीने पाछो पूर्वोक्तज अर्थ स्थापन कर्ये छते(५). अनंतर "जगत्नुं मूलकारण एवुं सत् ब्रह्म उपलभ्यमान केम थतुं नथी?" एवी आशंका थये छते "लवणमेतदुदकेवधाय" इत्यादि वाक्ये करीने "जेम जलमां प्रक्षेप करेला लवणखण्डनो नेत्रे करीने अनुपलंभ छे एटले अदर्शन छे तो पण जलनुं पान करवाथी लवणनो सद्भाव निश्चय थायछे तेमज चक्षुरादि इंद्रिओए करीने अदृश्य एवां ब्रह्मनो कार्यरूप लिंगे करीने सद्भाव निश्चय थायछे" ए रीते शंकानुं समाधान करीने पूर्वोक्त अर्थनोज उपदेश कर्यो (६). तदनंतर "ब्रह्मना साक्षात्कारने विषे उपाय कोण?" एवी आशंका थये छते "यथा सोम्यपुरुषं गंधारेभ्यः" इत्यादि वाक्ये करीने "गंधार देशमांथी चोरोये कोइ पुरुषने लइ जइने अरण्यमां मेल्यो अने जेने आंखे पाटा बांध्या छतां आक्रंदन करते छते ते श्रवण करीने कोइ एक दयालुए तेना पाटा छोडीने 'आ अमुक दिशा तरफ गंधार देश छे त्यांहां तुं जा' एवो उपदेश कर्ये छते ते पुरुष त्यांहां जायछे; तेमज आ-

चार्ये करेला उपदेशथी अविद्यानी निवृत्ति अने ब्रह्मनो साक्षात्कार होयछे" एम कहीने एज तत्त्वनो उपदेश कर्यो (७). तदनंतर "ते विद्वान् पुरुष कहे प्रकारे ब्रह्मरूप संपन्न होय ?" एवी अपेक्षा थये छते "पुरुषं सोम्योपतापिनं" इत्यादि वाक्ये करीने "जेम ज्वरादि उपद्रवे पीडित अने मुमूर्षु एवा पुरुषने ज्यांहां सुधी वाक् मनने विषे, मन प्राणने विषे, प्राण तेजने विषे तथा तेज परदेवताने विषे संपन्न थयुं नथी, त्यांहां सुधी तेने भान होयछे, पछी जाणतो नथी; तेमज विद्वान् पण पूर्वोक्त वागादिना क्रमे करीने परदेवताने विषे संपन्न होयछे; तेमां विशेष ए के जे अविद्वान् ते उपर प्रमाणे सत्संपन्न थया छतां पण उत्थान पामीने पाछो व्याघ्रादिरूप होयछे, अने विद्वान् तो सत्संपन्न थइने पुनरावृत्ति पामतो नथी" एम कहीने एज तत्त्वनो उपदेश कर्यो (८). तदनंतर "मरिष्यमाण अने मोक्षमाण बेउ पण सत्संपन्न थायछे त्यारे अविद्वान्नो पेठे विद्वान् पण पुनरावृत्ति केम न पामे ?" एवी आशंका थये छते "पुरुषं सोम्योतहस्तगृहीतमानयति" इत्यादि वाक्ये करीने "जेम चो-

री करेल तेने तथा न करेल ते बंनेने हाथ बां
धीने राजपुरुषो राजानी पासे लेइ गया अने
कह्युं के 'आ बेउ चोर छे' त्यारे ते बेउ बोल्या के
' अमे चोरी करी नथी ' ते उपर तेनो न्याय क
रवा राजाये ते बंनेंना हाथमां तप्त परशु आप्यां
तेमां जे खोटुं बोलनार ते दग्ध थयो अने जे
सत्य बोलनार ते दग्ध थयो नहि तेमज अनात्मा
देहादिकने विषे आत्मताना अभिमानवाळो अनृ-
ताभिसन्धि जे अविद्वान् पुरुष ते पुनरावृत्ति पामे
अने देहादिक अनात्माने विषे सत्यत्वाभिमान र-
हित सत्यब्रह्माभिसन्धि जे विद्वान् पुरुष ते पुन-
रावृत्ति पामतो नथी." (९).

"जे सत् आत्मस्वरूपना अभिसंधानथी मोक्ष
अने अनभिसंधानथी बंध छे; तथा जे सदात्म-
स्वरूप जगतनुं मूल छे; तथा सर्व पण जगत्
यदात्मक छे एटले जे सत्स्वरूप छे; वळी जे
सत्स्वरूप, अमृत, अभय, शिव, अद्वितीय छे
एज सत्य छे; अने हे श्वेतकेतो! ते सदात्म-
स्वरूप तुं छो" ए रीते उद्दालक मुनि श्वेतकेतु
पुत्रने सर्व मुमुक्षुओना हितने अर्थे तत्त्वोपदेश
करता हवा. एटली वात छट्ठा अध्यायमां छे.

आ छट्ठा अध्यायमां मूलभूत परम तत्त्वनो

उपदेश कर्यो, तो पण अर्वाचीन एटले पाछलथी थनारां एवां विकार तत्त्वोनो निर्देश कर्यो नहि एटले देखाड्यां नहि; माटे नामथी आरंभीने प्राण पर्यंत विकार तत्त्वोने क्रमथी निर्देश करीने तद्वाराथी पण शाखाचंद्र न्याये भूमाख्य निरतिशय तत्त्वनो साक्षात्कार कराववा माटे आ सातमा अध्यायनो आरंभ.

नारद मुनि चारे वेद, षट्शास्त्र, इतिहास, पुराणादि विगेरे सर्व विद्याओनुं अध्ययन कर्ये छते पण शोकातुर रह्या, माटे तेनी निवृत्तिने अर्थे भगवान् सनत्कुमारने उपसन्न (शरणे) थया अने प्रश्न कर्यो त्यांहां श्रुतिः—

"सोहं भगवो मंत्रविदेवास्मि नात्मवित् श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति ॥"

संक्षेपार्थः— "हे भगवन्! उपर प्रमाणे सर्व विद्याओनुं अध्ययन कर्ये छते पण म्हारो शोक निवृत्त थयो नहि माटे ते शोकनो पार उतारो." तेना उत्तरमां सनत्कुमारे कह्युं त्यांहां श्रुतिः—

"नामयाऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थः"

"इत्यादि तें अध्ययन करेलुं जे ऋग्वेदादि नाम तेनेज ब्रह्मरूप जाणीने उपासना कर! प्रतिमाने विषे विष्णुनी पेठे." पछी नारदे कह्युं के "नामथी पण जे अधिक होय ते कहो?" तेना उत्तरमां सनत्कुमारे "वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, अप्, तेज, आकाश, स्मर, आशा, प्राण" ए रीते प्राणान्त सर्व विकारोनो ते ते फल सहित निर्देश कर्ये छते, नारद प्राणनेज सर्वथी श्रेष्ठ अने आत्मस्वरूप जाणीने पोताने विषे कृतार्थता मानतो छतो उपराम (प्रश्न करवाथी विराम) पाम्यो. तदनंतर अनृत ब्रह्मना विज्ञाने करीनेज परितुष्ट एवा शिष्य नारदने प्राणने विषे आत्मत्वना आग्रहथी प्रच्यावन करता (छोडावता) छता सनत्कुमारे कह्युं के "हे शिष्य! प्राण तो नामादिनी अपेक्षाये श्रेष्ठ छे, परंतु ते प्राणथी अधिक तो सत्य छे माटे ते जाणवुं जोइए." त्यारें नारदे कह्युं के "ए सत्यनो उपदेश करो!" पछी सनत्कुमारे उत्तर कह्यो के "जे विज्ञानवान् एज स-

स्यने कहेछे माटे विज्ञान जाणवा योग्य छे." ए रीते प्रश्नोत्तररूपे "विज्ञानथी अधिक मनन अने तेथी अधिक श्रद्धा, तेथी अधिक निष्ठा, तेथी अधिक कृति (इंद्रियोनुं संयमन अने चित्तनी एकाग्रता) तेथी पण अधिक सुख छे; केमके निरतिशय सुख म्हारे जरूर पामवुं एम ज्यारे माने त्यारेज ते कृतिने विषे प्रवृत्त थाय." त्यारे नारदे प्रश्न कर्यो के "ए निरतिशय सुखनो उपदेश करो!" तेना उत्तरमां गुरुए कह्युं के "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति" (जे भूमा एज निरतिशय सुखरूप छे, अने अल्पने विषे सुख नथी.) माटे "भूमानुं स्वरूप जाणवुं जोइए." पछी तेनो प्रश्न कर्ये छते उत्तरमां सनत्कुमारे कह्युं त्यांहां श्रुतिः—

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदिवा न महिम्नीति" ॥ १ ॥

अर्थः– "जे स्वरूप तत्त्वने विषे अन्य द्रष्टा अन्य करणे करीने अन्य दृष्टव्यने जोतो नथी; तथा अन्य श्रोता अन्य करणे करीने अन्य श्रोतव्यने श्रवण करतो नथी; तथा अन्य विज्ञाता अन्य करणे करीने अन्य विज्ञेयने जाणतो नथी ते भूमा; अर्थात् लोक प्रसिद्ध दर्शन श्रवणादिकनो जे अविषय व्यापक आनंद स्वरूप ते भूमा; तात्पर्य के जे तत्त्वने विषे सांसारिक कोइ पण व्यवहार नथी ते भूमा; अने जे अविद्या विषयने विषे अन्य अन्ये करीने जुवेछे, श्रवण करेछे तथा जाणेछे ते अल्प (अविद्या कालने विषे होनारूं) माटे जे भूमा एज अमृतरूप छे अने जे अल्प ते मर्त्यरूप छे, अने ए भूमस्वरूपज त्हारो आत्मा छे" ए रीते आत्माथी अभिन्न ब्रह्मनो उपदेश करवाथी नारदनो शोक टाळीने विराम पाम्या.

यद्यपि दिक्, देश, काल आदि भेदे रहित एवुं ब्रह्म "सदेव सोम्येदम्" "एकमेवाद्वितीयम्" "आत्मैवेदं सर्वम्" इत्यादि वाक्ये करीने छठ्ठा अने सातमा अध्यायने विषे दर्शावी निश्चय कराव्युं; तथापि मंद बुद्धिओनी देशकाळादि भेद विशिष्ट एवी बुद्धि सहसा पर-

मार्थ स्वरूपने विषय करी शके नहि, अने ते स्वरूप जाण्या विना पुरुषार्थनी सिद्धि पण थाय नहि, माटे तेनो निश्चय कराववाने अर्थे हृदयपुंडरीक प्रदेशने विषे सदात्मानो उपदेश करवाने अर्थे, तथा आत्मतत्त्व यद्यपि निर्गुण छे तो पण मंदबुद्धिओने गुणवाळुं कहेवुं एज युक्त छे वास्ते सत्यकामादि गुणवत्त्व कहेवाने अर्थे, वळी ब्रह्मचर्यादि साधनोना विधानने अर्थे, आ आठमा अध्यायनो आरंभ छे.

आ विकारी शुङ्ग एटले कार्यरूप एवा देहने विषे नाम रूपना व्याकरणने अर्थे जे सदाख्य ब्रह्मतत्त्व ते जीवात्मारूपे करीने प्रविष्ट थयुं ए रीते छट्ठा अध्यायमां कह्युंछे; माटे "उपसंहार कर्यांछे करणो जेमणे एवा अने बाह्य विषयोथी विरक्त तथा विशेषे करीने ब्रह्मचर्यादि साधने युक्त एवा अने सत्यकामादि गुण युक्त ब्रह्मनुं ध्यान करनारा एवा अधिकारीओने हृदयपुंडरीकने विषेज सदात्मस्वरूप उपलभ्यमान थायछे." ए रीते " अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरेदहरम् "इत्यादि श्रुति वाक्योये बोध कर्यो, तेनाज दृढीकरणने अर्थे इंद्र विरोचननी आख्यायिकाः– (श्रुति.)

"एष आत्माऽपहतपाप्माविजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः"

अर्थः— 'अपहतपाप्मा' एटले धर्म अधर्मारव्य पापे रहित अने 'विजरः' एटले जरा रहित, तथा 'विमृत्युः' एटले मृत्यु रहित, तथा 'विशोकः' एटले इष्टना वियोगथी जन्य एवा मनना संतापे रहित, तथा 'विजिघत्सः' एटले अशननी इच्छाये रहित, तथा 'अपिपासः' एटले पाननी इच्छाये रहित, तथा 'सत्यकामः' एटले सत्य छे काम जेना, तथा 'सत्यसंकल्पः' एटले सत्य छे संकल्प जेनो एवा आत्मानुं स्वरूप इंद्र अने विरोचनना बे अनुचरो ब्रह्मसभामां हता तेमणे ब्रह्माना मुखथी श्रवण करीने इंद्रसभामां तथा विरोचनसभामां कही देखाड्युं तेने परोक्षताये श्रवण करीने इंद्रे अने विरोचने, ते आत्मस्वरूपना अपरोक्षज्ञानने अर्थे प्रजापतिने शरणे जइने आत्मवस्तुनो प्रश्न कर्यो; अनन्तर प्रजापतिये बन्नेने बत्रीश वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य पाळवानुं कह्युं; तेम कर्यानंतर आत्मानो उपदेश कर्यो त्यांहां श्रुतिः—

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आ-
त्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति ॥

अर्थः– "जे आ अक्षिने विषे पुरुष देखायछे एज आत्मा अने अमृत, अभय ब्रह्म एज छे."

ए उपदेश उपरथी बन्ने जणाये विचार करीने छायापुरुषनेज आत्मा जाणीने तेनी दृढताने अर्थे प्रश्न कर्यो के "अक्षिमां, जलशरावमां अने आदर्शमां जे छायापुरुष देखायछे तेमां आत्मा कह्यो ?" तेना उत्तरमां कह्युं के "वस्त्रालंकार धरीने पछी जल शरावादि विगेरेमां जुवो, शी रीते देखायछे ?" पछी ते प्रमाणे करीने जोयुं, अने कह्युं के "वस्त्रालंकार सहित छायापुरुषने जोइए छीए." त्यारे प्रजापतिये कह्युं के "एज तमारो आत्मा." एवुं सांभळी देहनेज आत्मा जाणीने गया; तेमां विरोचने तो बीजो विचार नहि करतां पोतानी सभामां जइने सर्व असुरोने "देहज आत्मा छे." एवो उपदेश कर्यो.

इंद्रे मार्गमांज विचार कर्यो के "बिंबरूप देहने विषे वस्त्रालंकारादि धर्ये छते छायापुरुषमां पण ते देखायछे; तथा बिंबने विषे अंधत्व, काणत्व, खंजत्वादि जणाते छते प्रतिबिंबमां पण जणायछे; माटे एवो देह अमृत, अजर, अभयरूप

आत्मा शी रीते कहेवाय ? " एम जाणीने ब्रह्मा पासे पाछो आवी प्रश्न कर्यो; त्यारे " बत्रीश वर्ष सुधी ब्रह्मचर्य पाळीने आव." ते कहेवा प्रमाणे करीने इंद्र आव्यो; त्यारे ब्रह्माये कह्युं के " जे स्वप्नमां पुरुष छे तेने आत्मा जाण. " पछी ते उपर पण विचार करीने तेमां पण दोष जोयो के " रोदन तथा दुःखित्वादि स्वप्न पुरुषमां जणायछे, माटे ते पण आत्मा संभवे नहि. " त्यार पछी फरीथी पण बत्रीश वर्ष ब्रह्मचर्य पळाव्या नंतर ब्रह्माये कह्युं के " सुषुप्तिमां जे पुरुष स्वप्नने नथी जाणतो ते आत्मा जाण." ते उपर विचार करीने दोष जोयो के " ए सुषुप्त पुरुष ते काळे आ हुं छौं एम जाणतो नथी, वळी बीजा कोइ भूतोने पण जाणतो नथी, माटे ए सुषुप्ति पुरुष पण आत्मा संभवे नहि." तदनंतर पांच वर्ष ब्रह्मचर्य पळावीने ब्रह्माये कह्युं के " हे इंद्र ! जे आ मृत्युग्रस्त शरीर ते तो आत्मानुं अधिष्ठान (भोगायतन) छे, अने आत्मा तो अमृतरूप छे, तेने प्रिय अप्रियादिकनो स्पर्श नथी; ए आत्मा कोइ गुरुए बोध पमाड्यो छतो आ शरीरथी समुत्थान पामीने एटले देहथकी पोतानुं स्वरूप विलक्षण जाणीने देहात्मभावनानो

त्याग करी स्वयंज्योतिरूपे अभिनिष्पन्न होयछे; एज आत्मा अक्षि आदिक सर्व इंद्रियोने विषे पण द्रष्टारूप छे, अने अक्षि आदिक इंद्रियो एनां करणरूप छे; अने रूपादिक सर्वे विषयरूप एटले दृश्य छे ए रीते द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप त्रिपुटिये करीने तेथी विलक्षण शुद्ध सदात्मस्वरूप लक्ष करावीने ब्रह्मा उपराम पाम्या.

आ उपनिषद्‌ना तात्पर्यार्थनो श्लोकः—

मृद्रूपे ज्ञात एतत् घटमुखमखिलं
तज्जमस्मान्न भिन्नं तद्वच्छ्रीदेशिके-
नानुभवति सततं तत्त्वमस्येवमुक्तः।
यस्मादाकाशमुख्यं भवति जगदिदं
ब्रह्मतच्चाहमस्मीत्येतन्मत्तो न भिन्नं
स भवति मनुजो ब्रह्म न ब्रह्मवेत्ता॥१॥

अर्थः— जेम मृत्तिकानुं रूप जाण्ये छते तेथी उत्पन्न थयेला घट शरावादि सर्व पदार्थो मृन्मात्र जणायछे; भिन्न जणाता नथी; तेमज श्री आचार्ये "तत्त्वमसि" (ते शुद्ध ईश्वरज तुं छो) ए प्रकारे उपदेश कर्ये छते, जे थकी आकाशादि सर्व जगत् उत्पन्न होयछे ते ब्रह्म हुंज

छौं, अने कार्यरूप सर्व जगत् पण हुंज छौं; म्हा-
राथी भिन्न किञ्चिन्मात्र नथी ए रीते प्रत्यगभिन्न
ब्रह्मस्वरूपनो जे साक्षात्कार करे ते ब्रह्मरूपज
होयछे, ब्रह्मवेत्ता नहि. १

---

(१०) बृहदारण्यकोपनिषद्ना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

यदविद्यावशाद्विश्वं दृश्यते रशनाहिवत्। यद्विद्यया च तद्धानिस्तं वंदे पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥ नमस्त्रय्यन्तसंदोहसरसीरुहभानवे। गुरवे परपक्षौघध्वान्तध्वंसपटीयसे ॥ २ ॥

अर्थः– जेना अज्ञानना वशथी रज्जुने विषे भुजंगनी पेठे आ सर्व विश्व सत्य जेवुं देखायछे, अने जेनां ज्ञानथी भ्रमात्मक विश्वनी हानि थायछे ते पुरुषोत्तम(परमात्मा)ने वंदन करुं छौं. १

वेदान्त वाक्योनां समूहरूप कमलोने प्रकाश करवामां सूर्यरूप, अने वादियोना पक्षरूप अंधकारना समूहनो ध्वंस करवामां अत्यंत समर्थ एवा श्री गुरुने नमस्कार करुंछौं. २

आ वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषत् संसारथी मुक्त थवाने इच्छता एवा मुमुक्षुओने संसारनी हेतुभूत अविद्या अने तत्कार्यनी निवृत्तिमां मुख्य साधनभूत एवी ब्रह्मात्मैकत्व विद्यानी प्रतिपत्ति एटले प्रतिपादनने अर्थे छे.

भाष्यकार कहेछे के, (श्रुतिः—)

" एकधैवानुद्रष्टव्यं " " मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति"

इत्यादि वाक्योये सर्व उपनिषदोमां विद्या अने अविद्याना पृथक् पृथक् विषयो दर्शाव्या छे एटले अखंडैक्यरूप अभेद ते विद्यानो विषय अने जेटलो भेद प्रपंच ते अविद्यानो विषय; ते बन्ने मध्ये जे अविद्यानो कर्म उपासनारूप विषय ते सर्व पण आ उपनिषद्ना संपूर्ण त्रीजा अध्याये करीने व्याख्यान कर्यो, अने व्याख्यान करेलो ते अविद्यानो विषय सर्व पण सूक्ष्म, स्थूल ए भेदे करीने बे प्रकारनो छे; तेमां जे प्राणा-

ख्य सूक्ष्म लिंगात्मा ते स्थूलनो उपष्टंभक (थोभावनार) छे, अने एज प्राणने श्रुतिमां विराट्ट शरीरवाळो प्रजापतिरूप हिरण्यगर्भ कह्योछे; एज प्राणाख्य हिरण्यगर्भरूप ब्रह्म वस्तुतः एक छतुं शरीरादि उपाधियोमां जाणे अनेक होयनी शुं ? एम रह्युंछे; एथी पर एवुं वेद्य ब्रह्म कोइ छे नहि ए रीते अविद्यानुं विषयभूत अने चेतनवान् कर्त्ताभोक्तारूप एवां प्राणाख्य अपर ब्रह्मनेज परमात्मारूपे करीने निश्चय करतो एवो गार्ग्य ब्राह्मण वक्ता (पूर्व पक्ष वादि) अने तेथी पर शुद्ध आत्मस्वरूपनो जाणनार एवो अजातशत्रु श्रोता (सिद्धान्त वादि) आ ब्रह्मविद्याना उपक्रममां कह्योछे.

गार्ग्य तथा अजातशत्रुनी आख्यायिका जे कथन करी ते तो सुखे करीने वस्तुस्वरूपनो बोध थवाने अर्थेज प्रश्नोत्तररूपथी छे.

प्राणाख्य अपर ब्रह्मनो जाणनार दृप्तबालाकि नामे ब्राह्मणे अजातशत्रु नामना काशीराजानी पासे जइने ब्रह्मोपदेशनी प्रतिज्ञा करीने सूर्यादिकने विषे अपर ब्रह्म कथन कर्युं; त्यारे अजातशत्रु राजाये कह्युं के " ब्रह्मनुं मुख्य स्वरूप तें जाण्युं नथी." ते उपरथी शरमाइने तेणे राजा

प्रत्ये कह्युं के " तमे मने मुख्य ब्रह्मनो उपदेश करो!" त्यारे राजाये दान तरीके सुषुप्त पुरुष देखाडीने तेने विषे प्राणात्माने भोग्य प्रतिपादन करीने विज्ञानमय, स्वयंज्योति, प्राणादिक सर्वना उत्पत्ति, स्थिति, लयनो अधिष्ठानभूत माटे सत्य एवा प्राणादिकनो पण सत्यरूप एवो आनन्दात्मानो ब्रह्मथी अभेदे करीने उपदेश कर्यो.

हवे ब्रह्मज्ञानमां अंगभूत एवो संन्यास विधि कहेवोछे माटे मैत्रेयिनी आख्यायिकाः—

याज्ञवल्क्य मुनि पारिव्राज्य (संन्यास) लेवाने इच्छता छता पोतानी भार्याने कहेता हवा के " हे मैत्रेयि! हवे हुं गृहस्थाश्रमनो त्याग करीने संन्यासने इच्छुंछौं, माटे तुं अने कात्यायनी बेउनी साथे दांपत्यभाव संबंध तोडवो छे, वास्ते तमारे बेउने जरूर अनुमति आपवी; पछी हुं तमने बन्नेने द्रव्य वेंहेंची आपीने जइश." त्यारे मैत्रेयीये कह्युं के " तमे मने द्रव्ये करीने पूर्ण एवी आखी पृथ्वी आपशो तो पण तेणे करीने हुं अमृतभाव पामवानी नथी, माटे म्हारे द्रव्य जोइए नहि, कात्यायनीने बधुं द्रव्य आपो; मने तो तमे अमृतत्वनुं साधन जे जाणोछो तेनोज उपदेश करो के जेणे करीने हुं अमृत थाउं."

त्यारे याज्ञवल्क्ये प्रसन्न थइने कह्युं के " हे प्रिये! अांहीं आवी लज्जानो त्याग करीने सामी बेश; अने हुं व्याख्यान करीश ते एकाग्र चित्ते श्रवण करीने निश्चय करवो." अमृतत्वनुं साधन वैराग्यना उपदेशने अर्थे मुनिये कह्युं के " हे मैत्रेयि! पति, जाया, पुत्रादिक सर्व पण पत्यादिकना कामने अर्थे प्रिय नथी; किंतु आत्माना कामने अर्थे ते सर्व प्रिय छे; ए वात लोकमां पण प्रसिद्ध छे के सहुने पण आत्मा अति प्रिय छे; माटे (श्रुति)

" आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳ सर्वंविदितम् "

अर्थः— हे मैत्रेयि! पति पुत्रादिक सर्व पण गौण प्रिय छे, माटे तेनो त्याग करीने मुख्य प्रीतिनो आश्रय एवा आनन्दस्वरूप आत्मानुंज दर्शन करवुं एटले अपरोक्ष करवो, अने आचार्य तथा श्रुतिथी त्हेनुंज श्रवण करवुं, तदनंतर युक्तिथी एटले दृष्टान्त पूर्वक त्हेनुंज मनन करवुं (निश्चय करवो), त्यार पछी त्हेनुंज निदिध्यासन (ध्यान) करवुं. श्रवण, मनन, निदि-

ध्यासन ए त्रण्ये अंतरङ्ग साधनो वारंवार (अभ्यासे करीने) सम्यक् प्रकारे अनुष्ठान कर्यां होय तोज ब्रह्मात्मैकत्वनुं सम्यक् दर्शन (साक्षात्कार) थाय, अन्यथा श्रवणमात्रे करीने नहि.

हवे रज्जुने विषे सर्पनी पेठे अविद्याये करीने, आत्माने विषे अध्यस्त एवुं जे धर्म अधर्म तत्फलादिक ते सर्वना अपवादने अर्थे कहेछे के "हे मैत्रेयि! श्रवणादि त्रण साधनोथी एक आत्मस्वरूप जाण्ये छते सर्व पण विदित होयछे; केमके आत्माथी अतिरिक्त एवुं कांइ छेज नहि, किंतु नाम, रूप, क्रियात्मक एवुं सर्व पण आत्मरूपज छे; माटे एक आत्माना ज्ञानथी सर्वनुं ज्ञान होयज. जे कोइ पुरुष "आ ब्राह्मण जाति छे, आ क्षत्रिय जाति छे." ए रीते ब्राह्मण जात्यादिक सर्वने आत्माथी अतिरिक्तरूपे (भेदरूपे) जे जाणे ते भेददर्शी अपराधी पुरुषने ते ब्राह्मण जात्यादिक सर्व पण अपकार करे (अनात्मारूप करे) माटे ब्राह्मण जात्यादिक सर्वने पण आत्माथीज उत्पन्न होवाथी, तथा स्थिति काळे आत्मसत्ताथीज स्थित होवाथी, तथा आत्माने विषेज लय होवाथी ए सर्व पण आत्मरूपज छे. ए रीते श्रवणादिक साधने करी-

ने सर्वात्मभावथी आत्मानो साक्षात्कार करवो. सर्वात्मभावे करीने दर्शनमां दृष्टान्त कहेछे के, जेम दुन्दुभि, शंखादिक वजाडे छते बाह्य इतर शब्दोनुं विशेषे करीने ग्रहण थयुं नथी; किंतु शब्दसामान्यरूपेज ग्रहण थायछे; तेमज सर्वनुं पण सत्‌मात्र सामान्यरूपेज ग्रहण करवुं; जेम धूमादिकनी उत्पत्तिथी पूर्वे एक अग्निज छे एवुं ग्रहण थायछे तेमज सर्व जगत् पण उत्पत्तिथी पूर्वे प्रज्ञानघन एक आत्मस्वरूपज छे एवा अभिप्राये करीने कहेछे के, जेम आर्द्र (लीलां) इंधने करीने देदीप्यमान अग्निथी पृथक्‌रूप जेवा धूम विस्फुलिंगादिक नीकले छे, तेमज सत् आत्मस्वरूपथीज पुरुषना निश्वासनी पेठे अप्रयत्ने करीनेज ऋक्, यजुष्, साम, अथर्वांगिरस ए चार वेदो तथा शास्त्र, पुराण, इतिहास, विद्या, उपनिषत्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान इत्यादि सर्व नीकलेछे. वळी जेम वापी, कूप, तडागादिक जळोनुं एक अयन समुद्र छे, अने सर्व स्पर्शोनुं एक अयन त्वक् इंद्रिय छे, तथा सर्व रसोनुं एक अयन जिव्हा छे, तथा सर्व गंधोनुं एक अयन नासिका छे, तथा सर्व रूपोनुं एक अयन चक्षु छे, तथा सर्व शब्दोनुं एक अ-

यनं श्रोत्र छे, तथा सर्व संकल्पोनुं एक अयन मन छे, तथा सर्व विद्याओनुं एक अयन हृदय (बुद्धि) छे, तथा सर्व कर्मोनुं एक अयन हस्त छे, तथा सर्व आनन्दोनुं एक अयन उपस्थ छे, तथा सर्व विसर्गोनुं एक अयन पायु छे, तथा सर्व अध्वाओ(मार्गो)नुं अर्थात् तेने विषे गमन आगमननुं एक अयन पाद छे, तथा सर्व वेदोनुं एक अयन वाक् छे, तेमज सर्व जगतूनुं एक अयन आत्मा छे. ब्रह्मज आत्मा, अने आत्माज जगत् ए रीते प्रतिज्ञा करेला अर्थने तर्क(युक्ति)थी सिद्ध कर्यो. हवे ब्रह्मविद्याये करीने अविद्याना निरोधथी जे जगत्नो आत्यंतिक प्रलय तेने दृष्टान्त पूर्वक कहेछे के, जेम भूमिना संपर्कथी कठिनभाव पामेलो जळनोज विकार एवो सैन्धव खण्ड जलमां फेंक्यो छतो विलीन थइने जलरूप होयछे, कोइथी पण जळमांथी पाछो उद्धरण करीने पूर्वनी पेठे ग्रहण करी शकातो नथी तेमज हे मैत्रेयि! जे परमात्मस्वरूपथकी अविद्याये करीने तुं परिच्छिन्न एवी छती कारण कार्यरूप उपाधिना संबंधथी खिल्यभाव(खण्डभाव)ने अर्थात् संघातभावने पामीछो; वळी मर्त्यी एटले जन्म, मरण, क्षुधा, पिपासादिक संसार ध-

मैंवाळी थइछो; वळी नाम, रूप, क्रियात्मकताने पामी छती "हुं अमुक नामा, अमुक रूपा, अमुक गोत्रजा छौं." इत्यादि भावने पामीछो ते त्हारो मिथ्या भ्रान्तिजनित एवो खिल्यभाव एटले नाम, रूप, क्रियात्मक संघातभाव पोतानुं कारणभूत समुद्रस्थानीय, अजर, अमर, शुद्ध, एकरस, प्रज्ञानघन, अनन्त, अपार, अविद्याजनित भ्रान्तिभेद रहित एवां परमात्मस्वरूपने विषे विद्योपदेशे अविद्यानो बाध करीने में प्रवेश कराव्यो, अने ते अविद्याकृत खिल्यभावने स्वयोनिरूप ब्रह्मस्वरूपे ग्रास कर्ये छते त्रिकाळाबाध्य, पारमार्थिक, सन्मात्र एवुं जे वस्तुस्वरूप एज परिशिष्ट रह्युं; ते वस्तुस्वरूपने विषे कोई पण जात्यंतर छे नहि. जो कदा आत्मस्वरूप स्वच्छ अने संसार धर्मथी रहित छे त्यारे तेने विषे "हुं सुखी छौं, दुःखी छौं, आ गृहादिक म्हारुं छे" इत्यादि संसारधर्मरूप उपद्रवे भरेलो एवो खिल्यभाव एटले परिच्छिन्नभाव शा निमित्ते थयो? एवी मैत्रेयीने शंका थये छते तेमां निमित्त कहेछे के, स्वच्छ एवा परमात्माने विषे जल बुद्बुदना जेवां नामरूपात्मक कार्यकारणाकारे परिणामने पाम्यां जे भूतो के विषय पर्यंत जेमनुं परमार्थ विज्ञाने क-

होने ब्रह्मने विषे प्रविलापन पूर्वे श्रुतिमां कह्युंछे ते उपाधिरूप भूतो निमित्तथी, जळरूप निमित्तथी सूर्यादिकना प्रतिबिंबनी पेठे ए परमात्मा खिल्यभाव पाम्यो छतो “ हुं सुखी, हुं दुःखी ” इत्यादि उपद्रवोने पामेछे; ते निमित्तरूप भूतो ज्यारे श्रुति आचार्यना उपदेशथी जन्य एवी ब्रह्मविद्याये करीने समुद्रमां नद्यादिकनी पेठे ब्रह्मस्वरूप परमात्माने विषे प्रविलापन कर्यां छतां विनष्ट थाय त्यारे परमात्माने विषे खिल्यभाव पण निवृत्त थाय; जेम जळरूप निमित्तना अभावथी सूर्यादिकना प्रतिबिंबो विलय थइने बिंबमात्र रहेछे तेम; त्यार पछी स्वच्छ, अनन्त, अपार, विज्ञानघन एवुं परमात्मस्वरूपज अवशिष्ट रहेछे ते परमात्माने विषे कोइ विशेष संज्ञा रहे नहि. हे मैत्रेयि ! “ हुं सुखी, दुःखी, म्हारुं पुत्र धनादि ” इत्यादि सर्व उपद्रव पण अविद्याकृत छे ते अविद्यानो विद्याये करीने नाश थइ गयोछे माटे यद्यपि अविद्यादशामां शरीरने विषे रहेला आत्माने पण वास्तवताथी संसारभाव नथी त्यारे विद्याये करीने बाधित थयांछे अविद्या तत्कार्यो जेनां एवा ब्रह्मवेत्ताने खिल्यभाव संसार नहि होय तेमां शुं कहेवुं? ए रीते याज्ञवल्क्य

मुनि पोतानी भार्या मैत्रेयीने परमार्थ ज्ञाननो उपदेश करता हवा. ए प्रकारे बोध पमाडी छती मैत्रेयी कहेछे के, हे स्वामिन्! पूज्य एवा तमे शुं मने विरुद्ध धर्मवाळां मोहक वाक्ये करीने मोह पमाडोछो? (ते विरुद्ध धर्मनेज कहेछे के,) तमे प्रथम तो " आत्मा विज्ञानघनज छे " एवी प्रतिज्ञा करीने पछी पाछा कहोछो के " न प्रेत्य संज्ञास्ति " (ते आत्माने विषे विशेष संज्ञा नथी.) प्रथम तमे आत्माने विज्ञानघनरूपपणुं प्रतिज्ञा कर्युं, अने पछी पाछुं विनाशानंतर विशेष संज्ञानुं राहित्य कथन कर्युं, वास्ते एक आत्माने विषे विज्ञानघनपणुं तथा विनाशानंतर विशेष संज्ञानुं राहित्यपणुं ए बन्ने विरुद्ध धर्म केम घटे? जेम एक अग्निमां शीतत्व अने उष्णत्व बन्ने घटे नहि तेम. त्यारे मुनिए कह्युं के " में तो कांइ विरुद्ध धर्मवाळुं मोहक वाक्य कह्युं नथी, पण तेंज भ्रान्तिथी आत्माने विषे विरुद्ध एवा बे धर्मो मानी लीधा; में तो एम कह्युं के, अविद्याये करेलो आत्माने विषे जे खिल्यभाव तेनो विद्याये करीने नाश थये छते ते खिल्यभाव निमित्त विशेष संज्ञा रहे

नहि; जेम गंगा यमुनादि नदीओनो समुद्रमां एकीभाव थये छते विशेष संज्ञा रहेती नथी तेम.

ते आत्मा भूतभौतिक सर्वनो नाश थये छते पण वास्तवताथी नाश पामतो नथी; किंतु वाचारंभण श्रुतिनां प्रामाण्यथी अविद्याकृत एवो खिल्यभावज विनष्ट थायछे माटे जे में उपदेश कर्यो ते निर्दोष छे. ज्यारे विज्ञानघन स्वरूप तमने प्रामाणिक छे त्यारे "न प्रेत्य संज्ञास्ति" ए निषेध अयुक्त छे एटले विशेष विज्ञाननो निषेध अयुक्त छे एवी मैत्रेयीने आशंका थये छते, अविद्याकृत एवुं जे विशेष विज्ञान तेना खंडनना अभिप्राये निषेध युक्तज छे ए रीते मुनि उत्तर आपेछे के, अविद्याये करीने कल्पित अने कार्यकारण संघातरूप उपाधिये जनित एवो विशेषात्मक खिल्यभाव होवाथी वास्तवताये करीने अद्वैत एवां ब्रह्मस्वरूपने विषे द्वैत जेवुं अने वस्त्वंतर जेवुं जणायछे; तेवी अविद्यादशाने विषे बिंबथी इतर प्रतिबिंबनी पेठे परमात्माथी इतर जेवो खिल्यभूत आत्मारूप द्रष्टा एटले प्रमाता इतर जेवां चक्षुरादि करणे करीने इतर जेवा रूपादिक विषयोनुं दर्शन श्रवणादिरूप विशेष ज्ञान पामेछे; ए अविद्या ज्यारे जे पुरुषे ब्रह्मविद्याये करीने

नाश पमाडी अने ए ब्रह्मवेत्ताये नाम, रूप, क्रियात्मक सर्व पण ब्रह्मने विषे लय पमाड्युं छतुं ब्रह्मरूपज संपन्न थयुं; ते विद्यावस्थाने विषे कह्यो द्रष्टा कह्यां करणे करीने कह्या विषयनुं ग्रहण करे? अर्थात् द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटीना अभावथी केवळ विज्ञानघनज परिशिष्ट रहे. ए वाते करीने एम सिद्ध थयुं के, अविद्या छतेज क्रिया कारक फलादि सर्व व्यवहार छे, अने विद्या प्राप्त थये छते तो आत्माथी इतरनोज अभाव छे माटे कोइ पण व्यवहार नहि. हे मैत्रेयि! अविद्यादशामां लोक जे साक्षी आत्माये प्रकाश करेलां चक्षुरादिक करणोये करीने बाह्य विषयोने जाणेछे ते करणोने बाह्यविषयक प्रवृत्तिथीज उपक्षीण होवाथी विज्ञाता एटले प्रकाशक एवा आत्माने शाथी जाणे? अर्थात् नहिज जाणे; माटे श्रवणादि अंतरङ्ग साधनोनुं अभ्यासे करीने अनुष्ठान कर्युं होय तोज ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान थाय, अन्यथा नहि. एटली वात चोथा ब्राह्मणमां निरूपण करीछे.

लोकमां परस्पर उपकार्य उपकारकरूप सर्व वस्तु एक कारण पूर्वक अने एकने विषेज उत्पत्ति, स्थिति, लयवाळुं जोवामां आवेछे, माटे आ

सर्व जगत् पण परस्पर उपकार्य उपकारकभावथी एकात्मकारण पूर्वक अने एक आत्माने विषेज उत्पत्ति, स्थिति, लयवाळुं होवुं जोइए ए रीते हेत्वसिद्धिनी शंकानां निवर्त्तनने अर्थे मधु ब्राह्मण छे; अथवा आत्माज सर्व छे ए रीते प्रतिज्ञा करेला अर्थनो उत्पत्ति, स्थिति, लयरूप हेतु कहीने एज अर्थना उपसंहारने अर्थे आ आगम प्रधान मधु ब्राह्मण छे.

आ प्रसिद्ध एवी पृथ्वी उपकारकत्वे करीने ब्रह्मादि स्तंब पर्यंत सर्व प्राणियोने मधुरूप छे; तथा सर्व प्राणिओ उपकार्यत्वे करीने पृथ्वीनां मधुरूप छे; वळी पृथ्वीमां तेजोमय (चिन्मात्र प्रकाशमय) अने अमृतमय (अमरणधर्मा) एवो जे पुरुष ते तथा शरीरमां रहेनारो तेजोमय अने अमृतमय एवो जे लिंगात्मा पुरुष ते उपकार्यत्वथी सर्व भूतोनो मधुरूप छे; तथा सर्व भूतो उपकारकत्वथी पुरुषना मधुरूप छे ए रीते पूर्वोक्त चारे परस्पर उपकार्य उपकारक होवाथी कार्यरूप छे, अने ते एक कारणक एटले एक ब्रह्मस्वरूप छे कारण जेमनुं एवां छे; तथा च एक ब्रह्मज परमार्थ सत्य छे, अने इतर सर्व कार्य तो वाचारंभण श्रुतिनां प्रामाण्यथी नाम मात्र छे

ए कहेवाथी जे पूर्वे प्रतिज्ञा करी हती के ‘सर्व जगत् आत्मरूप छे ते सिद्ध थई; अने मुनिये मैत्रेयीने जे अमृतत्वनी प्राप्तिने अर्थे श्रवणादि साधनो कथन कर्या ते अमृतस्वरूप ब्रह्म पण एज छे ते प्रमाणे मधुपर्यायनी चौद श्रुतियोनो तात्पर्यार्थ छे.

ए रीते अविद्याये करेलो पृथ्वीथी आरंभीने विज्ञानमय पर्यंत सर्व पण कार्यकारणसंघात ब्रह्मविद्याये करीने जेने विषे प्रवेश कराव्ये छते जे परिशिष्ट रह्यो ते अनन्तर, अबाह्य, पूर्ण, प्रज्ञानघनभूत एवो सर्व भूतोनो आत्मा छे, अने सर्वेने उपासना करवा योग्य छे, तथा सर्व भूतोनो अधिपति अने सर्वेनो राजा छे ए रीते मधु ब्राह्मणमां कहेला प्रकारे आचार्यथी तथा श्रुतियोथी सर्वात्मभावे आत्मानुं श्रवण करीने तथा तर्कथी मनन करीने तथा निदिध्यासने करीने साक्षात्कार करीने पूर्वे वास्तवताथी ब्रह्मरूप छतो पण जे अविद्याये करीने अब्रह्म हतो, अने सर्व छतो पण अविद्याथीज असर्व हतो ते अविद्याने पूर्वोक्त ब्रह्मविद्याये करीने तिरस्कार करीने ते ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मीभूत छतो सर्वरूप होय; जेम रथ नाभिने विषे आराओ समर्पित

छे तेमज ब्रह्मादि स्तंब पर्यंत सर्व प्राणियो, तथा अग्न्यादि सर्व देवताओ, तथा भूरादि सर्व लोको, तथा वागादि सर्व प्राणो, तथा सर्व चिदाभासो ब्रह्मीभूत ब्रह्मवेत्ता पुरुषने विषे समर्पित छे. पूर्वे कह्युं हतुं के, ब्रह्मवेत्ता वामदेव गर्भमांज "हुं मनु छौं, हुं सूर्य छौं." इत्यादि सर्वात्मभावनो साक्षात्कार करतो हवो ए सर्व व्याख्यान कर्युं. ते ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष सर्वोपाधि सहित छतो सर्वरूप होयछे; तथा निरुपाधिक छतो अनन्तर, अबाह्य, पूर्ण, प्रज्ञानघन, अज, अजर, अमर, अभय, अचळ, तथा "अस्थूलमनण्वऱ्हस्वं" ए श्रुत्युक्त प्रकारे सर्व निषेधनो परमावधिभूत होयछे.

ईशावास्य मंत्र—"अनेजदेकं मनसो जवीयः" "तदेजति तन्नैजति" "तद्धावतोन्या." तैत्तिरीयक मंत्र— "यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्." "जक्षन् क्रीडन् रममाणः" आथर्वण०— "दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च" काठक०— "अणोरणीयान् महतो महीयान्" भगवद्गीता०— "अहं क्रतुरहं यज्ञः" "पिताहमस्य जगतः"

" ना दत्ते कस्यचित्पापं " " समं सर्वेषु भूतेषु " " अविभक्तं च भूतेषु " " ग्रसिष्णुप्रभविष्णु च "

इत्यादि आगम प्रतिपादित अर्थने नहि जाणनारा अज्ञानी पंडितमानी तार्किको "अस्ति आत्मा, नास्ति आत्मा, कर्त्ता, अकर्त्ता, मुक्त, बद्ध, क्षणिक, विज्ञानमात्र, शून्य इत्यादि" विकल्पो करता छता अविद्याना पारने पामता नथी; माटे जे पुरुषो श्रुति आचार्ये देखाडेला मार्गने अनुसरे एज अविद्याना पारने पामे अने एज मोहसमुद्रथी तरे, बीजा स्वबुद्धिनी कुशलतावाळा तरे नहि.

जे ब्रह्मविद्या मैत्रेयीये याज्ञवल्क्यने पुछी हती ते समाप्त थई. एज मधुविद्या(ब्रह्मविद्या)ने दध्यङ्ङाथर्वण मुनिये अश्विनीकुमारने बे मंत्र करीने स्तुति पूर्वक चोथा अध्यायना पांचमा ब्राह्मणमां उपदेश करीछे.

पांचमा अध्यायमां याज्ञवल्कीय कांडनो आरंभ छेः—

विदेह देशोनो राजा जनके बहु दक्षिणावाळो यज्ञ कर्यो त्यांहां देशोदेशना ब्राह्मणो आव्या ह-

सा; ते मध्ये ब्रह्मिष्ठतम कोण छे? एवी जिज्ञासाथी सालंकार सहस्त्र गायोनो राजाये पण कर्यो, अने रोकावीने कह्युं के "जे कोइ ब्रह्मिष्ठतम होय ते आ सहस्त्र गायोने ग्रहण करे." त्यारे कोइ पण बोली शक्या नहि; पछी याज्ञवल्क्य मुनिये पोतानुं ब्रह्मिष्ठपणुं जणाववा सारु पोताना सामश्रवा शिष्य पासे ए गायो स्वगृह प्रत्ये मोकलावी; ते समये बीजा ब्राह्मणोये कोप करीनें कह्युं के "तुंज एक ब्रह्मवेत्ता छो?" एम कहीने तिरस्कार कर्यो; त्यार पछी (१) आश्वळ, (२) आर्तभाग, (३) भुज्यु, (४) उषस्त, (५) कहोळ, (६) गार्गी, (७) उद्दालक अने (८) शाकल्य ए आठ पृच्छकोये जे जे युक्तिथी प्रश्नो कर्या, तेमना युक्तिथीज अनुक्रमे याज्ञवल्क्य मुनिये उत्तरो कर्या.

त्यार पछी क्षुत्पिपासादि रहित, साक्षात् सर्वान्तर एवुं ब्रह्म कहेवाने अर्थे आ गार्गी ब्राह्मण छे.

पूर्वे याज्ञवल्क्ये उत्तर आपीने पराजय करेली गार्गी फरीथी प्रश्न करवा माटे ब्राह्मणोनी आज्ञा मागेछे के "हे ब्राह्मणो! हुं याज्ञवल्क्य प्रत्ये बे प्रश्नो करवानी छौं, पण तमारी अनुम-

ति होय तो पुछुं; जो कदा उत्तर आपशे त्यारे तो तमाराथी कोइथी पण जीती शकाय नहि एम जाणवुं." पछी ब्राह्मणोये आज्ञा आपी छती प्रश्न करती हवी के "हे याज्ञवल्क्य! जेम काशीराज अथवा जनक धनुष् सज्य करी शत्रुने विंधनारा बे बाण संधान करीने शत्रुनी सामे रहे तेम हुं पण बाणरूप बे प्रश्न तैयार करीने त्हारी सामे रही छौं." मुनिये कह्युं के "कर प्रश्न." त्यारे गार्गीये पेहेलो प्रश्न एवो कर्यो के "जे ऊर्ध्वे ब्रह्मांडकपाळथी उपर छे, तथा जे अधःकपाळथी नीचे छे, तथा बन्नेनी मध्यमां भूत, भविष्य, वर्त्तमानरूप सर्व जगत् जेमां एकीभूत छे ते पूर्वोक्त सूत्रात्मा कोने विषे ओतप्रोत छे?" तेना उत्तरमां मुनिये कह्युं के "ते सूत्रात्मा अव्याकृताकाशमां ओतप्रोत छे" त्यारे गार्गीये प्रसन्न थइने अने नमस्कार करीने पछी, 'जो कदा अवाच्य वस्तुस्वरूपने नहि कहेशे तो अप्रतिपत्ति, अने कदा कहेशे, तो विरुद्ध प्रतिपत्ति ए रीते बेउ प्रकारे दोषना अभिप्रायथी' बीजो प्रश्न कर्यो के "हे मुने! ते अव्याकृताकाश कोने विषे ओतप्रोत छे?" तेना उत्तरमां मुनिये कह्युं के "हे गार्गि! जेने विषे अव्याकृता-

काश ओतप्रोत छे ते वस्तुस्वरूप अक्षर (अविनाशि,) अस्थूल, अनणु, अह्रस्व, अदीर्घ, अलोहित, अस्नेह, अच्छाय, अतम, अवायु, अनाकाश, असंग, अरस, अगंध, अचक्षु, अश्रोत्र, अवाक्, अमन, अतेज, अप्राण, अमुख, अमात्र, अनंतर, अबाह्य, अभोक्ता, अभोग्य, एकज अद्वितीय स्वरूप छे ए रीते त्हारा अने म्हारा म्होटेरा ब्राह्मणो एटले ब्रह्मवेत्ताओ कहेछे, हुं कहेतो नथी; तथापि ए वस्तुने जाणुंछौं. (एणे करीने अवाच्यनुं वचनरूप विप्रतिपत्ति अने अग्रहणरूप अप्रतिपत्ति एटले बन्ने दोषनो परिहार कर्यो.) हे गार्गि ! सूर्य, चंद्र, काल, देव, पित्रु आदि सर्व पण एज अक्षरस्वरूपनी आज्ञामां नियमे करीने वर्तो रह्युंछे ए अक्षर स्वरूपने जाण्या विना जे होम, जप, तप आदि करे ते सर्व अंतवाळुं छे; ए स्वरूपने जाण्या विना जे मृति पामे ते कृपण एटले जन्म मरणना प्रबंधमांज आरूढ होयछे; जे अक्षर स्वरूपने जाणीने वर्त्तमान देहनो त्याग करे तेज ब्राह्मण ए संसार बंधनथी मुक्त होयछे; ए अक्षर स्वरूप अदृष्ट छतुं द्रष्टृ, अश्रुत छतुं श्रोतृ इत्यादि; एथी अन्य कोइ द्रष्टा, श्रोता, मंता, विज्ञाता छे नहि ए

स्वरूपने विषे अव्याकृताकाश ओतप्रोत छे." पछी गार्गीए कह्युं के, "हे ब्राह्मणो ! तमे कोइ पण याज्ञवल्क्यने जीती शको एम नथी, माटे नमस्कार करीने क्षमापन मागो" एम कहीने ते उपराम पामी. ८

पृथिव्यादिक सर्व भूतोनो सूक्ष्मतानां तारतम्ये करीने उत्तरोत्तरमां ओतप्रोतभावनां कथने करीने सर्वान्तर एवुं ब्रह्म कथन कर्युं; ते ब्रह्मने नामरूपात्मक पृथिव्यादिकनुं नियंतापणुं पण कथन कर्युं; हवे नियम्य एवी सर्व देवताओना संकोच विकाशनी द्वाराये ते नियन्तृ ब्रह्मनां साक्षात् अपरोक्षत्वनां बोधनने अर्थे शाकल्य ब्राह्मण छे.

शाकल्य ऋषिये तर्क अने कुतर्कोथी अनेक प्रश्नो कर्या, तेमना उत्तर याज्ञवल्क्य मुनिये युक्तिथी यथार्थ आप्या; अनन्तर "तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" ए वाक्ये करीने केवळ श्रुत्येकगम्य आत्मानुं स्वरूप याज्ञवल्क्ये पुछ्युं तेनो उत्तर शाकल्य आपी शक्यो नहि, अने यद्वा तद्वा बोल्यो; त्यार पछी तेनुं मस्तक पड्युं.

पूर्व ब्राह्मणमां शारीरादिक अष्ट पुरुषो (१ पृथ्वी, २ काम, ३ रूप, ४ आकाश, ५ तम, ६ रूप, ७ अप्, ८ रेतस्)नो विस्तार पूर्वक

व्यवहार हृदयमां कथन करीने पछी अन्योन्य प्रतिष्ठ एवां शरीरने तथा हृदयने प्राणादि पंच वृत्त्यात्मक समानाख्य सूत्रने विषे उपसंहार करीने, पछी सूत्रनो अव्याकृतमां उपसंहार करीने ते अव्याकृतथी अतिक्रांत एवो जे उपनिषद् प्रमाणे करीने गम्य पुरुष " नेति नेति" वाक्ये उपदेश कर्यो ते पुरुषने " विज्ञानमानन्दं ब्रह्म " ए वाक्ये करीने साक्षातूरूपे अने उपादानरूपे करीने याज्ञवल्क्य मुनिये देखाड्यो; एज पुरुषनुं वागादि देवता द्वाराये करीने प्रदर्शनरूप उपायान्तरने अर्थे छठा अध्यायनां बे ब्राह्मणोनो आरंभ छे. जनक राजानी जे आख्यायिका ते तो जे अधिकारी पुरुष श्रद्धादि संपन्न थइने शास्त्रोक्तविधिथी गुरुने प्रपन्न थाय तेनेज गुरुये ब्रह्मविद्यानो उपदेश करवो एवा आचारना प्रदर्शनने अर्थे छे.

त्रीजा ब्राह्मणमां याज्ञवल्क्य मुनिये जनक राजाने आत्माने विषे शुद्धत्व, स्वयंज्योतिष्ट्व, अलुप्तशक्तिस्वरूपत्व, निरतिशयानंदस्वभावत्व, अद्वैतत्व अनुभव कराव्युं छे तेमां स्वप्नावस्थामां स्वयंज्योतिपणानो जे स्पष्ट अनुभव कराव्योछे तेनो

श्रुतिने अनुसार विस्ताररूपे अर्थ चतुर्थ प्रक्रियामां दर्शावेल छे.

उपरनां त्रीजां ब्राह्मणमां संसार वर्णननो प्रस्ताव कर्यो हतो अने "तत्रायं पुरुष एभ्योऽङ्गेभ्यः संप्रमुच्य" (ए पुरुष ए अंगोथी संप्रमुक्त थइने) ए रीते पण कह्युं हतुं; त्यांहां ते संप्रमोक्षण कह्या कालने विषे अने कह्ये प्रकारे थाय? ते कहेवा वास्ते सविस्तर एवुं संसारनुं वर्णन चोथां ब्राह्मणमां कर्युंछे.

समस्त आरण्यकनो अर्थ अन्त्यनी एक कंडिकामां देखाड्योछे. (कंडिका)

"स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयश्हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद"

अर्थः— ते आ आत्मा 'महान्' एटले व्यापक, तथा 'अज' एटले अजन्मा, तथा 'अजर' एटले विपरिणामे रहित, तथा 'अमर' एटले अपक्षय रहित माटेज 'अमृत' एटले अविनाशी, तथा जन्मानंतर अस्तित्व अने वृद्धिये रहित माटेज काम, कर्म, मोहादि विकारे रहित छे,

अने तेथीज 'अभय' एटले भय रहित छे (जे भय ते अविद्यानुं कार्य छे तेना निषेधे करीने तथा षड्भाव विकारना निषेधे करीने तेनुं मूल अविद्यानो पण निषेध अर्थात् जाणवो.) एवो जे आत्मा एज निरतिशय सुखरूप अभय ब्रह्म छे ए रीते आत्माने ब्रह्मथी अभेदे करीने जे जाणे एटले अपरोक्ष करे ते अभय ब्रह्मरूप होयछे. एज अर्थनो एटले ब्रह्मात्मैकत्वनो सम्यक् प्रबोध थवाने अर्थे उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादिकनी कल्पना तथा क्रिया, कारक फलो विगेरेनो अध्यारोप आत्माने विषे कर्यो, अने तेना अपवादे करीने ब्रह्मात्मैकत्वरूप तत्त्व साक्षात्कार कराव्यो; जेम एकथी आरंभीने परार्ध पर्यंत संख्यानां परिज्ञानने अर्थे संख्याने विषे रेखानो अध्यारोप करीने केवल संख्या स्वरूपनो बोध करावेछे; पण १ थी ९ सुधी रेखा कांइ संख्यानुं स्वरूप नथी; वळी अकारादि अक्षरोनां प्रबोधनने अर्थे शाहीनी रेखारूप अध्यारोप करीने अकारादि वर्णोनुं तत्त्व स्वरूपनो अनुभव करावेछे, पण ते रेखा वर्णोनुं स्वरूप तत्त्व नथी एज रीते उत्पत्ति, स्थिति, लयादिकरूप उपायोनुं अवलंबन करीने ब्रह्मात्मैकत्व तत्त्वनुं ज्ञान कराव्युं; पछी "ने-

ति नेति" वाक्ये ते कल्पित सर्वनो अपवाद करीने केवळ ब्रह्मात्मैकत्वनो साक्षात्कार कराव्यो. ए रीते समस्त आरण्यकनो अर्थ एक कंडिकामां देखाड्योछे.

पूर्वे कथन करेली ब्रह्मविद्याना उपसंहारने अर्थे प्रथम कहेलुं जे मैत्रेयी ब्राह्मण एज पाछुं फरीथी छठ्ठा अध्यायना पंचम ब्राह्मणरूपे करीने कथन कर्युंछे.

ब्रह्मविद्या समाप्ता.

आ उपनिषद्‌ना तात्पर्यार्थनो श्लोकः—

यस्यानंदस्य मात्रा विविधसुखमिदं
येन सर्वेपि जीवाः प्राणंत्यव्याकृतं
प्राग् जगदिदमखिलं व्याकरोन्नाम-
रूपैः। अन्तर्यामीहृषीकाधिप इ-
ति विदितं व्यापकं ब्रह्म तत्राहं ब्र-
ह्मास्मीति येनैवविलयमसवस्तस्य
नैवोच्छलन्ति ॥ १ ॥

अर्थः— सार्वभौम आनंदथी आरंभीने हिरण्यगर्भ पर्यंत उत्तरोत्तर शतगुणित एवा आनन्दो

जेनाज अंशरूप छे; तथा सर्वे जीवो जेनी सत्ताथीज प्राणन करेछे; तथा पूर्वे अव्याकृत एवां जगत्‌ने नाम रूपे करीने जे व्याकरण करतो हवो; तथा जे अन्तर्यामीरूपे करीने मन आदि इंद्रियोनो अधिपति एटले प्रेरक छे ते प्रत्यक् स्वरूप हुंज व्यापक ब्रह्मरूप छौं ए प्रकारे "अहं ब्रह्मास्मि" ए वाक्ये करीने प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मनो साक्षात्कार करनार जे विद्वान् पुरुष तेना प्राणो आज देहने विषे विलय पामेछे, उत्क्रमण करता नथी. १.

---

(११) केननुं वाक्य भाष्य.(आनो समावेश केनना पद भाष्यमां जाणवो.)

---

(१२) उत्तरनृसिंहतापिनी. (आनो समावेश माण्डूक्यमां जाणवो.)

इति श्री मदुदयशंकरात्मज
गौरीशंकर विरचिते
स्वरूपानुसंधाने
पंचम प्रक्रिया
समाप्ता. ५

अथ श्री स्वरूपानुसंधाने

षष्ठी प्रक्रिया प्रारंभः ६

सूत्रप्रस्थान.

श्री व्यासकृत सूत्रनां भाष्यमां श्रुतियोना निर्णायिक षड्विध लिंग एटले " उपक्रमोपसंहारावभ्यासोपूर्वताफलं । अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णयः ॥ १ ॥"

ए तात्पर्यथी कर्म, उपासना, ज्ञान त्रिकांडात्मक वेदनां वाक्योनो अविरोधताये निर्णय कर्यो छे; तथा केटलाएक वादियोनो द्वैत मत खंडन करीने अद्वैत मत प्रतिपादन कर्योछे; माटे पांच ब्रह्मसूत्रोना अर्थो उपरथी अनुसंधान.

उत्तर मिमांसारूप सूत्रना अध्याय चार तेमां (१) समन्वयाध्याय, (२) अविरोधाध्याय, (३) साधनाध्याय, (४) फलाध्याय; अने ते प्रत्येक अध्यायना चार चार पाद छे.

प्रथम अध्यायना प्रथम पादनुं प्रथम सूत्र.

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ १ ॥

अर्थः— आ जन्ममां अथवा जन्मांतरमां करेलां पुण्यविशेषथी एटले यज्ञ, दान, तप तथा हरितोषण विगेरे सत्कर्मोथी अन्तःकरणनी शुद्धि थये विवेकादिक चतुष्टय साधन—

(१) विवेक एटले आत्मा अनात्मानी विवेचना करवी; नीर क्षीरनी पेठे अर्थात् जड चेतननुं तत्त्व यथार्थ समजवुं.

(२) वैराग्य एटले आत्मपुराणना पेहेला तथा छठा अध्यायमां यमदूतोए लिंग शरीराभिमानी जीवने यमयातना भोगवाववा लेइ जतां तेने अनेक प्रकारे धिक्कारीने गर्भवास, जन्म, मरणादि अनेक दुःखो देखाड्यांछे ते विगेरे दोष दृष्टिथी तथा विवेके करीने जाणवामां आव्युं जे दृश्यवर्ग देहादिकनुं मिथ्यापणुं तेथी तेने विषे रागनुं राहित्यपणुं ते वैराग्य.

(३) शमादि षट्क.—(१) शम एटले मननो निग्रह; अर्थात् बहिर्मुख मनने अंतर्मुख संपादन करवुं.(२) दम एटले बाह्य चक्षुरादि इंद्रियोनो निग्रह; अर्थात् पोतपोताना विषयोने विषतुल्य जाणीने ते उपर प्रवृत्त न थवा देवा; तेमां रसना अने उपस्थ इंद्रियनो मुख्य निग्रह

करवो. (३) उपरति एटले पराक् प्रवण वृत्तियोनो त्याग पूर्वक प्रत्यक् प्रवण वृत्तिओ राखवी; अर्थात् जेवी बाह्य पदार्थोमां आसक्ति होयछे तेवीज बाह्यमां नहि राखतां प्रत्यक् आत्मस्वरूपने विषे राखवी. सारांश ए के, तेनो अर्थ सर्व कर्मनो संन्यास. (४) तितिक्षा एटले प्रारब्धयोगे प्राप्त थयां शीतोष्णादिक सुखदुःखनुं सहन करवुं; अर्थात् ते विषे क्लेशना राहित्यपणाथी रहेवुं. (५) श्रद्धा एटले ब्रह्मनिष्ठ गुरु तथा वेदान्त वाक्यो उपर विश्वास. (६) समाधान एटले प्रत्यक्थी अभिन्न ब्रह्मने विषे चित्तनी एकाग्रता.

(४) मुमुक्षुता एटले जन्म मरणादिरूप संसार बंधनथकी म्हारी मुक्ति क्यारें थशे? ए प्रकारनी मोक्षने विषे दृढ इच्छा.

ए रीते साधन चतुष्टय संपन्नतारूप अधिकार प्राप्त थया नंतर ब्रह्मस्वरूपनो विचार करवो. अने ‘अतः’ ए शब्द हेत्वर्थ छे एटले जे माटे वेदज पोते श्रेयनां साधन अग्निहोत्रादि कर्मोनां स्वर्गादि फलनी अनित्यता देखाडेछे तेमां श्रुतिः— “ तद्यथेह कर्म चितोलोकः क्षीयत ए-

मेवामुत्रपुण्यचितोलोकः क्षीयते " इत्या-
; तथा वेदज ब्रह्मविज्ञानथी परम पुरुषार्थने एट-
मोक्षने देखाडेछे तेमां श्रुतिः—"ब्रह्मविदाप्नो-
ति परम्" इत्यादि. माटे ए हेतुथकी ब्रह्मस्व-
रूपनो विचार करवो.

त्यांहां वादिनी शंकाः— संदेह युक्त जे वि-
षय होय तेने विषे विचार करवो घटे, ब्रह्मरूप
विषय तो जीवात्मारूपे करीने संदेह युक्त नथी;
केमके अहं प्रत्यये करीने जीवरूपनो निश्चय
थायछे, तथा " सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म "
ए वाक्ये करीने ब्रह्मरूपनो निश्चय थायछे. वळी
सिद्धान्ती कदी एम कहे के "तत्त्वमस्यादि वाक्ये
करीने जीव ब्रह्मनी एकता भासमान थायछे,
अने अहंप्रत्यये करीने तो जीव ब्रह्मनो भेद
भासमान थायछे, माटे विषय संदेह युक्त छे" प-
रंतु ए वात बने नहि; केमके अबाधित प्रत्यक्ष
अहंप्रत्ययना विरोधथी तत्त्वमस्यादि श्रुतिने
विषे जे जीव ब्रह्मनुं ऐक्य कह्युंछे, ते तो औप-
चारिक भासेछे. वळी कदी सिद्धान्ती कहे के
" तत्त्वमस्यादि वाक्य तो अध्यास विशिष्ट आ-
त्माविषयक छे." ए वात पण बने नहि; केमके

स्वयंप्रकाश आत्माने विषे अध्यास कहेवो घटतोज नथी. वळी प्रयोजन पण जणातुं नथी; केमके ब्रह्मज्ञान छते पण मुक्ति जोवामां आवती नथी, एटले केटलाएक जीवन्मुक्त पुरुषोने विषे पण रागद्वेषादि व्यवहार जोवामां आवेछे, वास्ते विचार शा माटे करवो जोइए ? एवी शंका थये समाधानः– विषयने विषे संदेह तथा प्रयोजन बेउ पण संभवेछे; शी रीते के, अशुद्ध अहं प्रत्यथी जीव ब्रह्मनी भिन्नता तथा ऐक्य श्रुतिथी तेनी अभिन्नतारूप संदेह युक्तज छे; ते विषे उपर वादिए कह्युं के, " श्रुतिमां जीव ब्रह्मनी एकता तो औपचारिक छे. " ए वात केवळ अयुक्त छे; केम जे उपक्रमादि षड्विध तात्पर्यलिंग सहित अनेक श्रुति वाक्योने विषे औपचारिक अर्थ कहेवो घटेज नहि. वळी ' हुं मनुष्य छौं, कर्त्ता छौं.' इत्यादिक स्थलने विषे सर्व सिद्धान्तियोये पण श्रुतिना बलथकी भ्रान्तिरूप अध्यास स्वीकार्यो छे माटे तेनी अनुपपत्ति नथी. वळी विषय संदेह युक्त छे एटलुंज नहि, परंतु विपर्यास पण छे एटले जन्म मरणादि दुःखरूप संसारने विषे सुखरूपतानी बुद्धि इत्यादि. वळी जीवन्मुक्तने विषे जे रागद्वेषादि जोयामां

आवेछे ते तो अहंममताप्रयुक्त आसक्तिनां राहित्यथकी बाधितानुवृत्तिये करीने आभासमात्र छे, वास्ते मुक्तिरूप प्रयोजन पण संभवेछे; माटे ब्रह्म विचार अवश्य करवो जोइए.

हवे अध्यास एटले अन्यने विषे अन्य धर्मनो अवभास; जेम शुक्तिमां रजतपणुं भासेछे तेमज आनन्दात्माने विषे जे युष्मदर्थभूत अहंकारादिक एटले लिंग तथा स्थूल शरीरादिकनो हुं म्हारापणाये करीने अवभास ते अध्यास. शंकाः– अविषयभूत प्रत्यगात्माने विषे विषयना धर्मोनो अध्यास थइ शकेज नहि; केमके सहु जन पण पोतानी सन्मुख रहेला शुक्त्यादिक विषयने विषे रजतादिक धर्मोनो अध्यास करेछे. समाधानः– प्रत्यक् आत्मा अविषयभूत एवोज नियम नथी; केमके आत्माने विषे अस्मत् प्रत्ययनी एटले शुद्ध अहं प्रत्ययनी विषयता छे, तथा अपरोक्षपणुं पण छे. वळी सन्मुख रहेला विषयने विषेज अध्यास थाय एवो पण नियम नथी; केमके अप्रत्यक्ष आकाशने विषे पण अज्ञानीओ मालिन्यादिकनो अध्यास करेछे, माटे प्रत्यगात्माने विषे पण अनात्मा अहंकारादिकनो अध्यास संभवेछे; एज अध्यासने ज्ञानी लो-

को अविद्या कहेछे अने ते अध्यासथकी विवेके करीने जे वास्तव स्वरूपनुं अवधारण तेने विद्या कहेछे; एज अविद्या नामनो आत्मा अनात्मानो जे अन्योन्याध्यास तेने अग्रेसर राखीनेज विधि-निषेध पर सर्व शास्त्रो तथा लौकिक, वैदिक, प्रमाण, प्रमेयादि व्यवहारो प्रवृत्त थयाछे; ए रीते अनादि, अनन्त एवो मिथ्या प्रत्ययरूप जे अध्यास तेज अकर्त्ता, अभोक्ता आत्माने विषे कर्तृत्व भोक्तृत्वनो प्रवर्त्तक छे, माटे जन्म मरणादि सर्वे अनर्थोनो हेतुभूत अविद्यारूप अध्यासना नाशने अर्थे, तथा प्रत्यक्‌भूत जीव ब्रह्मनी एकतारूप विद्यानी सिद्धिने अर्थे ब्रह्म विचार करवो युक्त छे. त्यांहां उपरना सूत्रनी मूलभूत श्रुतिः–

" आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः "

अर्थः– हे मैत्रेयि! ' द्रष्टव्यः ' एटले पराग्वृत्तिना तिरस्कार पूर्वक प्रत्यक् प्रवण वृत्तिए करीने आत्मानो साक्षात्कार करवो; ते साक्षात्कार करवामां साधन–' श्रोतव्यः ' एटले प्रथम आचार्यथकी उपनिषद् वाक्ये करीने अद्वैत आ-

स्वरूपनो विचार करवो ते श्रवण; तथा 'मंतव्यः' एटले ते आत्मस्वरूपनुं श्रुत्यनुसारी तर्के करीने मनन करवुं एटले जे श्रवण कर्युं तेने युक्तिये करीने आत्माने विषे घटाववुं; जेमके

"दंतिनि दारुविकारे दारु तिरोभवति सोऽपि तत्रैव। जगति तथा परमात्मा परमात्मन्यपि जगत् तिरोधत्ते" ॥ १ ॥

अर्थः– लाकडानो बनावेलो हस्ती बहिर्मुख वृत्तिथी जोयो होय तो तेने विषे काष्ठ तिरोधान पामेछे अने हस्तीज भासेछे; तथा आन्तर दृष्टिथी जोयो होय तो काष्ठ मात्र भासे अने तेने विषे हस्ती तिरोहित थइ जायछे; तेम बहिर्मुख वृत्तिये जोवाथी जगत्मात्र देखायछे, अने तेने विषे परमात्मा तिरोधान पामेछे एटले जणातो नथी, तथा अन्तर्मुख वृत्तिये जोवाथी एक परमात्माज जणायछे अने तेने विषे जगत् तिरोहित थइ जायछे.

तथा 'निदिध्यासितव्यः' एटले श्रवण मननथकी निश्चय करेलां आत्मतत्त्वने विषे चित्तनी

एकतानतारूप एटले ब्रह्माकार वृत्त्यारूढतारूप ध्यान करवुं.

शंकाः— श्रवण, मनन अने निदिध्यासन ए त्रण्येमांथी, एक श्रवणरूप साधने करीनेज आत्मानो साक्षात्कार थशे, माटे त्रण्येनां अनुष्ठाननुं शुं प्रयोजन? समाधानः— केवळ श्रवण मात्रे करीनेज साक्षात्कार थइ शके नहि; केमके मनन, निदिध्यासन विना असंभावनादि प्रतिबंधनी अनिवृत्तिथी फल सहित आत्मानो अपरोक्ष थायज नहि, माटे साधनोना अनुष्ठानना अभ्यासथी प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मनो साक्षात्कार थाय ते विषे श्रुति प्रमाणः—

"तस्माद्ब्राह्मणः पांडित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत् बाल्यं च पांडित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तम्"

अर्थः— माटे अद्य काळने विषे पण 'ब्राह्मणः पांडित्यं निर्विद्य' एटले श्रुति आचार्यथी

१ बीजी प्राक्रियामां अर्थ कर्योछे.

वास्तवात्मविज्ञाननुं श्रवणरूप पांडित्यने निःशेष संपादन करीने, पछी ते ज्ञानने युक्तिये करीने दृढी करणरूप मननात्मक बाल्यभावने एटले ज्ञान बळने निःशेष संपादन करीने, पछी निदिध्यासनरूप मौनने निःशेष संपादन करीने कृतकृत्य होय. ए रीते जे ज्ञान संपादन करे तेज "ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः" ए व्युत्पत्तिथी निरुपचरित ब्राह्मण्यवान् कहेवाय; अने अविनाशी पण कहेवाय, एथी अतिरिक्त अविद्यानो विषय सर्व पण विनाशी छे, माटे एक आत्माज नित्य मुक्त छे.

ए रीते मुमुक्षुये ब्रह्मविचार करवो ए वात सिद्ध थई; माटे ते ब्रह्मनुं स्वरूप तथा प्रमाण शुं? ते जाणवा सारु सूत्रकार तेनुं प्रथम तटस्थ लक्षण अने स्वरूप लक्षण पण कहेछे.

"जन्माद्यस्य यतः" २.

अर्थः– 'अस्य' एटले नाम रूपे करीने भासमान थयेलुं तथा अनेक कर्त्ता भोक्ताये युक्त अने देश, काळ, निमित्त, क्रिया, फळोनुं आश्रयभूत तथा मने करीने पण जेनी रचना चिंतवनमां न आवे एवां आ एटले प्रत्यक्ष जणातां एवां

दृश्य जगतनां 'जन्मादि' एटले जे उत्पत्ति, स्थिति अने लय ते ' यतः ' एटले सर्वज्ञ, सर्वशक्ति एवां जे कारणथकी थायछे ते ब्रह्म.

उपरनां सूत्रनी मूळ श्रुतिः—

" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म "

अर्थः— ' यतः ' एटले मायाविशिष्ट जे कारणथकी ' इमानि भूतानि ' एटले ब्रह्माथी अर्थात् हिरण्यगर्भथी आरंभीने स्तंब पर्यंत सर्व भूतो ' जायन्ते ' एटले उत्पन्न थायछे; तथा ' जातानि ' एटले उत्पन्न थयां छतां ' येन-जीवन्ति ' एटले जेनी सत्तावडे जीवेछे अर्थात् वृद्धि पामेछे; तथा विनाश काळने विषे ' यत्प्रयन्ति ' एटले लय पामतां छतां जे ब्रह्ममां ' अभिसंविशन्ति ' एटले तादात्म्यपणाने पामे ते ब्रह्म; अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, लय त्रण्ये काळने विषे सर्व भूतदेहो जे अधिष्ठान स्वभावताने एटले ब्रह्मनां तादात्म्यपणाने त्याग करता नथी ते ब्रह्म. ए रीते ब्रह्मनुं तटस्थ लक्षण कह्युं; त्यारे

ब्रह्मनुं स्वरूप लक्षण केवी रीतनुं? एवी आकांक्षा थया उपर तेविषे भाष्यकारे कह्युं के 'यतोवा' ए श्रुतिमां जे 'यतः' ए पद छे, तेणे करीने एज श्रुतिनुं निर्णायक "आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" (अर्थः—आनंदस्वरूप ब्रह्मथकीज सर्व भूतो उत्पन्न थायछे, तथा आनन्दवडेज जीवेछे, अने लय पामतां छतां आनंदने विषेज ऐक्यता पामेछे.) आ श्रुतिथी जे आनंद एज ब्रह्मनुं स्वरूप लक्षण तथा बीजां "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि स्वरूप लक्षणनां वाक्योथी पण जाणी लेवुं.

त्रीजां सूत्रनी अवतरणिका.

सूत्रकारे चैतन्यस्वरूप ब्रह्मने विषे पूर्व सूत्रे करीने सर्व जगत्नुं मायाउपाधिथी कारणपणुं कथन कर्युं, तेथकी सर्वज्ञपणुं पण अर्थात् प्रतिज्ञा कर्युं; केमके चेतनमय सृष्टि ज्ञान पूर्वकज्ज होयछे; तथा च जे ब्रह्म ते सर्वज्ञ छे, सर्व जगत्नुं कारणपणुं छे माटे; जे जे कार्यनो कर्त्ता होयछे ते तेनो ज्ञाता होयछे; जेम कुलाल तेम. ए रीते अनुमाने करीने सिद्ध थयेलां तेज सर्वज्ञपणाने

प्रधानादिकना निरासे करीने वेदकर्तृतारूप हेतुथी दृढ करता छता सूत्रकार कहेछेः—

" शास्त्रयोनित्वात् " ३.

अर्थः— अनेक विद्यास्थानोये करीने अति महत्, तथा दीपनी पेठे सर्व अर्थने द्योतन करनार, तथा सर्वज्ञ जेवुं जे ऋग्वेदादिक शास्त्र तेनुं कारण ब्रह्म छे; एवां ऋग्वेदादि महत् शास्त्रनो संभव सर्वज्ञ ब्रह्म विना इतरथी होयज नहि. जे कोइ पुरुषे एक विषय लेइने शास्त्र रच्युं होय, जेम पाणिनीये व्याकरण रच्युं तेम, ते पुरुष पण आ लोकमां विद्वत्तर कहेवायछे; त्यारे अनेक शाखाओना भेदे विशिष्ट, तथा देव, तिर्यक्, मनुष्य, वर्ण, आश्रम इत्यादिकना विभागमां हेतुभूत, तथा सर्व ज्ञानोनो आकररूप (खाणरूप) एवां ऋग्वेदादि महत् शास्त्रनी प्रयत्न विनाज लीलाए करीने निःश्वासनी पेठे जे जगत्कारण ब्रह्मथकी उत्पत्ति छे, ते ब्रह्म सर्वज्ञ अने सर्वशक्तिमान् होय, तेमां शुं आश्चर्य? श्रुति पण एज प्रमाणे कहेछेः—

" अस्य महतो भूतस्य निश्वसित-

मेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथ-
र्वाङ्गिरस " इत्यादि.

अथवा ब्रह्मनां वास्तव स्वरूपज्ञानने विषे ऋग्वेदादिक शास्त्रज 'योनि' एटले प्रमाणभूत छे, माटे शास्त्रयोनि. शास्त्ररूप प्रमाणथकीज जगत्ना जन्मादिकनुं कारणभूत ब्रह्म जाणवामां आवेछे; एज अर्थमां अन्य श्रुतिः—

" तन्त्वौपनिषदम्पुरुषम्पृच्छामि "

अर्थः— हे शाकल्य! 'औपनिषदं' एटले केवळ उपनिषद् प्रमाणे करीनेज गम्य, अन्य प्रमाणे करीने नहि एवा पुरुषने, विद्यानो अभिमानी एवा तुंने पुछुंछों.

चोथां सूत्रनी अवतरणिका.

शंकाः— उपरमां सूत्रमां ब्रह्मने विषे वेदशास्त्रने प्रमाणरूप कह्युं, पण ते घटे नहि; केमके " आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां " आ जैमिनी सूत्रमां सर्व वेदवाक्योने क्रियापर एटले कर्मने विषे विनियोगवाळांज देखाड्यां छे माटे वेदान्तवाक्यो कर्मपर नथी, वास्ते तेमनुं आनर्थक्य प्राप्त थयुं; माटे ते वाक्योने

स्तावक एटले स्तुतिपरत्वे करीने कर्मविधिवाक्यो-नां शेषरूप एटले अंगरूप निश्चय कर्यांछे. वळी वेदान्त प्रकरण कर्म प्रकरणथी भिन्न छे, माटे तेने कर्मनुं अंगपणुं घटे नहि एम कदापि सिद्धा-न्ती माने तो, वेदान्तमांज रहेलां उपासनावा-क्योविषे कहेलां उपासनो कर्मनी स्तुतिपरतायें करीने तेनां अंगभूत छे, माटे वेदान्तवाक्यो ब्र-ह्मनां प्रमाणभूत नहि. वळी परिनिष्ठित (शुद्ध) ब्रह्म तो प्रत्यक्षादि प्रमाणे करीनेज जाणवामां आवेछे, माटे पण वेदान्तवाक्यो ब्रह्मनां प्रमा-णरूप घटे नहि एवी वादिनी शंका थये छते सूत्रकार कहेछेः—

"तत्तु समन्वयात्" ४.

अर्थः— 'तु' शब्द पूर्वपक्षनी व्यावृत्तिने अर्थे छे. ते ब्रह्म, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्व जगत्ना उत्पत्ति, स्थिति, लयोनुं कारण छे ए प्रकारे वेदान्त शास्त्रथकी जणायछे. शंकाः— शी रीते ? उत्तरः— 'समन्वयात्' एटले "सदेवसोम्ये-दमग्र आसीत्" "एकमेवाद्वितीयं" "आ-त्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" "तदेतद्ब्र-ह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्र-

ह्म सर्वानुभूः" "ब्रह्मैवेदममृतम्पुरस्तात्" इत्यादि सर्व वेदान्तोनां वाक्यो तात्पर्ये करीनेज सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्वादि अर्थनां प्रतिपादकत्व-रूपे ब्रह्मने विषे समन्वित (घटेलां) छे; ते वाक्योमां रहेलां पदोनो ब्रह्मस्वरूपने विषे निश्चये करीने समन्वय जणाते छते कर्म उपासनादि परतारूप अर्थांतरनी कल्पना करवी, ते केवळ अघटित छे; केमके श्रौत अर्थनी (श्रुति प्रतिपादित मुख्य अर्थनी) हानि, अने अश्रौत गौण अर्थनी कल्पनारूप दोषनो प्रसंग आवेछे; वळी वादिना कहेवा प्रमाणे ते वाक्योने विषे कर्त्ता देवतादिक स्वरूपनुं प्रतिपादकपणुं निश्चय थतुं नथी; केमके "तत्केन कं पश्येत्" इत्यादि श्रुतिये क्रिया, कारक अने फळनुं निराकरण करेलुं छे. वळी वादिना कहेवा प्रमाणे परिनिष्ठित ब्रह्मस्वरूपने प्रत्यक्षादि प्रमाणनां विषयपणानो पण असंभव छे; केमके " तत्त्वमसि " ए वाक्ये प्रतिपादन करेला ब्रह्मात्मैक्यभावनो साक्षात्कार महावाक्य विना प्रत्यक्षादि प्रमाणे करीने थायज नहि. कदि वादी कहे के, 'हेयत्वउपादेयत्वना राहित्यथकी ब्रह्म आत्मानी एकतानो उपदेश निरर्थक छे' ए दोष पण घटतो नथी; केमके

हेयोपादेय धर्म रहित ब्रह्म आत्मानी एकतान साक्षात्कारथकीज सर्व क्लेशोनी हानि, अने निरतिशय आनन्दनी प्राप्तिरूप पुरुषार्थ सिद्ध थायछे. त्यांहां श्वेताश्वतर श्रुतिः—

"ज्ञात्वा देवं सर्व्वपाशापहानिः क्षी-
णैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।"

अर्थः— द्योतनात्मक आत्मस्वरूपनो साक्षात्कार कर्ये छते अविद्यादि सर्व पाशोनी 'अपहानिः' एटले नाश थाय, अने अविद्यादि क्लेशोनो नाश थये छते तेनां कार्यभूत जन्ममरणनी पण 'प्रहाणिः' एटले प्रकर्षे करीने नाश थाय.

शंका:— त्यारे वेदान्तवाक्यो कर्मपर न हो, परंतु उपासनापरज एटले उपासनामां अंगभूत हो. समाधानः— प्रतिशाखामां रहेलां देवतानां प्रतिपादक प्राण पंचाग्नि आदिक वाक्योने तो उपासनापरतामां पण कोइ विरोध नथी, परंतु "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि ब्रह्मस्वरूपनां प्रतिपादक वाक्योने तो उपासनापरत्व संभवेज नहि; केमके ब्रह्मैकत्व विज्ञानने विषे हेय उपादेयना राहित्यथी क्रिया कारक इत्यादि द्वैत

ज्ञाननो उपमर्द थायछे; माटे ब्रह्म आत्मानां एकत्व विज्ञाने करीने उन्मथन (नाश) थयेलां द्वैत ज्ञाननो पुनः उत्पन्न थवानो संभवज नथी, के जेणे करीने ब्रह्मने उपासना विधिनुं शेषपणुं कही शकाय; यद्यपि कर्मोपासना कांडमां वेदवाक्योनुं विधिनी शेषता विना प्रमाणपणुं जोवामां आवतुं नथी, तथापि फळ पर्यंत एटले निःशेषानर्थनी निवृत्ति अने निरतिशयानंदनी प्राप्ति पर्यंत जे आत्मविज्ञान, तद्विषयक वाक्योनुं स्वतःज प्रमाणपणुं कोइथी खंडन करी शकायज नहि. वळी वेदान्तशास्त्रनुं प्रमाणपणुं अनुमाने करीने गम्य नथी के जेणे करीने अन्य ठेकाणे जोयेलां दृष्टांतोनी जरूर पडे! (एटले वेदान्तवाक्योनो ब्रह्मने विषेज समन्वय छे, माटे ब्रह्मने शास्त्रप्रमाणकपणुं सिद्ध थयुं.) ए प्रकारे ब्रह्म आत्मानी एकतारूप ज्ञान छे प्रयोजन जेमनुं, अने ब्रह्म आत्माना एकत्वने विषे तात्पर्ये करीने समन्वित (घटेलां) एवां वेदान्तवाक्योनुं कर्मोपासनाना संस्पर्श विनाज ब्रह्मने विषे पर्यवसान कथन कर्युं, अने ते ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, जगत्ना उत्पत्ति, स्थिति, लयनुं कारण ए वात पण कथन करी.

पांचमां सूत्रनी अवतरणिका.

त्यांहां सांख्यशास्त्रवाळा एम कहेछे के, यद्यपि सिद्ध ब्रह्मने विषे वेदान्तोनो समन्वय हो, तथापि ब्रह्मने विषे वाक्यपदोनी प्रवृत्ति शक्तिज अयुक्त छे; केमके अवाङ्मनस गोचर छे. वळी अनुमानादि प्रमाणे करीने अगम्य एवां ब्रह्मने विषे निर्विकारताथी कारणपणुं (जगत्कर्तृत्वादि) कहेवुं ते पण अयुक्त छे; वास्ते वेदान्तोनो ब्रह्मने विषे समन्वय नहि, किन्तु सर्गादि जे कार्य ते जडप्रकृतिक एटले जड छे कारण जेनुं एवुं कार्यत्वरूप हेतुथकी जेम घट तेम; ए प्रकारे अनुमाने करीने गम्य एवुं जे त्रिगुणात्मक प्रधान तेने विषेज वेदान्तोनो समन्वय घटे एम मानेछे. वळी काणाद मतना अनुसारीओ तो " यतो वा इमानि " इत्यादि वाक्योथकीज ईश्वरने विषे निमित्त कारणतानुं अनुमान करेछे, अने परमाणुने विषे समवायि कारणपणुं मानेछे. ए प्रकारे बीजा पण बौद्धादि तार्किको " असद्वा इदमग्र आसीत् " इत्यादि वाक्याभासोने तथा जे वस्तु ते शून्यावसान छे एटले शून्यमांज पर्यवसान पामेछे, जेम दीप तेम; इत्यादि युक्त्याभा-

स्रोने अवलंबन करता छता वादिरूपे ब्रह्मना कारणपणामां दोष आपवा उभा थया; तेमां(१) निरीश्वरसांख्य कपिल, (२) सेश्वरसांख्य पातंजल,(३)वैशेषिक शास्त्र कणाद मुनि प्रणीत, (४) न्याय शास्त्र गौतम मुनि प्रणीत, (५) पाशुपत शास्त्र, (६) वैष्णव शास्त्र ए छ वादियो वेदान्तोना समन्वयमां श्रुतिना वाक्याभासवाळा पूर्वपक्षी (द्वैत मतवाळा); तथा(१)बौद्ध, (२) आर्हत, (३) चार्वाक ए त्रण वादी युक्त्याभासवाळा (नास्तिक मतवाळा).

त्यांहां पद, वाक्य, प्रमाणने विषे कुशल एवा श्री व्यास भगवान् वेदान्तवाक्योनां ब्रह्मपरत्वने देखाडवाने अर्थे वाक्याभास अने युक्त्याभासनां प्रतिपादनोने पूर्व पक्षरूप गणीने तेमनुं निराकरण करेछे. तेमां सांख्यो त्रिगुणात्मक अचेतन प्रधानने जगत्नुं कारण मानता छता सिद्धान्तिप्रत्ये कहेछे के, तुं सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ब्रह्मने विषे जगत्नुं कारणपणुं दर्शावनारां जे जे वेदान्तवाक्योने प्रमाणभूत कहेछे, परंतु ते ते वाक्यो प्रधानने विषे जगत्कारणत्वना पक्षने विषे पण घटावी शकायछे; शी रीते के, प्रधानने पण सर्वशक्तिमत्पणुं पोताना विकारोने

विषे घटेछे, तथा सर्वज्ञपणुं पण घटेछे; कहे प्रकारे के, हे वेदान्ति! तुं जे ज्ञानने मानेछे, ते ज्ञान तो सत्त्वगुणनो धर्म छे "सत्वात् संजायते ज्ञानं" ए स्मृतिनां प्रमाणथी; अने ते सत्त्वगुणना धर्मरूप ज्ञाने करीनेज कार्यकारणना संघातवाळा योगी पुरुषो 'सर्वज्ञ' ए प्रकारे प्रसिद्ध छे; सत्त्वगुणनो ज्यारे निरतिशय उत्कर्ष होय, त्यारेज सर्वज्ञत्व प्रसिद्ध छे. वळी कार्यकारण रहित केवळ उपलब्धिमात्र पुरुषने विषे सर्वज्ञपणुं अथवा किञ्चिज्ज्ञपणुं कल्पना करी शकायज नहि; अने प्रधान तो त्रिगुणात्मक छे वास्ते सर्व ज्ञानोनो कारणभूत सत्त्वगुण गुणनुं साम्यरूप प्रधानावस्थाने विषे पण विद्यमान छे; माटे जे अचेतन प्रधान तेने विषेज सर्वज्ञपणुं वेदान्तोमां उपचारथी कह्युंछे. वळी जगत्नी उत्पत्तिथी प्रथम सर्व कारकोथी रहित एवुं ब्रह्म तें इच्छ्युं छे, पण ते काळने विषे ज्ञाननां साधन शरीर इंद्रियादिना अभावथी ब्रह्मने विषे ज्ञाननी उत्पत्तिज संभवे नहि. वळी त्रिगुणात्मक प्रधानने विषे परिणामपणुं पण संभवेछे, माटे मृदादिकनी पेठे कारणपणुं पण तेनेज घटे, संघात रहित एक ब्रह्मने विषे कारणपणुं संभवे

नहि. ए रीते वादिनो पूर्व पक्ष थये छते सूत्रकार तेनुं निराकरण करेछे.

" ईक्षतेर्नाशब्दम् " ५.

अर्थः— सांख्य मतवाळाये कल्प्युं एवुं अचेतन प्रधान जगत्नां कारणत्वरूपे वेदान्तोमां आश्रयण करी शकाय नहि; केमके ते अशब्द छे एटले श्रुतिये अप्रतिपादित छे अने ईक्षणकर्तृत्व जडने संभवे पण नहि; तथा श्रुतिमां तो जगत्ना कारणने विषे ईक्षणकर्तृत्व कह्युंछे एटले विचार पूर्वक सृष्टिकर्तृत्व कह्युंछे; तेविषे श्रुतिः— " स देव सोम्येदमग्र आसीत् " " एकमेवाद्वितीयं " ए प्रकारे उपक्रम करीने " तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय " "तत्तेजोसृजत " इत्यादि श्रुतियोमां इदं शब्दे करीने वाच्य एवुं नाम रूपात्मक जगत्ने उत्पत्तिथकी पूर्वे सद्रूपे अवधारण करीने तेज सत् शब्दे वाच्य कारणने विषे ईक्षण पूर्वक तेज आदि कार्योनुं स्रष्टापणुं दर्शाव्युं छे; तथा "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चनमिषत्" "सऽऐक्षतलोकान्नुसृजा" इति "सऽइ-

माँल्लोकानसृजत " इति; आ श्रुतियोमां पण ईक्षण पूर्वक सृष्टि कथन करीछे; तथा षोडश कलावान् पुरुषने लईने अन्य श्रुति कहेछे के " स ईक्षाञ्चक्रे " " स प्राणमसृजत " आ श्रुतिमां पण ईक्षण पूर्वक सृष्टि कर्तृत्व कह्युंछे. हवे जे वादिये कह्युं हतुं के 'सत्त्वगुणनो धर्म जे ज्ञान तेणे करीने प्रधान सर्वज्ञ कहेवाशे' ते घटतुं नथी; केमके प्रधान अवस्थामां त्रण्ये गुणोना साम्यथी सत्त्वनो धर्म ज्ञान संभवेज नहि. वळी वादिये कह्युं हतुं के 'सर्व ज्ञान शक्तिमत्त्वे करीने प्रधान सर्वज्ञ कहेवाशे' ते पण घटे नहि; केमके हे वादि ! ज्यारे तुं गुण साम्य अवस्थाने विषे पण सत्त्वाश्रित ज्ञानशक्तिने लेईने प्रधानने सर्वज्ञ मानेछे, त्यारे रज तममां रहेली ज्ञाननी प्रतिबंधकता शक्तिने लेईने किञ्चिज्ज्ञपणुं पण केम कहेतो नथी ? वळी साक्षी रहित केवळ सत्त्ववृत्ति कंइ पण जाणी शकती नथी; केमके अचेतन प्रधानने साक्षीपणुं होयज नहि; वास्ते प्रधानने तुं जे सर्वज्ञ मानेछे ते अत्यंत अयुक्त छे. शंकाः— साक्षीनिमित्त ईक्षणकर्तृत्व प्रधानमां पण कल्पना करीशुं; जेम अग्निनिमित्त दाहकर्तृत्व लोहपिंडमां कल्पायछे तेम. उत्तरः— साक्षी

निमित्त ईक्षण कर्तृत्व गौण लेईने प्रधानने जगत्कारण कहेवुं, तेना करतां सर्वज्ञ एवुं मुख्य ब्रह्म जगत्नुं कारण कहेवुं एज युक्त छे. वळी वादिये जे कह्युं हतुं के 'मृदादिकनी पेठे परिणामि प्रधाननेज कारणपणुं घटे' ते पण 'अशब्दं' एटले अश्रौतपणाथीज अयुक्त जाणवुं.

ए रीते सांख्य मतना खंडनना न्याये करीनेज उपर कहेला वाक्याभास, तथा युक्त्याभास लईने द्वैत प्रतिपादन करनारा सर्वे वादियोना मतनुं श्रुति युक्ति विगेरेथी खंडन करीने एक अद्वैत ब्रह्म श्री व्यास भगवाने प्रतिपादन कर्युंछे. उपर प्रमाणे पांचे सूत्रोनो अभिप्राय छे.

त्यांहां स्वाराज्यसिद्धिनो श्लोकः—

(अवतरणिका.)

चौदमा श्लोकमां " अथातो ब्रह्मजिज्ञासा " ए सूत्रे करीने चित्तशुद्धिथी अनन्तर साधनचतुष्टय संपन्न एवा मुमुक्षु अधिकारीने ब्रह्म विचारनो उपक्षेप कर्यो; त्यांहां वादियोये ब्रह्म विचारनो आक्षेप (निषेधरूप विप्रतिपत्ति) देखाडे छते सिद्धान्ती सर्व वादिओनो पराजय करीने स्वमतनां प्रतिष्ठापनने अर्थे जिज्ञासा सूत्रमां सन्निहित एवा तत्पदार्थनां व्यवस्थापननी द्वाराये

उपक्रम करता छता सर्व जगत्नां अभिन्ननिमित्तोपादानरूप कारणत्वे करीने उपलक्षित एवां सच्चिदानंदस्वरूप अद्वय प्रत्यक् अभिन्न श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मने विषे सर्व वेदान्तोना समन्वयनां प्रदर्शने करीने समस्त शास्त्रार्थनो संग्रह छे जेमां एवी उत्तर त्रिसूत्रीने अर्थथी कथन करता छता प्रतिज्ञा करेछे. (श्लोक.)

यस्मादुत्पत्तिगुप्तिक्षतिरपि जगतां
यच्च शास्त्रैकयोनिः सर्वज्ञं मायया
यत्सहजसुखसदद्वैतसंवित्स्वरूपम् ।
तद्ब्रह्मस्वप्रकाशं श्रुतिशिखरगिरां
सैव तात्पर्यभूमिः स्वात्मासौ यं
विदित्वा जनिमृतिजलधिं निस्तरन्तीह संतः ॥ १ ॥

अर्थः— अभिन्ननिमित्तोपादानरूप जेथी जगत्नी एटले हिरण्यगर्भथी आरंभीने चतुर्विध भूतग्राम पर्यंतनी अथवा आकाशादि स्थूल शरीर पर्यंत कार्यवर्गनी ‘ उत्पत्ति ’ (तादात्म्ये करीने आविर्भाव), तथा ‘ गुप्ति ’ (पालन), तथा ‘ क्षति ’ (कारणमात्र परिशेषरूप तिरोभाव)

होयछे ते ब्रह्म; ए रीते " जन्माद्यस्य यतः " ए सूत्रमां देखाडेलुं लक्षण कथन कर्युं, अने उभयविधकारण ब्रह्मज छे, प्रधानादिक नहि ए रीते प्रतिज्ञा पण देखाडी; वळी सूत्रः—

" प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टांतानुपरोधात् "

(अर्थः— ब्रह्म केवळ निमित्तकारणज नहि किंतु उपादान पण अवश्य मानवुं जोइये; केमके तेम माने छतेज श्रुतिप्रसिद्ध प्रतिज्ञा अने दृष्टांतनी साथे विरोध आवे नहि.) तेमां " उतत-मा देशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति " आ श्रुतिमां एक विज्ञाने करीने सर्व विज्ञाननी प्रतिज्ञा प्रतीत थाय छे ते ब्रह्मने उपादान माने छतेज घटे, अन्यथा नहि; तथा " यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् " आ श्रुतिमां मृत्तिकानुं दृष्टांत कह्युंछे ते पण ब्रह्मने उपादान मानेथीज घटे, अन्यथा नहि; तथा ब्रह्मनेज निमित्तकारण पण अवश्य मानवुं जोइये; केमके जेम लोकमां उपादानभूत मृत्तिकादिकनो अधिष्ठाता अन्य कुळालादिक छे तेम उपादानभूत ब्रह्मनो

अधिष्ठाता अन्य कोइ छे नहि; केमके " स देव-सोम्ये दमग्रआसीत् " ए श्रुतिमां जगदुत्प-त्तिथी पूर्वे अद्वितीय ब्रह्मनुंज अवधारण कर्युंछे माटे ब्रह्मने विषेज अभिन्ननिमित्तोपादानत्व अंगीकार करवुं ते युक्त छे. मूळ सूत्रमां जे 'आदि' पद छे तेणे करीने स्थिति अने लय ए बेनुंज ग्रहण करवुं; केमके सूत्रस्थ 'यतः' ए पदे करीने "यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति " ए श्रुतिमां दर्शावेलां मूळकारणने अधीन एवां जन्मादि त्रयनीज प्रत्यभिज्ञा छे; पण यास्क मुनिये देखाडेला अने अवान्तर कारणने अधीन एवा " जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति. " एटले छ भाव विकारोनुं ग्रहण नहि एवुं जणाववा माटे श्लोकमां 'उत्पत्ति गुप्ति क्षतिः' ए त्रणनुं उपादान कर्युंछे. मूळकारणना लाभने अर्थे सूत्रमां जे 'यतः' ए तसिल् प्रत्ययांत पद छे तेथकीज " जनिकर्त्तुः प्रकृतिः " ए पाणिनिनां सूत्रनां बळथी उपादानत्वनो लाभ थये छते जे स्थिति लयनुं ग्रहण कर्युं, ते लक्षण त्रयना संग्रहने अर्थे

एम केटलाएक कहेछे; बीजा तो निमित्तमात्रने विषे पण पंचमी विभक्तिनुं अनुशासन छे, माटे जे लयनुं आधारत्व कह्युं ते उपादानत्वना लाभने अर्थे, अने स्थितिनुं कारणत्व जे कह्युं, ते तो चेतनत्वना लाभने अर्थे, माटे जन्मादि त्रयनां ग्रहणे करीने लब्ध थयुं जे अभिन्ननिमित्तोपादान कारणत्व तेज लक्षण एम कहेछे; वास्तवथी तो जे लक्षण ते लक्ष्यना परिचयने अर्थे छे, अने जे अद्वितीय एवुं लक्ष्य ते अध्यारोप अपवादे करीने कार्यवर्गने विषे मिथ्यात्वनो निर्णय विना परिचय करी शकातुंज नथी; माटे मिथ्यात्वना निर्णये करीने लक्ष्यना परिचयमां उपयोगी होवाथी जन्मादि त्रयनुं ग्रहण कर्युंछे. अचिन्त्य जेनी रचना एवां सर्व जगत्नुं रचन अचेतन एवां प्रधानादिकथी रची शकायज नहि, माटे सर्वज्ञ, सर्वशक्ति संपन्न एवुं श्रुत्युक्त ब्रह्मज जगत्नुं कारण सिद्ध थायछे, ए तात्पर्यार्थ.

जगत्नी रचनाथी कारणने विषे सर्वज्ञत्वादिक सिद्ध थायछे एटलुंज नहि; किंतु सृज्यनुं एकदेशभूत अने सर्व पदार्थोना प्रकाशनने विषे समर्थ अने समस्त एवां विद्यास्थानोये करीने उपबृंहित एवां ऋग्वेदादिरूप शास्त्रनुं जे पुरुष निश्वास-

नी पेठे अनायासे करीने प्रकाशन, ते पण कारणने विषे सर्वज्ञत्वादिक धर्मने साधवामां समर्थ छे; एवा अभिप्राये गर्भित एवां "शास्त्रयोनित्वात्" ए सूत्रने अर्थथकी पठन करेछे के 'यत्र शास्त्रैकयोनिः' एटले जे ब्रह्म ऋग्वेदादिक शास्त्रनुं एक जनक होवाथी पण सर्वज्ञ छे; अथवा "जन्माद्यस्य यतः" ए सूत्रे करीने तथा तेनी मूळभूत "यतोवा इमानि" ए श्रुतिये कारणने विषे कार्यलिंगक अनुमानरूप प्रमाण प्रदर्शन कराव्युं, ते अनुमानथी प्रधानादिकने विषे पण कारणपणुं प्राप्त थशे एवी वादिनी आशंका थये छते "शास्त्रयोनित्वात्" ए सूत्रनां अर्थांतरने कहेछे के, जे ब्रह्म एक शास्त्रज छे योनि (प्रमाण) जेनुं एवुं छे. 'शास्त्रैकयोनिः' एटले ब्रह्म वेदैक प्रमाणक छे; केमके "नावेदविन्मनुते तं बृहंतम्" (वेदनो नहि जाणनार पुरुष ते व्यापक परमात्माने जाणी शके नहि.) "तन्त्वौपनिषदम्पुरुषम्पृच्छामि" (केवळ उपनिषद्थीज गम्य एवा पुरुषने एटले आत्माने, तुंने हुं पुछुंछौं.) इत्यादि श्रुतिये ब्रह्मने शब्दथी इतर प्रमाणोनुं अगोचर कह्युंछे. शंकाः— अ-

नुमाननी द्वारायेज श्रुति ब्रह्मनुं प्रतिपादन करेछे एवी कल्पनाथी ब्रह्मने अनुमाननुं गोचरपणुं संभवशे. समाधानः– साक्षात् ब्रह्मनां बोधनने विषे समर्थ एवी श्रुतिने अनुमान द्वारा बोधकत्व कल्पना करवुं, तेमां कांइ पण प्रयोजन नथी; तथा एवी कल्पनामां श्रुतिने अनुमाननीज अनुवादक होवाथी अप्रामाण्य प्राप्त थशे, माटे ए कल्पना अनुचित छे. वळी जे कार्य ते कारणनां अस्तित्वमात्रने विषे लिंग (हेतु) छे, पण प्रधानज अथवा ब्रह्मज कारण ए रीते विशेष निर्णयमां लिंग नथी; केमके बहु एवा तार्किकोए अन्यथा अन्यथा कल्पना करीछे,अने विशेषना निर्णयमां हेतुनो अभाव पण छे. ब्रह्म जगतनुं कारण कही शकायज नहि; केमके "अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घं" "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते" "तदेतद्ब्रह्मा पूर्वमनपरमनंतरमबाह्यं" इत्यादि श्रुतिओए ब्रह्मने विषे सर्व धर्मशून्यत्वनुं प्रतिपादन कर्युंछे. यद्यपि ब्रह्म निर्धर्मक छे तथापि "यतो वा" इत्यादि सृष्टि वाक्योनां प्रामाण्यथी ते जेम दुग्धादि दध्यादि भा-

वे करीने परिणाम पामेछे; तेम जगदाकारें करीने परिणाम पामे एम तमे मानशो तो, कृत्स्न परिणाम माने छते जगत्थी अतिरिक्तताये करीने ब्रह्मने असत्त्वनोज प्रसंग आवशे; जो कदा एकदेशे करीने परिणाम अंगीकार करशो तो, निरवयवत्वनुं प्रतिपादन करनारी श्रुतिनो व्याकोप थशे; वळी कृत्स्न अने एकदेश बन्ने पक्षमां ब्रह्मने विषे अनित्यत्त्वनो प्रसंग पण आवशे एवी वादिनी शंका थये छते कहेछे के, 'मायया' एटले "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं" इत्यादि श्रुतिनां प्रामाण्यथी अघटित अर्थनां घटनने विषे समर्थ एवी मायाये करीने ब्रह्मने विषे कारणत्वादि धर्मो संभवेछे. अभिप्राय ए छे के, जो कदा परिणामवादनुं आश्रयण करीने सर्व पण कार्यवृंद कारणनी साथे समान छे सत्ता जेनी एवुं अंगीकार कर्युं होय, त्यारे तो कृत्स्न परिणाम अथवा एकदेश परिणाम पक्षने विषे पूर्वोक्त दोष प्रसक्त थाय; परंतु अमो परिणाम पक्ष अंगीकार करता नथी, किंतु वि-

१ "कारणेन समसत्ता कोन्यथा भावः परिणामः" अर्थः– कारणनी जोडे समान छे सत्ता जेनी एवो जे अन्यथा भाव ते परिणाम. जेम हेमनुं कुंडल.

वर्तवादनुं आश्रयण करीये छैये, माटे रज्जु आदिकने विषे सर्पादिकनी पेठे अविकृत एवांज वस्तुने विषे अज्ञानथी अध्यास कर्युं एवुं कार्यवृंद वस्तुताथी अधिष्ठाननो स्पर्श करतुंज नथी, वास्ते तेने दूषित करवाने समर्थ छे नहि. अद्वितीय वस्तुने विषेज जगत्‌नां कारणत्वना निर्वाहने अर्थे कल्पी एवी माया धर्मिग्राहकमानथी (सृष्टिश्रुतिनां प्रामाण्यथी) अने अधिष्ठाननी सत्ताथी मिथ्याभूतज सिद्ध थायछे, माटे मिथ्याभूत मायाये कर्युं एवुं जे जगत्कारणत्व तेणे करीने ब्रह्मनें विकारिपणुं प्रसक्त थायज नहि. त्यांहां भाष्यः—

" यत्र हि यदध्यासस्तद्कृतेन दोषेण गुणेन वाऽणुमात्रेणापि स न संबध्यत इति "

अर्थः— जेने विषे जे अध्यास कर्युं ते अधिष्ठान ते अध्यस्तना अणुमात्र पण गुणे करीने वा दोषे करीने संबंध पामतुं नथी.

त्यारे वास्तवथी ब्रह्मनुं स्वरूप केवुं? एवी आकांक्षा थये छते "यतो वा" ए वाक्ये करीने उपक्रम करेलां जगत्कारणत्वनुं निगमन (उपसंहार) करनार एवां "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजा-

नात् ” ए वाक्यथी तथा ब्रह्म वल्लीमां स्थित एवा “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ” ए मंत्रथी सत्, चित्, आनन्द ब्रह्मनुं स्वरूप छे. ते स्वरूपलक्षणने कहेछे के, जे सहज (स्वाभाविक) एवुं सुख (परमानन्द) एज मिथ्याभूत सर्व प्रपञ्चना बाधनुं अवधिभूत छे माटे सत्य अने एज हेतुथी अद्वैत (द्वैत रहित) तथा निरावरणस्फूर्त्तिस्वभावथी संवित्स्वरूप एवुं जे वस्तु ते ब्रह्म. त्यारे ते ब्रह्मनुं ग्राहक कोण ? एवी शंकानां निराकरणने अर्थे कहेछे के, ते ब्रह्म स्वप्रकाश छे एटले भारूप होवाथीज जेम एक दीप अन्य दीपनी अपेक्षा करतो नथी तेमज ब्रह्म स्व अने पर प्रकाशने विषे ज्ञानान्तरनी अपेक्षाये रहित छे. उक्त स्वरूप ब्रह्मने विषे सर्व वेदान्तोनां तात्पर्यनुं पर्यवसान देखाडनार “ तत्तुसमन्वयात् ” ए सूत्रनुं अर्थथी पठन करेछे के–‘ श्रुति शिखरगिरां ’ एटले “ तं हत्रीन् गिरिरूपा नविज्ञातानिव दर्शयांचकार” आ श्रुत्यंतरने विषे वेदोने पर्वतना आकारे प्रदर्शननी प्रसिद्धि छे माटे पर्वतरूप वेदोनां शिखररूप जे वाक्योनी अर्थात् सर्व वेदान्तवाक्योनी ‘तात्पर्यभूमि’ एटले परम विश्रां-

ति स्थान, 'सैव' एटले ते ब्रह्मज छे. पूर्वोक्त प्रकारनुं ब्रह्म हो, तेणे करीने अमारे शो अर्थ? एवी शंका थये छते परम पुरुषार्थने विषे पर्यवसान पामनार वाक्यार्थने देखाडेछे के, ए पूर्वोक्त ब्रह्म 'स्वात्मैव' एटले स्वकीय प्रत्यगात्मस्वरूपज छे, तटस्थ नहि. जे स्वतःसिद्ध ब्रह्मथी अभिन्न प्रत्यगात्मस्वरूपने 'विदित्वा' एटले श्रवणादि उपाये साक्षात्कार करीने 'संतः' एटले शान्त्यादि संपन्न अधिकारीओ 'जनिमृतिजलधिं' एटले जन्ममरणे करीने उपलक्षित एवा अनन्त दुःखरूप समुद्रने आज जन्मने विषे एटले जे काळे ज्ञानोदय होय तेज काळे 'निस्तरन्ति' एटले निःशेषे करीने तरेछे; अर्थात् जीवन्मुक्त थइने पुनः संसारने पामे नहि.

सूत्रना चारे अध्यायनो संक्षेपमां निष्कृष्ट अर्थ.

श्री व्यास भगवान् सूत्रकार "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" १ ए सूत्रे करीने मुमुक्षु पुरुषे त्रिविध परिच्छेद रहित प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मनो विचार करवो एवी प्रतिज्ञा करीने पछी विचारवा योग्य ब्रह्मनुं लक्षण शुं अने प्रमाण शुं? एवी आकांक्षा थये छते "जन्माद्यस्य यतः" २ ए सूत्रथी लक्षणनो तथा "शास्त्रयोनित्वात्" ३

ए सूत्रथी प्रमाणनो उपन्यास करीने, शास्त्र तो कार्यपर छे, माटे सिद्धब्रह्मपरता केम संभवे? एवी वादिनी शंका थये छते "तत्तु समन्वयात्" ४ ए सूत्रे करीने शास्त्रने कार्यपरतानो निरास पूर्वक सिद्धब्रह्मपरतानुं बहु प्रकारनी अनेक युक्तिथी प्रतिपादन कर्या नंतर "ईक्षतेर्नाशब्दम्" ५ ए अधिकरणे करीने प्रधानने विषे जगत्कारणतानुं खंडन अने ब्रह्मने विषेज सर्व वेदान्तोनां गतिसामान्यनी प्रतिज्ञा करीने तेज गतिसामान्यने "आनन्दमयोऽभ्यासात्" ६ अहींथी आरंभीने प्रथम, द्वितीय अने तृतीय पादे करीने अन्यार्थत्वनी शंकानो निरास पूर्वक उपपादन कर्या नंतर चोथा पादमां केटलांएक अधिकरणथी प्रधानने विषे अशब्दपणानो एटले अवैदिक प्रतिपादितपणानो विस्तार करीने प्रमाणनो उपन्यास एटले कथन कर्याथी अनन्तर "प्रकृतिश्चप्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्" ए अधिकरणथी ब्रह्मने विषे जगत्नुं उपादानपणुं तथा निमित्तपणुं एटले अभिन्ननिमित्तोपादानपणानुं व्याख्यान करीने पेहेला समन्वयाध्यायनी समाप्ति करता हवा.

त्यार पछी बीजा अध्यायमां पेहेला पादे करीने पोताना सिद्धान्त पक्षमां सांख्य, योग, वैशेषिकादिकनी स्मृतियोना विरोधनो परिहार करीने ते सांख्यादिये अद्वैत समन्वयने विषे उद्भावन (प्रकट) करेला सर्व तर्क विरोधने पण सम्यक् प्रकारे परिहार करता हवा. त्यार पछी द्वितीय पादे करीने सांख्य, वैशेषिक, नैयायिक, बौद्ध, क्षणिक, पाञ्चरात्रादिकना पक्षोने विषे अत्यंत निःसार युक्त्याभासे करीने कल्पितपणुं स्फुट केटलांएक अधिकरणे करीने दर्शाविने तेमणे मानेला तटस्थ ईश्वरने पण प्रमाण युक्तिनां राहित्यथकी निरास करता हवा. त्यार पछी तृतीय पादे करीने भूतभोक्तानी प्रतिपादक श्रुतिना तथा चतुर्थ पादे करीने लिंग देहनी श्रुतियोना परस्पर विरोधने निराकरण करता हवा; ए प्रकारे अद्वैतने विषे समन्वयना विरोधने निरास करीने बीजा अविरोधाध्यायनी समाप्ति करता हवा.

त्यार पछी त्रीजा साधनाध्यायमां पेहेला पादे करीने संसारी जीवनी आ लोक पर लोकमां गति आगतिनुं निरूपण पूर्वक संसार दोषथी विवेचना करीने अधिकारीनुं विशेषणभूत वैराग्यने दृढ कर्या पछी द्वितीय पादे वाक्यार्थज्ञान-

मां अंगपणाए करीने जाग्रदादि अवस्थाओथी विवेचना कर्या नंतर शुद्ध त्वंपदार्थने देखाडीने पछी सकळ द्वैत प्रपंचनो निरास पूर्वक तत्पदार्थने पण विवेचना करी देखाडता हवा. त्यार पछी तृतीय पादे विद्याना भेद अभेदे करी गुणना उपसंहार अनुपसंहारने देखाडता छता चतुर्थ पादना " पुरुषार्थोन्तः शब्दादिति बादरायणः " ए प्रथमाधिकरणे करीने कर्मथकी निरपेक्ष एवां ब्रह्मज्ञाननेज मोक्षनी साधनतानुं प्रसाधन करीने अने ते ब्रह्मज्ञाननी उत्पत्तिने विषे संन्यास शान्त्यादि अन्तरङ्ग साधनोने तथा यज्ञ दानादि बहिरङ्ग साधनोने देखाडीने ज्ञानना साधनोनो अनुष्ठान करनार अधिकारी पुरुषने " असति प्रतिबन्ध इहैव फलं सति च तस्मिन्नमुत्र च " ए छेल्लां अधिकरणे फल देखाडीने तृतीय साधनाध्यायनी समाप्ति करता हवा.

त्यार पछी चतुर्थ फलाध्यायना पेहेला पादमां " आवृत्तिरसकृदुपदेशात् " ए अधिकरणे करीने ब्रह्मसाक्षात्कार पर्यंत श्रवणादिकनी आवृत्तिने कर्त्तव्यताये देखाडीने " आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च " ए अधिकरणे करीने

जीव ब्रह्मनी ऐक्यतारूप अखंडवाक्यार्थने सम्यक् प्रकारे देखाड्या पछी सगुण निर्गुणोपासक जीवत् पुरुषने विषे पापपुण्यनो विनाशरूप मुक्ति देखाडीने, अनन्तर सगुण ब्रह्मना उपासक पुरुषने क्रम मुक्तिनुं कथन करीने, द्वितीय पादे तेज सगुणोपासकना उत्क्रान्ति प्रकारनुं वर्णन कर्या पछी त्रीजा पादे करीने तेज सगुणोपासकने उत्तर मार्गनो विचार पूर्वक कार्यब्रह्मनी प्राप्ति देखाडीने तथा निर्गुण ब्रह्मवेत्ता पुरुषने गतिउत्क्रान्तिनो प्रतिषेध करीने, अनन्तर चतुर्थ पादे ब्रह्मात्मानी ऐक्यताये अवस्थानरूप निर्गुण विद्यानुं फल वर्णन करीने अने सगुण विद्यानुं फलभूत ब्रह्म लोकने विषे ऐश्वर्य उपपादन करीने, अन्ते ते सगुणवेत्ताओने " अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात् " ए सूत्रनी मूलभूत श्रुतिः—

" न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते "

ए रीते ब्रह्मोपदेशे करीने मुक्ति देखाडीने उपराम पामता हवा.

इति श्री मदुदयशंकरात्मज गौरीशंकर विरचिते स्वरूपानुसंधाने षष्ठी प्रक्रिया समाप्ता. ६

अथ श्री स्वरूपानुसंधाने
सप्तम प्रक्रिया प्रारंभः ७.

स्मृति प्रस्थान.

जेनां के (१) श्री मद्भगवद्गीता, (२) श्री विष्णुसहस्रनाम, (३) श्री सनत्सुजातीय ए त्रण भाष्य छे; तेमां प्रथम–

(१) श्री मद्भगवद्गीता भाष्यना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

" ॐ नारायणः परोऽव्यक्तादण्ड-
मव्यक्त संभवम्। अण्डस्यान्तस्त्वि-
मे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥१॥ "

कर्मनिष्ठा अने ज्ञाननिष्ठा ते मध्ये कर्मनिष्ठा उपायभूत छे, अने ज्ञाननिष्ठा उपेयभूत छे; ए बन्ने निष्ठाने अधिकार करीने प्रवृत्त थयेलां गीता-शास्त्रने व्याख्यान करवाने इच्छता भगवान् श्री

भाष्यकार, विघ्नोनी शांति आदि प्रयोजननी सिद्धि तथा शिष्टाचारनां प्रतिपालनने अर्थे इष्टदेवतातत्त्वनुं अनुस्मरणरूप मंगलाचरणने संपादन करता छता, नारायण पदथी बाकी एवां पदे करीने आ गीताशास्त्र उपनिषद्रूपज छे तेनी साथे इतिहास पुराणोनी पण एकवाक्यता करवाना अभिप्रायथी, अंतर्यामि छे विषय जेमां एवा एक पौराणिक श्लोकनुं उदाहरण आपेछे.

'ॐनारायण' इति. नर एटले जे ईश्वरपुरुष तेथी उत्पन्न थनार आप्[1] नारा कहेवायछे; ते नारा एटले जल जे भगवान्नुं अयन(शयन स्थान)रूप छे, माटे ते भगवान् नारायण कहेवायछे; ए रीते नारायण शब्दनो अर्थ स्थूळदृष्टि पुरुषोये कह्योछे.

सूक्ष्मदृष्टि पुरुषो तो नारायण शब्दार्थनुं व्याख्यान करेछे के 'नर' शब्दे करीने स्थावर जंगमरूप सर्व शरीरो कहेवायछे, अने ते 'नर' एटले शरीरोने विषे नित्ये सन्निहित एवा जे चिदाभासो ते 'नार' कहेवायछे; ते नारोनो एटले चिदाभासोनो जे 'अयन' (आश्रय) अ-

---

१ " अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमथाक्षिपत् । तदंडमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ १ ॥ "

र्थात् नियामक एवो जे अंतर्यामी ते नारायण कहेवायछे. जे नारायणने उद्देश करीने नारायणाख्य अंतर्यामि ब्राह्मण वेदान्तोमां पठन कर्युंछे, ए नारायण पदे करीने गीताशास्त्रमां प्रतिपादन करवा योग्य एवुं जे उत्कृष्ट तत्त्व ते श्री भाष्यकारे उपदेश कर्युं. त्यांहां शंकाः— परमात्माने मायाना संबंधथी अन्तर्यामिपणुं अने शास्त्रप्रतिपाद्यपणुं कहेवुं जोइए; अन्यथा एटले एम नहि मानीये तो निर्विकार, असंग, अविषय, अद्वितीय एवा परमात्माने विषे अंन्तर्यामित्व अने शास्त्रप्रतिपाद्यत्व घटे नहि, माटे मायानो संबंध अंगीकार कर्ये छते शुद्धतानी असिद्धि प्राप्त थइ; तेम छतां गीताशास्त्रना व्याख्यानना प्रारंभने विषे परदेवता(शुद्धस्वरूप)नुं स्मरण केम संभवे ? शुद्ध तत्त्वनुं जे स्मरण तेज अभीष्ट फलनी पेठे अभिष्ट होवुं जोइए! समाधानः— 'परोऽव्यक्तात्' एटले जे नारायण अव्यक्त(माया)थी पर छे एटले मायाना संस्पर्शे रहित छे त्यांहां श्रुतिः— " अक्षरात्परतः परः " (हिरण्यगर्भादिकनी अपेक्षाये पर एवुं जे अक्षर

१ " आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनःपुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ १ ॥"

एटले अव्याकृत तेथी पण परमात्मा पर छे.)यद्यपि वास्तव स्वरूपे मायासंबंधनो अभाव छे तो पण कल्पित मायासंबंधनो अंगीकार करीने अंतर्यामित्व शास्त्रप्रतिपाद्यत्व कह्युंछे एम समजवुं. जे अव्याकृतथी ईश्वरनो व्यतिरेक एटले पृथक्पणुं विवक्षित छे ते अव्यक्त यद्यपि साक्षिसिद्ध छे तो पण कार्यलिंगक अनुमानने कहेछे 'अंडमव्यक्त संभवम्' ए पदे करीने. शी रोते के अपंचीकृत एवां जे पंचभूतो तदात्मक एवुं जे हिरण्यगर्भ तत्त्व ते अंड कहेवायछे, अने ए अंड पूर्वोक्त एवां अव्यक्तथी उत्पन्न थायछे. श्रुति स्मृतियोमां पण मूल कारण अव्यक्तथी हिरण्यगर्भनी उत्पत्ति प्रसिद्ध छे; तेम छतां हिरण्यगर्भरूप कार्यलिंगे करीने कारणभूत अव्यक्तनी सिद्धि थइ. यद्यपि श्रुतिस्मृतियोथी हिरण्यगर्भ जाणवामां आवेछे; तथापि तेने विषे कार्यलिंगक अनुमान पण छे एम मानता छता उत्तरार्द्धे करीने विराट्नी उत्पत्ति देखाडेछे. पूर्वोक्त एवां हिरण्यगर्भाख्य अंडनी अंदर विराडात्मक एवा आ भूरादि लोको रहेछे. जे कार्य ते कारणनी अंदरज रहेछे माटे हिरण्यगर्भनी अंदर रहेनारा विराडात्मक एवा भूरादि लोको हिरण्यगर्भे स्रज्या छे ए रीते

विराट्रूप कार्यलिंगे करीने हिरण्यगर्भरूप कारणनी सिद्धि थई. भूरादि लोकोनेज पंचीकरण करेलां एवां जे पंचभूतो, तदात्मक जे विराट् तद्रूपे करीने 'सप्तद्वीपा' ए चोथा पादे करीने व्युत्पादन करेछे. "सा पृथिवी अभवत्" आ श्रुतिमां पृथिवी शब्दे करीने विराट्नुं कथन कर्युंछे, माटे सप्तद्वीपवाळी मेदिनीये करीने सर्व लोकात्मक एवो विराट् जाणवो. च शब्दे करीने पूर्वे हिरण्यगर्भाख्य अंडनी अंदर विराट्नी स्थिति कथन करी हती तेनी साथे एनी उत्पत्तिनो समुच्चय सूचन कर्योछे. हि एटले निश्चे परमात्माज मायाद्वाराये सर्व जगत्नुं उत्पादन करीने पछी स्वस्वरूपनां ज्ञानवडे स्वस्वरूपमांज अंतर्भाव करीने अखंड, एकरस, चिदात्मस्वरूपे स्वमहिमाने विषे रहेछे ए तात्पर्य.

आ श्लोकमां नारायण पदे करीने ब्रह्मात्मैक्यरूप विषय सूचन कर्यो; शी रीते के, जे नार एटले चिदाभास जीवो ते त्वं पदना वाच्यार्थ छे; तेमनो अयन एटले आश्रयभूत जे नारायण ते तत्पदनो वाच्यार्थ छे; तेम छतां कल्पितने अधिष्ठानथी अनतिरिक्त होवाथी शुद्ध लक्ष्यांशमात्रने लइने जीव ब्रह्मनी एकतारूप विषय सूचन

कर्यो; तेणे करीने अर्थात् विषयविषयिभाव संबंध पण ध्वनित कर्यो. 'परोव्यक्तात्' ए पदे करीने मायासंस्पर्शना अभावनां कथनथी सर्वानर्थनी निवृत्ति अने निरतिशयानंदनी प्राप्तिरूप मोक्षाख्य प्रयोजन पण सूचन कर्युं; अने तेणे करीने ते मोक्षनी कामनावाळो साधन संपन्न जे पुरुष ते अधिकारी पण द्योतन कर्यो. अवशिष्ट एवा 'तु' शब्दे करीने परमार्थ वस्तुने विषे वास्तव एवुं अद्वितीयत्व सूचन कर्युं; अने तेणे करीने परमार्थ वस्तुद्वाराये ज्ञाननिष्ठाने परम विषयत्व अने तेनी उपायभूत कर्मनिष्ठाने अवांतर विषयत्व पण अर्थात् कथन कर्युं एम अवधारण करवुं.

ते नारायण भगवान् आ जगत्ने स्त्रजीने तेनी स्थिति(प्रतिष्ठा)ने करवानी इच्छा करता छता प्रथम मरीच्यादि प्रजापतिओने स्त्रजीने तेमनी पासे वेदोक्त एवा कर्मनिष्ठारूप प्रवृत्ति लक्षण धर्मने ग्रहण करावता हवा. त्यार पछी बीजा सनकादिक मुनिओने स्त्रजीने तेमनी पासे ज्ञान वैराग्य लक्षण निवृत्ति धर्मने ग्रहण करावता हवा. ते धर्मनो दीर्घ काळे ह्रास थये छते अने अधर्मनी वृद्धि थये छते, वर्णाश्रमोनां असं-

रूपणाने पालन करवाने इच्छता श्री नारायण भगवान् वसुदेवथी देवकीने विषे कृष्णरूपे प्रकट होता हवा. ते श्री कृष्ण शोकमोहरूप महोदधिने विषे निमग्न एवा अर्जुनने अधिकारी करीने सर्व लोकोना अनुग्रहने अर्थे कर्मनिष्ठा अने ज्ञाननिष्ठारूप द्विविध[1] धर्मने उपदेश करता हवा. ते निष्ठाद्वयने व्यास भगवान् गीताख्य सप्तशत श्लोकरूपे करीने निबंधन करता हवा.

भाष्यकार कहेछे के, सर्व वेदोनो सारसंग्रहरूप ए गीताशास्त्रनुं यद्यपि बीजा अनेक पंडितोये व्याख्यान कर्युंछे, तो पण अति गूढार्थ होवाथी मुमुक्षु जने यथार्थरूपे ग्रहण करी शकाय नहिं, किंतु विरुद्ध अर्थनुं ग्रहण थाय, माटे सुखे करीने वास्तव अर्थनुं ग्रहण करावववाने अर्थे हुं संक्षेपे व्याख्यान करीश.

गीताशास्त्रनां त्रण षट्को छे; तेमां प्रथम षट्कमां अंतःकरणनी शुद्धिने अर्थे यज्ञ, दान, तप विगेरे निष्काम कर्मो प्रतिपादन कर्यांछे, अने बीजां षट्कमां चित्तनी एकाग्रताने अर्थे भगवद्भक्तिरूप अंतरङ्ग बहिरङ्ग उपासना प्रतिपादन क-

---

१ " लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ । ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन देहिनां ॥ १ ॥ "

रीछे; तथा त्रीजां षट्कमां आत्मज्ञाननुं प्रतिपादन कर्युंछे. वळी सूक्ष्म दृष्टिथी एम छे के, प्रथम षट्क त्वं पदार्थनां शोधनने अर्थे छे, अने बीजुं षट्क तत् पदार्थनां शोधनने अर्थे छे, तथा त्रीजुं षट्क तत्त्वं पदार्थनी एकतारूप अखंड वाक्यार्थनां प्रतिपादनने अर्थे छे.

आ गीताशास्त्रमां प्रथम अध्याये करीने उपोद्घात(कथानी संगति)नुं कथन कर्युं, अने सूत्ररूप बीजा अध्यायमां प्रथम देहादिकने विषे हुंपणाना तथा द्रोण भीष्मादिकने विषे म्हारापणानां अध्यासथी अर्जुनने विषे स्वधर्मना त्यागनी मति अने सर्वे अनर्थोना बीजभूत शोक मोहमां निमग्नपणुं निरूपण कर्युंछे. पछी अर्जुने "कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः" ए श्लोके करीने कह्युं के आत्मा अनात्माना विवेकने विषे मूढ छे चित्त जेनुं अने दैन्य दोषे करीने उपहत छे स्वभाव जेनो एवो हुं तमने शरणे थइने पुछुछौं के, 'जे निश्चित श्रेय होय ते कृपा करीने कहो.' तेथी श्री कृष्ण भगवाने तेने शोक मोहथी उद्धरण करवाने अर्थे "अशोच्यान्" तथा "नत्वेवाहं" इत्यादि श्लोके स्थूल सूक्ष्म देहादिकथी आत्माने पृथक् करीने तेने विषे

नित्यपणुं अने देहादिकने विषे अनित्यपणुं कथन कर्या पछी वास्तव आत्मतत्त्वनी दृष्टिथी शोक मोहनी अकर्त्तव्यता उपसंहार करीने परमार्थ दर्शनरूप ज्ञाननिष्ठा कथन करीने तेनी प्राप्तिने विषे उपायभूत एवी निष्काम कर्मनिष्ठानो उपक्रम करीने तेनीज प्रशंसा पूर्वक आवश्यकता कथन करी; अने ते निष्काम कर्मना अनुष्ठाने करीने ज्यारे त्हारी बुद्धि आत्माने विषे निश्चल थशे त्यारे तुं परमार्थ दर्शनरूप योगने पामीश. ए रीते अर्जुनने उपदेश कर्ये छते आ बीजा अध्यायनी समाप्ति पर्यंत स्थितप्रज्ञनां स्वसंवेद्य तथा परसंवेद्य एवां लक्षणो कथन करीने मोक्षनुं कारण कहेछे के, जे पुरुष रागद्वेषे रहित अने पोताने अधीन एवां इंद्रियोये करीने अवर्ज्य विषयोने ग्रहण करे,अने जेनु अंतःकरण स्वाधीन होय ते प्रसाद एटले स्वस्थताने पामे; अने प्रसाद थये छते आध्यात्मिकादि सर्व दुःखोनी हानि थाय. वळी प्रसन्न छे चित्त जेनुं एवा पुरुषनी बुद्धि शीघ्र आत्माकार थइने निश्चल होयछे ए आत्माकार बुद्धि अयुक्त एटले असमाहित अंतःकरणवाळाने प्राप्त थाय नहि; माटे हे अर्जुन! जे यतिये सर्व प्रकारे विषयोथी इंद्रियोने निग्रह क-

यीं होय तेनी प्रज्ञा प्रतिष्ठित जाणवी. सर्व प्राणीओनी जे निशातुल्य आत्मनिष्ठा तेने विषे प्रबुद्ध पुरुष जागेछे, अने जे प्राणी अहं मम अभिमानने विषे जागेछे, तेने ज्ञानी लोक निशारूप मानेछे; जेम इतर प्राणीओनी जे निशा ते उलूकादिकने दिवसरूप छे, अने उलूकादिकनो जे रात्रिरूप दिवस ते इतर प्राणीओने निशारूप छे तेम; माटे सर्व कामोनो त्याग करीने जे संन्यासी अहंममताये रहित होय, तेज शान्ति(मोक्ष)ने पामे; पूर्वोक्त ब्राह्मी स्थिति प्राप्त थये छते विमोह पामे नहि; वळी उत्तर वयमां पण ए स्थितिमां रहिने मोक्ष पामे, तो जे पुरुष ब्रह्मचर्यथीज संन्यास करीने यावज्जीव ए स्थितिमां रह्यो छतो मोक्ष पामे तेमां शुं कहेवुं ?

पूर्वोक्त अध्यायमां कथन करी जे कर्मनिष्ठा अने ज्ञाननिष्ठा तेमनांज विशेष व्याख्यानरूप त्रीजाथी आरंभीने सत्तरमा अध्याय पर्यंत छे; तेनो विस्तार स्वामि श्री चिद्घनानंदजीये करेली गीतानी भाषा टीकाना त्रीजा अध्यायना प्रारंभमां निरूपण करेलो छे; तथा अढारमा अध्यायमां कर्मनिष्ठा अने ज्ञाननिष्ठानो उपसंहार कर्योछे. त्यांहां कर्मनिष्ठाना उपसंहारनो श्लोकः—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे॥ १ ॥

अर्थः— "ततोवक्ष्यामि ते हितम्" ए पाछळनां वाक्ये करीने प्रतिज्ञा करेला "हिततम" अर्थने श्री भगवान् कहेछे के, हे अर्जुन! तुं म्हारे विषेज छे मन जेनुं एवो अने म्हारुंज भजन करनार, तथा म्हारुंज यजन करनार एवो था, तथा मनेज नमस्कार कर! ए रीते वासुदेवरूप जे हुं ते म्हारेविषे समर्पण कर्याछे सर्व एवां साध्यसाधन अने फळो जेणे एवो छतो मनेज पामीश ए प्रमाणे हुं सत्य प्रतिज्ञा करीने कहुंछौं; केमके तुं मने प्रिय छो. आ श्लोकनो तात्पर्यार्थ ए छे के, भगवाननी प्रतिज्ञा सत्यज छे एम जाणीने भगवाननी भक्तिथकी मोक्ष फल अवश्य प्राप्त थशे एवुं अवधारण करीने भगवानना शरणने विषेज एक तत्परता राखवी. १

कर्मनिष्ठानुं परम रहस्यरूप जे ईश्वरशरणता तेनो उपसंहार करीने हवे कर्म, योग, त्याग, निष्ठानुं फलरूप अने सर्व वेदान्तोमां प्रतिपादन करेलुं एवुं जे सम्यक् दर्शन तेने कहेछे.

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं
व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष-
यिष्यामि मा शुचः ॥ १ ॥

अर्थः– हे अर्जुन ! सर्व एवा धर्मोनो एटले पापपुण्यरूप कर्मोनो परित्यांग करीने अर्थात् कर्मनो संन्यास करीने सर्वनो आत्मारूप अने सर्वात्मक तथा ईश्वर अप्रच्युतस्वरूप अने सर्वनो गुरु तथा जन्ममरणे रहित एवा एक मनेज शरणे था एटले सर्वात्मक ईश्वरथी अभिन्न हुं छौं एम निश्चय कर ! ए रीते निश्चयवाळा तुंने सर्व एवां बंधनरूप पुण्यपापोथी आत्मस्वरूपनो साक्षात्कार करावीने मोक्ष पमाडीश, माटे शोक न कर ! १

तेने विषे प्रमाणभूत एवो दशमाध्यायनो ११ मो श्लोकः–

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन
भास्वता ॥ १ ॥

---

१ आ ठेकाणे धर्म पदे करीने अधर्मनुं पण ग्रहण करवुं; केमके "नाविरतोदुश्चरितात्" "त्यजधर्ममधर्मं च" इत्यादि श्रुतियोमां पाप कर्मोनो पण त्याग विधान कर्यो छे.

अर्थः- पूर्वोक्त एवां "मच्चित्ता मद्गतप्राणाः" इत्यादि वाक्योमां कह्युंछे ते प्रकारे प्रीति पूर्वक मने भजनार जे भक्तो तेमने श्रेय प्राप्ति शी रीते थाय, ए प्रकारें दयाथी हुं तेमना अन्तःकरणमां रह्यो छतो आत्मा अनात्माना अविवेकथी जन्य एवो जे मिथ्या प्रत्यय एटले देहादिकने विषे हुं म्हारापणानुं अभिमानरूप जे मोह तेरूप अंधकारने म्हारी अनन्य भक्ति तथा प्रसादरूप तैले करीने सिंचायेलो, अने म्हारी भावनानो संतत प्रवाहरूप वायुये प्रेर्यो, तथा ब्रह्मचर्यादिक साधनोना संस्कारवाळी प्रज्ञा छे वाट जेने एवो, अने विरक्त एवुं अन्तःकरण छे आधारपात्र जेने एवो अने सर्व विषयोथी व्यावृत्त अने रागादि द्वेषे करीने अकलुषित एवां चित्तरूपी निवात प्रदेशमां रहेलो, अने नित्य प्रवृत्त एवुं जे एकाग्र ध्यान तेथकी जन्य जे सम्यक् दर्शन तेरूपी प्रकाशवाळो एवा ज्ञानरूप दीपे करीने उपर लखेलां मोहांधकारने नाश पमाडुंछौं.

ए रीते ब्रह्मविद्याना उपदेशभूत एवी श्रीमद्भगवद्गीता श्री भगवाने समाप्त करीछे; तेनो निष्कृष्ट अर्थ त्रीजी प्रक्रियामां" किं कर्म किमकर्मेति " तथा " यस्य नाहं कृतो भावो "ए स्मृतिनां

व्याख्यानमां स्पष्टताथकी सूचन कर्यो छे.

छेवटनां मंगलाचरणनो श्लोकः—

शोकपङ्कनिमग्नं यः सांख्ययोगोपदेशतः। उज्जहारार्जुनं भक्तं सकृष्णः शरणं मम ॥ १ ॥

अर्थः— जे श्री कृष्ण शोकरूपी पङ्कमां निमग्न थयेलो अने पोतानो भक्त एवो जे अर्जुन, तेने ज्ञाननिष्ठा अने कर्मनिष्ठाना उपदेशे करीने उद्धार करता हवा ते श्री कृष्ण म्हारुं शरण (रक्षक) छे. १

महावाक्यरत्नावळीनुं वाक्यः—

शास्त्रेण नश्येत्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं नश्यति चापरोक्षात् । प्रारब्धनाशात्प्रतिभासनाश एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया ॥ १ ॥

अर्थः— 'शास्त्रेण' एटले स्वस्वरूपने विषे अप्रवण छे शील जेनुं एवा अज्ञानी(स्वस्वरूपना अनभिज्ञ)ने स्वस्वरूप प्रवणतानो जे उपदेश करनार ते उपनिषद् व्याससूत्रादि अद्वैत

शास्त्र कहेवायछे; ते अद्वैत शास्त्रना श्रवणथी जन्य एवां परोक्षज्ञाने करीने पूर्वे जे द्वैत प्रपञ्चने विषे पारमार्थिक सत्यपणुं हतुं तेनो नाश थाय; अने तदनन्तर प्रपञ्चने विषे जे 'कार्यक्षमत्व' एटले व्यावहारिक सत्यपणुं ते पण मननथकी जन्य एवां ब्रह्मात्मैकत्वनां अपरोक्ष ज्ञानथी नष्ट थाय; तदनन्तर जगत्‌ने विषे प्रातिभासिक सत्यमात्रपणुं स्फुरेछे ते प्रातिभासिक सत्यत्व पण निदिध्यासनथी जन्य एवां सम्यक् ज्ञाने करीने एटले दृढ बोधे करीने प्रारब्धादि त्रिविध कर्मोनो नाश थये छते नष्ट होयछे; ए रीते त्रण प्रकारे आत्माने विषे अध्यस्त माया नाश पामेछे; अर्थात् जे काळे दृढ तत्त्वज्ञान होय तेज काळे विद्वान् पुरुष विदेह मुक्त होयछे. १

---

(२) श्री विष्णुसहस्त्रनाम भाष्यना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

सच्चिदानंदरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे। नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥ १ ॥

अर्थः— सत्, चित्, आनन्द छे स्वरूप जेनुं एवा, अने सदुपदेशे करीने क्लेशनी निवृत्ति करनार, तथा उपनिषद् वाक्ये करीने वेद्य एटले जाणवामां आवे एवा, अने सर्वना गुरुरूप, तथा बुद्धिना साक्षिरूप एवा श्री कृष्णने नमस्कार. १

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसार-
बंधनात् । विमुच्यते नमस्तस्मै वि-
ष्णवे प्रभविष्णवे ॥ २ ॥

अर्थः— जेनां स्मरणमात्रे करीने जन्ममरणे उपलक्षित एवा संसाररूप बंधनथी प्राणी मुक्त थाय, ते सर्वेश्वर एवा विष्णुने नमस्कार. २

अभ्युदय तथा आपेक्षित अमृतभावना हेतुभूत एवा वेदोक्त धर्मोने निःशेषताथी श्रवण करीने युधिष्ठिरे भीष्मपितामह प्रत्ये वक्ष्यमाण प्रकारे छ प्रश्नो कर्या के—

हे भगवन्!(१) समस्त विद्यास्थानोने विषे एक देव कोण? (२) आ लोकमां परम प्राप्य एवुं वस्तु शुं के, जे प्राप्त थये "भिद्यते हृदयग्रंथिः" इत्यादि श्रुत्युक्त फल प्राप्त थाय? (३) कह्या

---

१ कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः। तयोरैक्यं परं-ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

देवनी स्तुति करता छता एटले गुणकीर्त्तन करता छता– तथा (४) कह्या देवनुं बाह्याभ्यंतर अर्चन करता छता– मनुष्यो स्वर्ग अपवर्गादि फलने पामे? (५) पूर्वोक्त सर्व धर्मो मध्ये तमोने परम संमत प्रकृष्ट धर्म कह्यो? (६) कह्या जाप्यनो जप करतो छतो प्राणी संसार बंधनथकी मुक्त थाय?

तेना उत्तरमां भीष्मपितामह कहेछे के(१)जगत्ना प्रभु एवा नारायण देवने सहस्रनामे करीने स्तुति तथा तेनुंज अर्चन, ध्यान, यजन अने नमस्कार करतो छतो आध्यात्मिकादिक सर्व दुःखोने अतिक्रमण करनारो होयछे; एणे करीने एम जणाव्युं के, जे श्री नारायण ते परम दैवतरूप छे. (२) जे नारायण प्रकृष्ट व्यापक अने सर्वनुं अवभासक "न तत्र सूर्यो भाति" इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध परम चैतन्यरूप छे, तथा परम तपरूप छे; "तपत्याज्ञापयतीति तपः" एटले आ लोक, पर लोक तथा सर्व भूतोने आंतर रहीने नियममां राखे ते तप; एवा नारायण देव छे. अथवा "तपति ईष्टे इति तपः" एटले अनवच्छिन्न ऐश्वर्य जे करे ते तप; अर्थात् सर्वे-

श्वर छे; तथा परम व्यापक ब्रह्मस्वरूप पण एज छे; तथा परम परायण (पुनरावृत्ति शंकाये रहित) निरतिशय आनन्दस्वरूप प्राप्यस्थान एज छे; तथा (३) त्हेनीज स्तुति, अने(४) त्हेनांज अर्चनथकी शुभ प्राप्ति होयछे. (५) हृदयकमलमां रहेनार प्रत्यगात्मारूप जे नारायण तेनुं गुणसंकीर्त्तनादिके करीने सदा सत्कार पूर्वक अर्चन करवुं एज परम धर्म हुं मानुंछौं; केमके एमां पशुहिंसादिक नथी, तथा पुरुष संपत्ति अने द्रव्य संपत्तिनी पण जरूर पडती नथी, अने देश कालादिकनो नियम पण नथी; तथा (६) ए नारायण देवना नामना जपथकीज संसार बंधनथी मुक्त थाय.

ए नारायण देवनां धर्म, अर्थ, काम अने मोक्ष ए चारे पुरुषार्थोनां प्रदाता एवां अने शक्तिवृत्तिथी सगुणस्वरूपनां तथा लक्षणावृत्तिथी निर्गुणस्वरूपनां प्रतिपादक सहस्त्रनामोने वक्ष्यमाण प्रकारे कथन करुंछौं, ते सर्व पाप अने भयनां हरण करनार सहस्रनामोने तुं चित्तनी एकाग्रताथी श्रवण कर !

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्य-

भवत्प्रभुः । भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १ ॥

अर्थः— पूर्वे " यतः सर्वाणि भूतानि " अहींथी आरंभीने जगत्‌ना उत्पत्ति, स्थिति, लयनुं कारणभूत एवां ब्रह्मने एक परम दैवतपणुं कथन कर्युं; माटे प्रथम ' विश्व ' शब्दे करीने सगुण निर्गुण एवुं ब्रह्म निर्देश कर्युंछे. आ विश्व(सर्व जगत्)नुं कारण होवाथी ब्रह्म पण विश्व कहेवायछे. कार्यरूप विश्व शब्दें करीने कारणभूत ब्रह्मनुं जे ग्रहण ते कार्यभूत एवां विरंच्यादिकनां नामे करीने विष्णुनीज एटले व्यापक ब्रह्मनीज स्तुति होयछे एवी सूचनाने अर्थे छे; अथवा आ विश्व वास्तवरूपे परम पुरुषथी भिन्न नथी, माटे विश्व कहेतां ' ब्रह्म ' जाणवुं; तेमां प्रमाणभूत श्रुतिः— " ब्रह्मैवेदं सर्वं " " ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं " "पुरुष एवेदँ सर्वं " एटले जे आ विश्व ते श्रेष्ठ एवुं ब्रह्मज छे; तथा जे आ सर्व जगत् ते परम पुरुषरूपज छे. अथवा " विशतीति विश्वं ब्रह्म " एटले कार्यने स्रजीने तेने विषे प्रवेश करे, ते ब्रह्म विश्व कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः— " तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् "

एटले ते ब्रह्म भूतभौतिक देहादि कार्यने स्रजीने तेमां आत्मारूपे प्रवेश करतुं हवुं. वळी " विशंति सर्वाणि भूतान्यस्मिन्निति विश्वं " एटले प्रलय कालने विषे सर्व भूतो जेने विषे प्रवेश करे ते ब्रह्म विश्व कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः— " यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति " एटले आ सर्व भूतो लय पामतां छतां जे ब्रह्मने विषे प्रवेश करेछे; अथवा श्रुतिः— " एतदेवाक्षरं ब्रह्म " एटले जे ॐकार एज अक्षर ब्रह्मरूप छे; त्यांहां श्रुतिः— " वाङ्मयं प्रणवं ब्रह्म "एटले जे प्रणव ते वाङ्मय (शब्दमय) ब्रह्मरूप छे; वळी स्मृतिः— " ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म " एटले जे ' ॐ ' ए अक्षर ते ब्रह्मरूप छे; इत्यादि श्रुतिस्मृतिओनां प्रमाणथी ' विश्व ' शब्दे करीने ॐकार जाणवो, अने वाचकवाच्यनो जे भेद ते कल्पित छे— वास्तवताथी अभेदज छे माटे ' विश्व ' कहेतां जे ॐकार एज ब्रह्म ए तात्पर्य. अथवा—

" एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् । द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोयं विश्वरूपधृक् ॥ १ ॥ ये च मूढा दुरा-

त्मानो भिन्नं पश्यंति मां हरेः। ब्रह्माणं च तथा तेषां भ्रूणहत्या समं त्वघम् ॥२॥

अर्थः— शिवजी कहेछे के जाणता पुरुषे स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् आत्मारूप जोवुं; केमके विश्वरूपनें धारण करीने विष्णुज रह्याछे. १. तथा मने, ब्रह्माने अने विष्णुने जे दुर्बुद्धि मूढ पुरुषो भिन्न भावे जुवे तेमने ब्रह्महत्या समान पाप छे. २.

इत्यादि वचनोनां प्रमाणोथी हिंसादिना राहित्यथी अभेद भावे स्तुति नमस्कारादि करवुं, एवुं जणाववा माटे 'विश्व' शब्दे करीने ब्रह्म कथन कर्युंछे.

'विष्णुः' "वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः" एटले जे सर्वत्र व्यापीने रहे ते ब्रह्म विष्णु कहेवायछे; अर्थात् देश, काल अने वस्तुकृत परिच्छेदे रहित छे; त्यांहां श्रुतिः—

"यच्च किञ्चित् जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेपि वा। अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः" ॥ १ ॥

अर्थः— जे आ यत्किञ्चित् एटले नाम, रूप,

क्रियात्मक जगत् देखायछे अने श्रवण थायछे ते सर्वने अन्तः अने बाह्य व्यापीने नारायण रह्याछे. १.

अथवा " विशतीति विष्णुः " एटले जे प्रवेश करे ते विष्णु; त्यांहां विष्णुपुराणनुं वचनः—

" यस्माद्विष्टमिदं सर्वं तस्य शक्त्या-
महात्मनः। तस्मादेवोच्यते विष्णुर्वि-
शेर्धातोः प्रवेशनात् " ॥ १ ॥

अर्थः— जे माटे महात्मा ते नारायणनी चिच्छक्तिये सर्व जगत्मां प्रवेश कर्योछे, माटे प्रवेशार्थक ' विश ' धातुने ' नु ' प्रत्यय लगाडवाथी नारायण देव विष्णु कहेवायछे. १

' वषट्कारः ' जेनो उद्देश करीने वषट्कार कराय, अथवा जे यज्ञने विषे वषट्क्रिया होयछे ते यज्ञरूप विष्णु वषट्कार कहेवायछे; त्यांहां- श्रुतिः— " यज्ञो वै विष्णुः " एटले जे विष्णु एज यज्ञ छे.

" चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंच-
भिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै
यज्ञात्मने नमः॥ १ ॥ "

अर्थः– (कर्मकांडने अनुसारे.) ४ " ओ श्रावय," ४ "अस्तु श्रौषट्," २ " यज," ५ " ये यजामहे," २ " वौषट् " ए रीते ४, ४, २, ५, २ मळीने १७ वडे जेने विषे होम करायछे ते यज्ञात्मा विष्णुने नमस्कार.

अथवा बीजो अर्थः– (ज्ञानकांडने अनुसारे.) ४, ४, २ एटले १० इंद्रियो, अने ५ पांच प्राण, तथा २ मन बुद्धि ए सत्तर तत्त्वोनुं चिदाभासयुक्त लिंग शरीर जे साक्षिस्वरूप विष्णुने विषे होमाय एटले अभेदे करीने लय कराय, ते यज्ञात्मा विष्णुने नमस्कार. १. अथवा वषट्कारादि मंत्ररूपे करीने देवताओने जे तृप्त करे ते यज्ञरूप विष्णु वषट्कार कहेवायछे.

' भूतभव्यभवत्प्रभुः ' एटले भूत, भविष्यत् अने वर्त्तमान ए त्रण्येने विषे ऐश्वर्यवान् अर्थात् अविच्छिन्न ऐश्वर्यवान् जे विष्णु ते भूतभव्यभवत्प्रभु कहेवायछे.

' भूतकृत् ' "भूतानि करोतीति भूतकृत्" एटले रजोगुणनुं आश्रयण करीने हिरण्यगर्भरूपे भूतोनुं उत्पादन करे ते ब्रह्म भूतकृत् कहेवायछे; अथवा " भूतानि कृन्तति कृणोति इति वा-

भूतकृत् " एटले तमोगुणनुं आश्रयण करीने रुद्ररूपे सर्व भूतोनो नाश करे अर्थात् पोताने विषे लय करे ते विष्णु भूतकृत् कहेवायछे.

'भूतभृत्' " भूतानि बिभर्त्तीति भूतभृत् " एटले सत्त्वगुणनुं आश्रयण करीने विष्णुरूपे भूतोनुं पालन पोषण करे ते ब्रह्म भूतभृत् कहेवायछे.

'भावः' " भवतीति भावः" एटले प्रपंचरूपे करीने जे होय ते ब्रह्म भाव कहेवायछे; अथवा केवलरूपे जे होय ते ब्रह्म भाव कहेवायछे; अथवा " भवनं भावः " एटले केवल सत्तारूपे जे होय ते ब्रह्म भाव कहेवायछे.

'भूतात्मा' " भूतानां आत्मा भूतात्मा " एटले सर्व प्राणीओनो जे अन्तर्यामी ते ब्रह्म भूतात्मा कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः– " एषत आत्मान्तर्यामी "

'भूतभावनः' " भूतानि भावयति जनयति वर्द्धयति वा भूतभावनः " एटले भूतोने जे उत्पन्न करे अथवा वृद्धि पमाडे ते ब्रह्म भूतभावनः कहेवायछे. १.

त्यारे 'भूतकृत्' 'भूतभृत्' इत्यादिक नामे करी-

ने सत्त्वादि गुणोने अधीनपणुं प्राप्त थयुं एवी शं-
का थये छते तेनुं निराकरण करेछे.

"पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमागतिः। अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोक्षर एव च" ॥ २ ॥

अर्थः– 'पूतात्मा' "पूतः आत्मा यस्येति पूतात्मा" एटले गुण, जन्म, कर्म इत्यादि दोषोथी असंस्पृष्ट छे स्वरूप जेनुं एवा जे विष्णु ते पूतात्मा कहेवायछे; "निर्गुणो निष्क्रियश्च" ए श्रुतिनां प्रमाणथी. अथवा "पूतश्चासौ आत्मा च पूतात्मा" 'पूतः' एटले शुद्ध एवा छता 'आत्मा' कहेतां प्रत्यक्रूप जे विष्णु ते पूतात्मा कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः– "केवलो निर्गुणश्च"

'परमात्मा' "परमश्चासौ आत्मा च परमात्मा" एटले कार्य कारणथी विलक्षण; अर्थात् हिरण्यगर्भादि कार्यथी तथा अव्याकृतरूप कारणथी विलक्षण एटले नित्य, बुद्ध, मुक्तस्वभाव.

'मुक्तानां परमा गतिः' एटले मुक्तोनी परम-

गतिरूप; अर्थात् अपुनरावृत्तिथी प्राप्यस्थानरूप; त्यांहां गीतानुं वचनः—

" मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते । "

अर्थः— हे अर्जुन! प्रत्यक्थी अभिन्न जे हुं तेने पामीने एटले अभेदरूपे साक्षात्कार करीने फरीथी जन्म पामे नहि.

'अव्ययः' "नास्ति व्ययो यस्येति अव्ययः" एटले नथी छे व्यय (नाश), तथा जन्मादि विकार जेने ते विष्णु अव्यय कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः— "अजरोऽमरोऽव्ययः".

'पुरुषः' "पुरि शेते इति पुरुषः" एटले शरीररूप ब्रह्मपुरने विषे शयन करे ते विष्णु पुरुष कहेवायछे; त्यांहां महाभारतनुं वचनः—

" नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम् । व्याप्य शेते महात्मा यत् तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ १ ॥

अर्थः— नव द्वारवाळुं अने इंद्रियादि पदार्थोये सहित एवां शरीररूप पुरने व्यापीने जे

माटे शयन करेछे ते माटे पुरुष कहेवायछे; अथवा " आसीत् पुरैवेति पुरुषः " एटले पूर्वे जे हतोज ते विष्णु पुरुष कहेवायछे; त्यांहां श्रुतिः—

" पूर्वमेवाहमासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वं " एटले सृष्टिथी पूर्वे हुंज हतो माटे पुरुष एज पुरुषनुं पुरुषत्व; अथवा " पुरूणि सुनोतीति पुरुषः " एटले मनोभिलषित बहु फलोने ग्रहण करे अथवा आपे ते पुरुष कहेवायछे; यद्वा " पुरूणि स्यतीति पुरुषः " एटले संहार समयने विषे अनेक भुवनोनो अंत (नाश) अर्थात् पोतामां लय करे ते पुरुष कहेवायछे.

'साक्षी' " साक्षात् ईक्षते सर्वमिति साक्षी " एटले अव्यवधाने करीने अने स्वस्वरूपना बोधे करीने अभेदथी सर्वने (बुद्धिवृत्तिना प्रत्ययोने) जुवे ते विष्णु साक्षी कहेवायछे.

'क्षेत्रज्ञः' " क्षेत्रं जानातीति क्षेत्रज्ञः " एटले क्षेत्र(शरीर)ने जे जाणे ते क्षेत्रज्ञ कहेवायछे; त्यांहां भगवद्गीतानुं वाक्यः— " क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि "

'अक्षरः' "न क्षरतीत्यक्षरः" एटले जे विनाश पामे नहि ते अक्षर कहेवायछे. 'एव' शब्दे करीने तत्त्वमस्यादि वाक्यनां प्रमाणथी क्षेत्रज्ञ अने अक्षर ब्रह्मनो अभेद जणाव्यो. २.

इत्यादि सहस्र नामे करीने व्याकरणथी तथा श्रुत्यनुसारी युक्तिथकी प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मनुंज प्रतिपादन कर्युंछे.

श्री भगवानुवाच.

यो मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति
पांडव। सोहमेकेन श्लोकेन स्तुत ए-
व न संशयः ॥ १ ॥
नमोस्त्वनंताय सहस्रमूर्त्तये
सहस्रपादाक्षि शिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्नेपुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ १ ॥

अर्थः– 'अनन्ताय' एटले अपरिच्छिन्न एवा, अने 'सहस्रमूर्त्तये' एटले अपरिमित छे मूर्त्तिओ जेमनी एवा, अने 'सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे' एटले अपरिमित छे पाद, अक्षि, शिरस, ऊरु, बाहु जेमने एवा, अने 'सहस्रनाम्ने' एटले

अपरिमित छें नाम जेमनां एवा, अने 'सहस्र-कोटीयुगधारिणे' एटले अपरिमित करोड युगने धारण करनार एवा, अने 'शाश्वते' एटले नित्यरूप एवा जे पुरुष (प्रत्यक् अभिन्न ईश्वर) तेने नमस्कार; अर्थात् अभेदे करीने अनुसंधान. १

महावाक्यरत्नावळीनुं वाक्य.

निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना । यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥ १ ॥

अर्थः– शुकदेवने आदि लेइने ब्रह्मऋषियो तथा सनकादि नित्यमुक्तो तथा ब्रह्मादिक देवताओ एक निमिषना अर्धमात्र पण ब्रह्माकार वृत्ति विना रहेता नथी; तेमज ब्रह्मवेत्ताओ मध्ये वरीयान् एवा जीवन्मुक्तो रहेछे. १.

---

(३) श्री सनत्सुजातीय भाष्यना अनुसारे विचार.

मंगलाचरण.

नमः पुंसे पुराणाय पूर्णानन्दाय वि-

ष्णवे । निरस्तनिखिलध्वान्ततेजसे विश्वहेतवे ॥ १ ॥

अर्थः— जगत्‌ना हेतुभूत अने निरास कर्यांछे समग्र अविद्या तत्कार्यो जेणे एवुं नित्य तेजरूप एटले प्रकाशरूप, तथा पूर्ण आनन्दरूप अने पुंराण (अनादि) पुरुष एवा व्यापकस्वरूप विष्णुने नमस्कार. १.

शोक अने मोहे करीने अभितप्त एवा धृतराष्ट्रे "तरति शोकमात्मवित्" (जे आत्मवेत्ता ते शोकने तरे.) ए प्रकारे वेदान्तना वादने श्रवण करीने ब्रह्मविद्या विना शोकनी निवृत्ति अशक्य मानीने विदुर प्रत्ये कह्युं के "हे विदुर! तमें अपरविद्याविषयक एटले अन्तःकरण शुद्ध थवा अष्टाध्याय विदुरनीतिनुं कथन कर्युं; हवे परविद्यानो उपदेश करो!" त्यार पछी विदुरे "हुं शूद्र योनिने विषे उत्पन्न थयोछौं माटे ब्रह्मविद्याना उपदेशनो मने अधिकार नथी." एम कहीने योगना बळे सनत्सुजातनुं स्मरण करतां तेओ आव्या; पछी विदुरे कह्युं के "हेभगवन्! धृतराष्ट्रना अन्तःकरणने विषे संशय छे ते सदुपदेशे करीने निवारण करो के जेथकी सर्व दुःखने अति-

क्रमण करीने मुक्त थाय." त्यार पछी धृतराष्ट्र बोल्या; त्यांहां श्लोकः–

"ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी
संपूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत्।
सनत्सुजातं रहिते महात्मा
पप्रच्छबुद्धिंपरमां बुभूषन्" ॥ १ ॥

अर्थः– महात्मा (अधिकारी) एवो धृतराष्ट्र राजा विदुरे सनत्सुजात प्रत्ये कहेलां पूर्वोक्त वाक्यनी प्रशंसा करीने प्राकृत जन वर्जित एवा एकान्त स्थळने विषे सनत्सुजात प्रत्ये पूर्ण, आनन्द, अद्वितीयविषयक एवी उत्तम बुद्धिने ब्रह्मविद्याये करीने आत्मस्वरूपने पामवाने इच्छतो छतो पुछतो हवो. त्यांहां श्लोकः–

"सनत्सुजात यदिदं शृणोमि
मृत्युर्हिनास्तीति तवोपदिष्टं।
देवासुराआचरन्ब्रह्मचर्य
ममृत्यवे तत्कतरन्नुसत्यं ॥ १ ॥"

---

१ "सनत् एटले सनातन एवो हिरण्यगर्भ तेना मनथी सम्यक् प्रकारे एटले ज्ञान वैराग्यादिये युक्त एवो छतो जे उत्पन्न थयो ते सनत्सुजात कहेवायछे; अर्थात् सनत्कुमार."

अर्थः— हे सनत्सुजात! "मृत्यु छेज नहि" ए प्रकारे शिष्यो प्रत्ये तमारो उपदेश छे एम विदुरे मने कह्युंछे; तथा "देव अने असुरो तो अमृत्युने अर्थे एटले मृत्युना अभावने अर्थे अर्थात् अमृतत्वनी प्राप्तिने अर्थे ब्रह्मचर्यनुं आचरण करता छता गुरुगृहने विषे निवास करता हवा." ए रीते छांदोग्योपनिषद्मां "तद्धोभये देवासुराः" आंहींथी आरंभीने "तौह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः" आंहीं पर्यंत ग्रंथे करीने इंद्र अने विरोचनने प्रजापतिना निकटने विषे बत्रीश वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्यनुं आचरण कथन कर्युंछे; तथा "एकशतं हवै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवासेति" जो कदा मृत्यु छेज नहि एवो तमारो पक्ष छे त्यारे देव अने असुरोने मृत्युना निवारणने अर्थे ब्रह्मचर्यनुं आचरण शा माटे करवुं पड्युं? अने ते ब्रह्मचर्यनां आचरणथी एम जणायछे के, 'मृत्यु छे.' माटे मृत्युनो सद्भाव सत्य छे के असद्भाव सत्य छे? ते निश्चय करीने कहो.

---

१ "आ श्रुतिनो अर्थ छांदोग्योपनिषद्मां लख्योछे."

श्री सनत्सुजात उवाच.

अमृत्युः कर्मणा केचित् मृत्युर्नास्ती-
ति चापरे। शृणु मे ब्रुवतो राजन् य-
थैतन्माविशंकिथाः ॥ १ ॥

अर्थः– हे राजन्! अविद्याने विषे अधिरूढ एवा केटलाएक पुरुषो वास्तवरूपे मृत्युनो सद्भाव मानता छता वेदोक्त कर्मे करीने 'अमृत्युः' एटले अमृतत्वनी प्राप्ति होय एम मानीने अमृत्युने अर्थे वेदोक्त कर्मनुं आचरण करेछे; तथा अन्य एवा विषयि पुरुषो विषयथी अतिरिक्तताये करीने मोक्षने न मानता छता कर्मे करीनेज अमृत्युने एटले अमृतत्वने अर्थात् देवादिभावने वर्णन करेछे. (एज अर्थने विषे रागीना श्लोकनुं उदाहरण आपेछे के,)

"अपि वृंदावने शून्ये सृगालत्वं स
इच्छति। न तु निर्विषयं मोक्षं कदा
चिदपि गौतम ॥ "

अर्थः– हे गौतम! ते रागी पुरुष शून्य एवां वृंदावनने विषे सृगालपणाने इच्छेछे, तथापि कोइ समे पण निर्विषय एवा मोक्षने इच्छतो नथी.

तथा परमात्माथी अतिरिक्तताये करीने द्वितीयने न जोता एवा केटलाएक पुरुषो ज्ञानकर्मना समुच्चये करीने अमृतत्वनुं वर्णन करेछे; तथा अद्वितीय आत्मदर्शी एवा ज्ञानी पुरुषो आत्माथी अतिरिक्तताये करीने द्वितीयने न जोता छता मृत्यु छेज नहि एवुं वर्णन करेछे; माटे मृत्युनो सद्भाव अने असद्भाव ए बेउ पक्षने विषे जे रीते विरोध न आवे तेम कहुंछौं, तुं श्रवण कर! अने म्हारा उपदेशने विषे शंका न राखीश. १.

उभे सत्ये क्षत्रियाद्य प्रवृत्ते
मोहो मृत्युः संमतो यः कवीनां।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि
सदाऽप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ १ ॥

अर्थः– हे क्षत्रिय! पूर्वोक्त एवा "मृत्युरस्ति" "मृत्युर्नास्ति" ए बेउ पक्षो आदि सर्गथी आरंभीने प्रवृत्त थयाछे माटे सत्य छे. ज्यारे मृत्यु सत्य होय त्यारे तेनुं स्वरूप शुं? एवी आशंका थये छते मुनि कहेछे के, जे मोह एटले अनात्मा देहादिकने विषे आत्मत्वनुं अभिमानरूप मिथ्याज्ञान ते मृत्यु ए रीते केटलाएक कवियो कहेछे; अने हुं तो एम कहुंछौं के,

जे प्रमाद एटले स्वाभाविक ब्रह्मभावथकी प्रच्युति ते प्रमादने एटले देहाद्यात्मभावरूप मिथ्याज्ञाननुं पण कारणभूत एवां आत्मानां अज्ञानने मृत्यु कहुंछौं अर्थात् जन्म मरणादि सर्वे अनर्थोनुं बीज कहुंछौं; तथा सदा (निरंतर) जे अप्रमाद एटले स्वाभाविक स्वरूपे करीने अवस्थान रहेने अमृतत्व कहुंछौं; श्रुति पण जे स्वस्वरूपे करीने अवस्थान तेने मोक्षाख्य अमृतत्वने कहेछे के,

"परं ज्योतिरूपं संपद्यते स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते " इति.

अर्थः– जे ज्ञानी ते परमज्योतिषरूप संपन्न होयछे एटले स्वस्वरूपे करीने अवस्थित होयछे; अर्थात् अमृतत्वरूप होयछे.

तथा अनुगीतामां पण स्पष्ट कह्युंछे के,

" एकः प्रज्ञोनास्ति ततो द्वितीयो यो हृच्छयस्तमहममृतं ब्रवीमि " इति.

अर्थः– एक प्रज्ञानस्वरूपज सद्रूप छे " प्रज्ञानमानन्दंब्रह्म " तेथी अन्य द्वितीय कोइ छेज नहि; जे प्रज्ञस्वरूप हृदयाकाशमां रह्युंछे तेने हुं अमृत कहुंछौं.

जे हेतुथी स्वरूपावस्थानरूपज मोक्ष छे माटे-ज ते मोक्षने उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य, विकार्य ए चार प्रकारनां क्रिया फलोथी विलक्षण होवा-थीज कर्मसाध्य अमृतपणुं नथी; तथा ज्ञानकर्म समुच्चयसाध्य पण अमृतत्व नथी; किंतु स्वाभा-विक अमृतत्व छे. (एम कहेवाथी " अमृत्युः कर्मणा केचित् " ए श्लोकमां कहेला वादि-योना पक्षो अघटित छे एवी सूचना करी.) १.

हे भगवन्! जे प्रमाद ते मृत्यु अने जे अप्र-माद ते अमृत्यु ए रीते तमे शाथी जाण्युं? ए-वी धृतराष्ट्रनी शंका थये छते मुनि उत्तर आ-पेछे के,

प्रमादाद्वा असुराः पराभवन्न
प्रमादाद्वा ब्रह्मभूताः सुराश्च।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून्
नाप्यस्य रूपमुपलभ्यतेह ॥ १ ॥

अर्थः— प्रमादथकी एटले स्वाभाविक ब्रह्म भावथी प्रच्यवनथकी अनात्मा देहादिकने विषे आत्मभाव होवाथी विरोचन आदि असुरो परा-जय पामता हवा. त्यांहां श्रुतिः—

" अनुपलभ्यात्मानमसुरा वा पराभूता " इति.

अर्थः– आत्मस्वरूपनी उपलब्धि नहि होवाथी असुरो पराजय पाम्या; तथा अप्रमादथी एटले स्वाभाविक सत्, चित्, आनन्द, अद्वितीय ब्रह्मात्मरूपे करीने अवस्थानथी इंद्रादि देवताओ ब्रह्मभूत होता हवा; अर्थात् अमृत होता हवा. त्यांहां श्रुतिः–

"ते देवा आत्मानमुपासते तस्मात् तेषां सर्वे च लोका आप्ताः सर्वे च कामा " इति.

अर्थः– ते देवताओ आत्मानी उपासना करेछे एटले ब्रह्मात्मनो अभेदे करीने साक्षात्कार करेछे माटे ते देवोने सर्वे लोको अने सर्वे कामो प्राप्त थयाछे इत्यादि. अथवा ' असुराः ' " असुष्वेव रमंते इति असुराः " एटले इंद्रियोने विषे जे रमण करे ते अनात्मवेत्ता विषयि प्राणीओ असुर कहेवायछे; अर्थात् आसुरी संपत्तिवान्. ते असुरो स्वाभाविक ब्रह्मभावनुं अतिक्रमण करीने अनात्मा एवा देहादिकने विषे

आत्मभावनो स्वीकार करता छता पराजय पाम्या एटले तिर्यगादि योनियोने पाम्या. त्यांहां बह्वृच ब्राह्मणनी श्रुतिः– " तस्मान्न प्रमाद्येत " इति. एटले जे माटे प्रमादि पुरुष तिर्यगादि योनियोने पामे; माटे प्रमाद करवो नहि. तथा " स्वस्मिन्आत्मन्येवरमंते इति सुराः " एटले आत्माने विषेज जे रमण करे ते आत्मवेत्ता पुरुषो सुर कहेवायछे अर्थात् दैवी संपत्तिवान्. ते सुरो अप्रमादथी एटले स्वाभाविक ब्रह्मात्मस्वरूपने विषे अवस्थानथी ब्रह्मभूत थया एटले निवृत्त थयांछे अज्ञान तत्कार्य जेमनां एवा छता ब्रह्मरूपज होता हवा.

शंकाः– सर्व जंतुओनो संहार करनार यमराजा मृत्यु तो लोकमां अन्यज प्रसिद्ध छे; माटे प्रमादनेज मृत्युरूप केम कहोछो ?

समाधानः– एवी शंका करवी नहि; केमके मृत्यु प्राणीओने भक्ष करतो नथी; जो कदा भक्ष करतो होय, तो तेनी व्याघ्रनी पेठे उपलब्धि थवी जोइए ते थती नथी; माटे मृत्यु छेज नहि.१

हे राजन्! जे माटे प्रमादज सर्व अनर्थोनुं बीज छे वास्ते तेनेज हुं मृत्यु कहुंछौं, यमने नहि; किंतु विषयरूपो विषे करीने अंध एवा केटलाए-

क अज्ञानी पुरुषो आत्माथी अतिरिक्त द्वितीयने जोता छता पितृ लोकने विषे राज्य करनार अने पुण्यवान् प्राणीओने सुखनो प्रदाता तथा पापी प्राणीओने दुःखनो प्रदाता, अने बुद्धिने विषे रहेनार अने ब्रह्मने विषे रमण करनार जे यम, तेने में कहेला प्रमादरूप मृत्युथी अन्य मृत्युरूप एवाने कहेछे.

यमने बुद्धिने विषे रहेवापणुं कह्युं त्यांहां मनुस्मृतिनुं प्रमाणः—

" यमो वैवस्वतो राजा यस्तवैष हृदि स्थितः। तेन चेदविवादस्ते मा गंगां माकुरून् व्रज ॥ १ ॥"

अर्थः— हे प्राणि ! विवस्वान्नो पुत्र जे यम राजा ते त्हारी बुद्धिने विषेज रह्योछे ए प्रकारे जो तने दृढ निश्चय होय तो गंगा प्रत्ये अने कुरुक्षेत्र प्रत्ये गमन न कर. १.

तथा यमने ब्रह्मनिष्ठतामां श्रुतिः—

"कस्तं मदा मदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति"

अर्थः— ए सहर्ष छतो अहर्ष एटले विरुद्ध धर्मवान् माटेज ज्ञाणवाने अशक्य एवा आत्मा-

देवने म्हाराथी बीजो कोण जाणी शके (ए प्रकारे जे प्रमाद ते मृत्यु एवुं निर्धारण कर्युं.)

हवे एज प्रमादनुं कार्यरूपे करीने अवस्थान देखाडेछेः—

आस्यादेषनिःसरते नराणां
क्रोधः प्रमादो मोहरूपश्च मृत्युः।
अहं गते नैव चरन् विमार्गा-
न्न चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥ १ ॥

अर्थः—जे प्रमादाख्य मृत्यु प्रथम अहंकाररूपे करीने परिणाम पामेछे, पछी अहंकाररूपे रहीने अनंतर कामरूपे करीने परिणाम पामेछे ते काम, स्वविषय उपर प्रवृत्त थतां कोईए प्रतिघात कर्यो छतो क्रोधरूप होयछे; त्यार पछी मोहरूप होयछे; वास्ते अहंकाररूपे परिणाम पाम्युं जे अज्ञान तेथकी अनात्मा देहादिकने विषे आत्मभाव पाम्यो छतो " हुं ब्राह्मण छौं; क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र छौं; हुं कृश छौं; स्थूल छौं; अमुकनो पुत्र छौं" इत्यादि रीते रागद्वेषादिये युक्त छतो, अने उन्मार्गे चालतो छतो, कोइ पण आत्मस्वरूपनो जणावनार समाधियोगने पामतो नथी. १

ते मोहितास्तद्वशे वर्त्तमाना
अतः प्रेतास्तत्र पुनः पतंति ।
ततस्तं देवा अनुपरिप्लवंते
ततो मृत्युं मरणादभ्यपैति ॥ १ ॥

अर्थः– अहंकारादिरूपे रहेलां प्रमादाख्य अज्ञाने मोह पमाड्या एटले देहादिकने विषे आत्मभावने अर्थात् हुं म्हारापणाने पमाड्या एवा जीवो आ लोकथी मरण पाम्या छता धूमादि मार्गे परलोकमां जइने त्यांहां, ज्यांहां सुधी पुण्य पोंहोंचे त्यांहां सुधी रहीने पछी पाछा आकाशादिकना क्रमे करीने देह ग्रहणने अर्थे मृत्यु लोकमां पडेछे; पछी देह ग्रहण अवस्थाने विषे इंद्रियोने अनुसरीने चारे तरफथी कर्मोनुं आचरण करेछे तेथी मरण पामेछे; तदनंतर पाछा जन्म पामेछे ए रीते जन्ममरणनी परंपराने विषे आरूढ थया छता एटले चक्रवत् भ्रमण करता छता संसारथी मुक्त थता नथी. १

हवे कर्मोने विषे बंधहेतुत्व कहेछेः–

कर्मोदयेकर्म फलानुराग-
स्तत्रानुयांति न तरन्ति मृत्युम् ।

सदर्थयोगानवगमात्समंता-
त्प्रवर्त्तते भोगयोगेनदेही ॥ १ ॥

अर्थः—केटलाएक कर्मे करीने अमृतभावने कहेछे तेमना मतनुं निराकरण करेछे. केवल कर्मे करीने अमृतत्व होतुं नथी; किंतु कर्मोनी उत्पत्ति थये छते तेमना फलने विषे रागी छता तेने पामेछे, माटे मृत्युने तरता नथी; किंतु जन्म मरणात्मक संसारने विषे वारंवार भ्रमण करेछे.

कर्मफलने विषे राग थवामां हेतु कहेछे के, सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मात्मैकत्वना अबोधथी विषयने विषे रस बुद्धिये करीने प्राणी ऊर्ध्व अधो लोकने विषे भ्रमण करेछे. १

तद्वै महामोहनमिंद्रियाणां
मिथ्यार्थयोगेऽस्य गतिर्हि नित्या ।
मिथ्यार्थयोगाभिहतांतरात्मा
स्मरन्नुपास्ते विषयान्समंतात् ॥ १ ॥

अर्थः—रागे करीने अभिभूत एवो जे प्राणी तेना इंद्रियोनुं जे विषयोने विषे प्रवर्त्तन, एज महामोह कहेवायछे; अने इंद्रियोनी विषयो उपर प्रवृत्तिथी ते अविद्या कल्पित मिथ्या विषयोनो योग एटले संबंध होयछे, अने तेथी संसार गति

पण नित्य एटले नियत होयछे; केमके मिथ्या विषयोना संबंधथी हणायोछे स्वाभाविक ब्रह्मभाव जेनो एवो प्राणी स्त्री आदिक विषयोनुं स्मरण करतो छतो तेमनी उपासना करेछे पण आत्मानी नहि. १

पूर्वोक्त रीते प्रमादरूप मृत्युने तथा तेनुं कार्य कामक्रोधादि संसारने कहीने हवे ते प्रमादरूप मृत्युना विनाशनो उपाय कहेछे के, हे राजन् ! जे पुरुष सर्व अनर्थोनुं बीजभूत प्रमादरूप मृत्युने जाणीने वैराग्यादि साधनसंपत्तिथी सच्चिदानंदाद्वितीय ब्रह्मात्मस्वरूप स्थितिनुं संपादन करे ते पुरुष मृत्युथी भय पामतो नथी; अर्थात् मृत्युनो नाश करे; त्यांहां श्रुतिः—

" आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ".

ए रीते मृत्युना विनाशनो ज्ञानरूप उपाय कहीने पछी विस्तारथी अनात्मदर्शीनी निंदा अने आत्मदर्शीनी प्रशंसा करीने मान अने मौन बन्नेना विषय भिन्न भिन्न देखाडीने, जे पुरुषने मान होय तेने मोक्षनो अभाव कथन कर्या पछी महा दुःखे आचरण करी शकाय एवां (१) सत्य (यथार्थ भाषण), (२)आर्जव (अकौटि-

ल्य), (३) ह्री (अकार्य करवा विषे लज्जा), (४) दम (अन्तःकरणनो तथा बाह्येंद्रियोनो निग्रह), (५) शौच (पापनुं प्रक्षालन), (६) विद्या (ब्रह्मज्ञान) ए छ मान अने मोहनां तोडनार एवां ब्रह्मलक्ष्मी(ब्रह्मविद्या)ने विषे प्रवेश थवानां द्वारो कथन कर्यां.

प्रथमाध्याय समाप्त.

पूर्वे कहेलां मौननुं माहात्म्य श्रवण करीने धृतराष्ट्रे प्रश्न कर्यो के, हे मुने ! पूर्वोक्त एवुं वागादिकनो उपरामरूप मौन कोने प्राप्त थाय? तथा जे असंभाषणरूप मौन अने आत्मस्वरूपनुं निदिध्यासनरूप मौन ए बन्ने मध्ये खरुं मौन कोण? तथा पुरुष मौनभाव(ब्रह्मभाव)ने वाक्नो उपरामरूप मौने करीने पामे के अन्य उपाये एटले निदिध्यासने करीने; तथा ते मौननुं शी रीते आचरण करे ते कहो?

मुनिये उत्तर आप्यो के, हे राजन्! जे माटे सर्वे वेदो मननी साथे जेने पामी शकता नथी, ते परमात्माज वाणीनो अगोचर होवाथी मौन कहेवायछे; त्यांहां श्रुति·—"यतो वाचो निवर्त्तंते" ते परमात्मानां लक्षणनी आकांक्षा थये छते कह्युं के, जे वेद शब्दे करीने तात्पर्य वृत्तिथी

प्रतिपाद्य ते सत्, चित्, आनन्दस्वरूप परमात्मा ए रीते हुं श्रुति अने स्वअनुभवनां प्रमाणथी कहुंछौं.

वेदस्वभावनी जिज्ञासाथी धृतराष्ट्रे प्रश्न कर्यो के, हे मुने! जे पुरुष पापनुं आचरण करतो छतो ऋगादि वेदनुं पठन करे ते वेदाध्ययनथी शुद्ध थाय के नहि? ते कहो.

उत्तरः—हे राजन्! ऋगादि वेदो पठन कर्यां छता पण पापाचारि पुरुषने शुद्ध एटले रक्षण करी शकता नथी ए रीते हुं सत्य कहुंछौं; जेम पांख उत्पन्न थया पछी पक्षीओ जता रहेछे तेमज पापी धर्मध्वजी पुरुषने मरणकाले वेदो तजीने जायछे.

त्यांहां राजाने एवी शंका उत्पन्न थई के, नित्यनैमित्तिक कर्मो कर्यां छतां मननी शुद्धिनां हेतु छे, अने न कर्यां होय तो प्रत्यवायनां हेतु छे; तथा काम्य कर्मो अने उपासनाओ ब्रह्मलोकादि अने पितृलोकादिकनां हेतु छे; तथा निषिद्ध कर्मो नरकनां हेतु छे; माटे जरूर वेदाध्ययन, तेमना अर्थनुं ज्ञान अने तदुक्त कर्मोनुं अनुष्ठान संपादन करवुंज जोइए; वास्ते 'वेदो पापीनी रक्षा करी शकता नथी' एम केम कहोछो?

उत्तरः— हे राजन्! जो कदा तें जे कह्युं तेज वेदार्थ होय, त्यारे तो त्हारी शंका सत्य होय; परंतु मोक्षाख्य परम पुरुषार्थरूप वेदार्थ एटले वेदतात्पर्यार्थ तो स्वर्गादिकथी अन्यज छे. वेदोमां जे कर्मोपासनानुं प्रतिपादन ते तो मोक्षनुं परम साधन ज्ञाननी प्राप्तिमां अन्तःकरणनी शुद्धि द्वारा परंपराथी साधनभूत छे, माटेज "अनंदा नाम ते लोकाः" इत्यादि श्रुतिवाक्ये अविद्वानोनी निंदा करीछे, अने "आत्मानं चेद्विजानीयात्" इत्यादि वाक्योये विद्वान्नी स्तुति करीछे; तथा "प्लवाह्येते" इत्यादि वाक्ये कर्मोनी निंदा करीछे; माटे ईश्वरार्पण बुद्धिथी मननी शुद्धि द्वाराये आत्मज्ञाननां संपादनथीज वेदो पुरुषना रक्षक छे, अन्यथा नहि.

ए रीते उपदेश करीने पछी चित्तशुद्धिमां हेतुभूत तपने विषे क्रोधादि बार दोषोनुं तथा ज्ञानादि बार गुणोनुं कथन करीने, दमने विषे अनृतादि १८ दोषो कहीने, पछी याचना करनार योग्य पुरुषने (१) पुत्रदान, (२) वित्तदान, (३) इष्ट एटले श्रौत कर्ममां दान, (४) पूर्त्त एटले स्मार्त्त कर्ममां दान, (५) दोषदृष्टिथी वैराग्य पूर्वक धनादिकनो त्याग, (६) काम-

त्याग ए रीते छ प्रकारना त्यागो कहीने वैराग्य पूर्वक धनादि त्याग अने काम त्यागनुं दुष्करपणुं कहीने, पछी कामादि दोषोनो त्याग पूर्वक ज्ञानादि गुणे करीने अप्रमादनी सिद्धि कथन करी.

पछी राजाये प्रश्न कर्यो के, चार वेद अने पांचमो इतिहास पुराणादि तेमणे करीने कोई पंचवेदी, कोई चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी, एकवेदी कहेवायछे ते मध्ये श्रेष्ठ ब्राह्मण कोण?

मुनिनो उत्तरः— जे ब्राह्मण स्वाभाविक सच्चिदानंद अद्वितीय ब्रह्मात्मस्वरूपे स्थित होय, ते एकवेदी ब्राह्मण सर्वोत्तम छे; अने जे ऋगादि बहु विभागो ते तो सत्य ब्रह्मात्मस्वरूपना अनवबोधथकीज छे, माटे जे सत्यथी प्रच्युत न थाय तेज श्रेष्ठ ब्राह्मण छे; वास्ते सत्यपरज रहेवुं, अनृत विषयपर रहेवुं नहि. ते सत्यपरत्वथी आत्मसाक्षात्कार थाय माटे आत्माथी अतिरिक्त सर्वेनो परित्याग करीने केवल तूष्णीं भावथी आत्मानुंज उपासन करवुं; तेथी आत्मा स्वतःज अपरोक्ष थायछे; अने जे आत्मवेत्ता एज मुनि कहेवायछे, अरण्यवासी मुनि नहि; तथा जे आत्मज्ञानी एज सर्व अर्थोनां व्याकरणथी एटले आत्मभावे जाणवाथी वैयाकरण कहेवायछे, केवल शब्दात्मक

व्याकरण शास्त्रनो पठन करनार वैयाकरण नहि; तथा जे सर्वात्मदर्शी एज सर्वज्ञ, इतर नहि.

द्वितीयाध्याय समाप्त.

हवे ब्रह्मचर्यादि साधनांतरने तथा तेणे करीने प्राप्य एवां ब्रह्मने प्रतिपादन करवा माटे त्रीजो अने चोथो अध्याय छे.

राजाये प्रश्न कर्यो के, हे मुने! श्रवण करवाने अशक्य एवी अने उत्कृष्ट तथा प्रपञ्चने विषे दुर्लभ एवी ब्रह्मसंबंधी कथा कहो.

उत्तरः— हे राजन्! ए ब्रह्म त्वराथी प्राप्य नथी; किंतु निश्चयात्मक बुद्धिने विषे संकल्प विकल्पात्मक मन लीन थये छते एटले विषयोथी परावृत्त थइने आत्माने विषेज निश्चल थये छतें, वक्ष्यमाण ब्रह्मचर्ये करीने ब्रह्मविद्या प्राप्त थाय. जे पुरुष आचार्यने शरणे थईने ब्रह्मचर्यनुं एटले गुरुशुश्रूषादिकनुं आचरण करे ते पुरुष आ लोकने विषे पंडित होयछे; पछी श्रवण, मनन, निदिध्यासने करीने ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञ) थइने प्रारब्ध कर्मनो क्षय थये छते देहनो त्याग करीने परम पदने पामेछे.

ब्रह्मचर्यना चार पाद; तेमां गुरुशुश्रूषादिकना क्रमथी जे विद्या प्राप्ति ते प्रथम पाद; तथा जेवी

गुरुने विषे वृत्ति तेवीज गुरुपत्नीने विषे अने तत्पुत्रने विषे जे वृत्ति ते द्वितीय पाद; तथा आचार्ये करेला उपकारने अने परम पुरुषार्थने जाणीने "गुरुए मने सच्चिदानंदाद्वितीयस्वरूपे उत्पादन कर्यो." ए रीते चिंतवन करतो छतो, अने आचार्यप्रत्ये हर्षयुक्त छे बुद्धि जेनी एवो छतो, पोतानी कृतकृत्यता माने ते त्रीजो पाद; तथा प्राणे करीने, धने करीनें, कर्मे करीने, वाणीये करीने जे आचार्यने अर्थे प्रिय करवुं ते चोथो पाद.

पूर्वोक्त ज्ञानादि बार गुणोथी, तथा छ प्रकारना त्यागथी, तथा चतुष्पाद ब्रह्मचर्यथीज ब्रह्मात्मस्वरूपे स्थिति होय, अन्यथा नहि. हे राजन्! कर्मे करीने तो अंतवाळाज लोक जीतायछे अने ज्ञानें करीने तो त्रिकालाबाध्य नित्यस्वरूप जीतायछे; माटे नित्य स्वरूपनी प्राप्ति विषे ज्ञान विना बीजो कोइ मार्ग नथी.

राजाये प्रश्न कर्यो के, हे मुने! ते प्राप्य एवुं नित्य ब्रह्म शुक्ल, पीत, कृष्ण, रक्त छे के केवी रीतनुं छे?

उत्तरः– हे राजन्! ए ब्रह्म शुक्लादि रूप नथी, तथा पृथिवी आकाशादिकने विषे ए ब्रह्मनुं रूप जणातुं नथी; किंतु पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि सा-

धने संपन्न जे उत्तमाधिकारी तेनेज स्वमहिमाने विषे प्रतिष्ठित एवुं अपरोक्ष थायछे, पण घटादिकनी पेठे इदंताये करीने नहि; ए ब्रह्मने विषेज सर्व जगत् प्रतिष्ठित छे, अने आत्मज्ञानीने ब्रह्मरूपज जणायछे.

तृतीयाध्याय समाप्त.

जेथकीज सूर्यादियो प्रकाश पाम्याछे, तथा जेने देवताओ नित्ये उपासना करेछे ते शुद्ध ब्रह्मने जे योगी तेज पामेछे, इतर नहि ए रीते उपदेश करीने पछी ए ब्रह्मथीज हिरण्यगर्भादिकनी उत्पत्ति कहीने अनंतर "द्वासुपर्णा" ए मंत्रनो अर्थ कथन करीने, पछी ते ब्रह्मात्मस्वरूपे ज्ञानीनुं अवस्थान कथन कर्युं; अनंतर ए ब्रह्मने सदृश कोई नथी, तथा चक्षुरादिकनुं पण अगोचर छे एवां ब्रह्मने योगयुक्त बुद्धिये करीने जे जाणे एज अमृत होयछे ए रीते कथन करीने, पछी इंद्रियोनी विषयोने विषे जे प्रवृत्ति ते अनर्थेनी हेतु छे एम कहीने, पछी ब्रह्मनुं अपरिच्छिन्नपणुं प्रतिपादन करीने तेने जे जाणे एज अमृत होयछे ए रीते उपसंहार कर्यो; पछी कह्युं के, सर्व प्राणीओने विषे आन्तररूपे अर्थात् ओतप्रोतरूपे करीने एकज आत्मा रह्योछे एम जे

जाणे एटले साक्षात्कार करे ते शोक करतो नथी; त्यांहां श्रुतिः– "तत्र को मोहः कः शोकएकत्वमनु पश्यतः" वळी एज वात कहेछे के, जेम चारेतरफथी भरपूर एवां सरोवरने विषे यद्यपि जल घणुं छे, तो पण पोताने अपेक्षित अंजलिमात्रथी अधिकनुं कांइज प्रयोजन नथी; तेम वेदमां घणा प्रकारनी विद्याओ छे, तो पण ज्ञानीपुरुषने ब्रह्मस्वरूपना साक्षात्काररूपज प्रयोजन छे विशेषनी अपेक्षा नथी; त्यांहां गीतानुं वचनः– "न चास्य सर्व वेदेषु कश्चिदर्थ व्यपाश्रयः"

हवे सनत्सुजात पूर्वे कहेली विद्यानाज दृढीकरणने अर्थे वामदेवादिकनी पेठे पोताना अनुभवने देखाडेछे के, हे धृतराष्ट्र! तमारी सर्वेनी मातारूप हुंज छौं; तथा पितारूप पण हुंज छौं; तथा पुत्ररूप पण हुंज छौं; "किंबहुना" (बहु कहेवाथी शुं?) चराचर सर्व प्राणीनो आत्मारूप हुंज छौं; वळी इंद्रादिक देवनो वृद्धपितामह एटले परमेश्वर अर्थात् अव्याकृत पण हुंज छौं; तथा पिता एटले हिरण्यगर्भ पण हुंज छौं; तथा हे राजन्! तमे

सर्वे अध्यारोप दृष्टिथी म्हारां स्वरूपने विषेज र-ह्याछो; जेम रज्जुने विषे सर्प, धारा, मालादि रह्यांछे तेम; अने परमार्थ दृष्टिथी तो म्हारे विषे तमे कोई पण रह्या नथी, तेम हुं पण तमारे विषे रह्यो नथी; तथा नाम, रूप, क्रियात्मक जगत्नो आश्रयरूप आत्मा हुंज छौं; तथा सर्वनी उत्प-त्तिनुं कारण पण हुंज छौं; त्यांहां श्रुतिः—"आ-त्मन एवेदं सर्वमिति" तथा ओतप्रोतरूपे क-रीने पण हुंज रह्योछौं, अने जन्म मरणे वर्जित एवा स्वमहिमाने विषे प्रतिष्ठित हुंज छौं; तथा सूक्ष्म एवां आकाशादिथकी पण सूक्ष्मतर एवो हुंज छौं; तथा राग, द्वेष, लोभ, मोह, मात्सर्य, शोकादि धर्मे रहित छे केवल सच्चिदानंदाद्वितीय ब्रह्माकार मन जेनुं एवो पण हुंज छौं; तथा सर्व प्राणीओना हृदयकमलने विषे एक प्रत्यगात्म-स्वरूपे हुंज रह्योछौं.

ए प्रमाणे सनत्सुजात मुनि स्व अनुभवे करीने सर्व जीवोना कल्याण सारु धृतराष्ट्रने अ-धिकारी करीने तेने ब्रह्मविद्यानो दृढ साक्षात्कार करावीने पछी उपराम पाम्या.

आ आख्याननुं सविस्तर वर्णन स्वामि श्री स-

चिदानंदब्रह्मतीर्थे गुजराती भाषामां करेलुंछे ते-थी विशेष जाणवुं.

महावाक्यरत्नावळीनुं वाक्यः—

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते
त्यज । उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन
त्यजसि तत्त्यज ॥ १ ॥

अर्थः— हे शिष्य ! श्रुति स्मृतिये जे अर्थ विधान करेलो ते धर्म; तथा श्रुति स्मृतिये जे अर्थ निषेध करेलो ते अधर्म; तथा चक्षुरिंद्रिये करीने जे विषय करेलो अर्थ ते सत्य; तथा मने करीने विषय करेलो जे अर्थ ते अनृत ए सर्वेने आत्मस्वरूपथी अनतिरिक्त जाणीने त्याग कर. वळी जे आत्माकार वृत्तिये करीने तुं सत्य अनृतनो त्याग करेछे, ते वृत्तिनो पण त्याग कर एटले सर्वोपाधि रहित शुद्ध ब्रह्ममात्र हो. १.

उपर कहेली प्रक्रियाओना विचारथी जे ब्रह्मात्मैकत्वनुं अवधारण थयुं तेना दृढ अनुभवमां श्री आचार्यकृत उपदेशसहस्रीनां वाक्योः—

चिति स्वरूपे स्वत एव मे मते
रसादियोगस्तव मोहकारितः ।

अतो न किञ्चित् तव चेष्टितेन मे
फलं भवेत्सर्वविशेषहानतः ॥ १ ॥
विमुच्य मायामयकार्यतामिह
प्रशान्तिमायाह्यसदीहितात्सदा ।
अहं परंब्रह्म सदाविमुक्तवत्
तथाजमेकं द्वयवर्जितं यतः ॥ २ ॥
सदा च भूतेषु समोस्मि केवलो
यथा च खं सर्वगमक्षरं शिवम् ।
निरंतरं निष्कलमक्रियं परम्
ततो न मेस्तीह फलं तवेहितैः ॥ ३ ॥
अहं ममैको न तदन्यदिष्यते
तथा न कस्याप्यहमस्म्यसंगतः ।
असंगरूपोहमतो न मे त्वया
कृतेन कार्यं तव चाद्वयत्वतः ॥ ४ ॥
दृशि स्वरूपं गगनोपमं परम्
सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयम्
तदेव चाहं सततं विमुक्त ओम् ॥ ५ ॥

दृशिस्तु शुद्धोहमविक्रियात्मको
न मेस्ति कश्चिद्विषयः स्वभावतः ।
पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वतः
संपूर्णभूमात्वज आत्मनिस्थित ओम्॥६॥
अजोमरश्चैव तथाजरोमृतः
स्वयं प्रभः सर्वगतोहमद्वयः ।
न कारणं कार्यमतीवनिर्मलः
सदैकतृप्तश्च ततो विमुक्त ओम्॥७॥

उपरना सप्त श्लोकरूप वाक्योना नीचे प्रमाणे अनुक्रमे अर्थो:–

सातमा प्रकरणमां कह्या प्रमाणे विद्या अने अविद्या ज्यारे बुद्धिगत छे, त्यारे सांख्य सिद्धान्तनो प्रसंग आवशे; केमके ते सांख्यो मानेछे के, 'बुद्धिज पुरुषना मोक्ष अने भोगने अर्थे ज्ञान अने अज्ञानरूपतानुं आचरण करेछे' एवी वादिनी शंकानुं निराकरण करता छता श्री आचार्य स्वअनुभवना अनुसारे साधेलां ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञानने आत्मा बुद्धिनो संवादरूप आठमा प्रकरणे करीने दृढ करेछे.

विवेकी आत्मा बुद्धिने कहेछे के, हे मते!

म्हारां स्वतःज शुद्ध चित्स्वरूपने विषे जे रसादि योग एटले रागादि हेतुक एवो भोक्तृत्वादिक संबन्ध ते त्हारो जे मोह (अविवेक) तेणे कराव्योछे अर्थात् मिथ्या छे; माटे सर्व विशेषोना राहित्यथी म्हारे विषे त्हारो चेष्टाये करोने कोई पण प्रकारनुं फल एटले अतिशय प्राप्त थाय तेम नथी. १.

जे माटे सर्व विशेषोना राहित्यथी म्हारा विषे त्हारी चेष्टाये करीने अतिशयरूप फल प्राप्त थाय तेम नथी, माटे त्हारे शान्त थवुं एज युक्त छे. ए अर्थने कहेछे के, हे मते! तुं मायामयकार्यता(मिथ्या चेष्टित)ने त्याग करीने असत् ईहितथी एटले निरर्थक प्रयासथी प्रत्यगात्मरूप म्हारें विषे प्रकृष्ट शान्तिने प्राप्त था एटले म्हारे विषे लय पाम. (आ ठेकाणे 'मायामयकार्यता' अने 'असदीहित' ए बे शब्दे करोने बुद्धिनां चेष्टितने विषे आविद्यकत्व एटले मिथ्यात्व सूचन कर्युं, तेथीज सांख्यमतनी शंकानुं निराकरण जाणवुं; केमके सांख्यो तो बुद्धिचेष्टितने सत्य मानेछे.)

प्रत्यगात्माने विषे मननो लय शा माटे कह्यो; सत्य, ज्ञान, आनन्दस्वरूप ब्रह्मने विषेज केम

न कह्यो ? एवी आशंका थये छते कहेछे के, सदैव प्रत्यगात्मरूप हुंज ब्रह्म छौं, माटेज सदा विमुक्त जेवो छौं. (आ ठेकाणे 'जेवो' ए इव शब्दार्थथी एम जणाव्युं के, बंधना अभावथी म्हारे विषे मुक्ति पण वास्तव नथी.) वळी हुं अज एटले जन्मादि षड्विकार रहित छौं, तथा द्वैत वर्जित एक स्वरूप एटले सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित छौं.(आत्माने ब्रह्मथी अभिन्न होवाथी " परेव्यये सर्वमेकी भवति " अर्थः— अविनाशी परब्रह्मस्वरूपने विषे सर्वे पण एकीभाव पामेछे. आ श्रुतिनो विरोध नथी एम जाणवुं.)

बीजी व्याख्याः—

हे मते ! असत् एटले स्वतःज स्वरूप शून्य एवा देह, इंद्रिय, विषयोने विषे जे ईहित एटले दृष्टादृष्ट फल, तेथकी सदा एटले जाग्रदादि त्रण्ये अवस्थाने विषे पण प्रशान्ति पाम; अर्थात् फलार्थ व्यापारनो त्याग कर, अने व्यापारथकी शान्त थयां छतां पण त्हारां बुद्धिस्वरूपनुं अनुसन्धान करीश नहि ए वात कहेछे के 'कार्यतां' एटले बुद्धिरूप कार्यस्वरूपताने त्याग करीने 'मा-

यां अय ' एटले कारणभूत प्रकृतिस्वरूपने पाम अर्थात् तदात्मक हो.

' त्यारे प्रकृतिस्वरूप थईने पाछी उद्भव पामीश ' एवी बुद्धिने आशंका थये छते कहेछे के, ' इह ' एटले कारणरूपतानो पण त्याग करीने म्हारां स्वरूपने विषेज ' अय ' एटले प्रवेश कर; अर्थात् तप्त एवा अयःपिंडने विषे जलबिंदुनी पेठे म्हारां स्वरूपेज ग्रस्त एवी था.

मुखनी अंदर कवलरूप कर्याछे कोटी ब्रह्मांडो जेणे एवी मने, मेंज इतः ततः चलायमान कर्यो एवो तुं शी रीते ग्रसीश ? एवी मतिनी शंका थये छते कहेछे के, जेने आत्मविद्यानो विवेक न होय तेने तो तुं चलायमान करी शके; परंतु हुं तो जन्मादि षड्विकार अने सर्व द्वैतथी रहित माटेज सदा विमुक्त छौं, वास्ते तुं मने चलायमान करी शके तेम नथी. हुं आत्माने चलायमान करुंछौं ए तो तने भ्रान्ति मात्र छे. २.

अजत्वादिकनुं प्रतिपादन करनारां श्रुतिवाक्यनां प्रामाण्यथी यद्यपि निर्विशेषताये करीने ब्रह्मने विषे नित्य मुक्तपणुं सिद्ध थायछे, तो पण देहादिकने विषे अन्वित एवा आत्माने नि-

विंशेषताथी ब्रह्मरूपत्वनो संभव केम घटे? एवी शंका थये छते कहेछे के, हुं केवळ एटले अविद्या अने त्हेनां कार्यरूप सर्व विशेषोथी रहित छौं, तथा सर्व भूतोने विषे समज छौं; केमके उपाधिना परामर्श विना म्हारे विषे कोई पण विशेषनो उल्लेख थई शकतोज नथी.

सर्वमां अनुस्यूत छतां पण आत्माने असंग स्वभावताथी निर्विशेषपणामां दृष्टान्तः—

जेम आकाश सर्वत्र व्यापक तथा अक्षर (अविनाशी), शिव (निरुपद्रव) निरंतर (निर्भेद), निष्कळ (कळा रहित), तथा अक्रिय (क्रिया रहित) छे तेमज हुं पण उक्त विशेषणोये विशिष्ट छौं; माटे हे मते! त्हारां चेष्टिते करीने म्हारे विषे कोई पण अतिशयनुं आधान थाय तेम नथी. ३.

ब्रह्मभूत एवा तने म्हारां चेष्टिते करीने यद्यपि अतिशय नथी, तो पण म्हारी चेष्टाथी त्हारो संबंधि एवो गौण पदार्थ अथवा मुख्य पदार्थनो उपयोग तने थशे एवीमतिनी आशंका थये छते, ते गौण मुख्य पदार्थ पण म्हारे विषे संपादन थई शके तेम नथी ए वात कहेछे के, हुं एकज छौं, माटे चित्स्वरूप एवा म्हारे विषे

परमार्थथी सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदमां प्रमाणना अभावथी म्हारी अपेक्षाये गौण एवुं कांइ पण वस्तु इच्छवा योग्य नथी, तथा कोई पण प्रधान पदार्थनो गौणभूत हुं नथी, केमके असंग छौं; वास्ते त्हारी चेष्टाथी म्हारे कांइज प्रयोजन नथी.

वळी तुंज नथी, तो त्हारां चेष्टित तथा तेमनुं फल क्यांहांथीज होय? एवा आशयथी कहेछे के, वास्तवथी तुं पण अद्वैत ब्रह्मरूपज छो एटले म्हारां स्वरूपनां अज्ञानथी कल्पित अध्यस्तरूप एवी त्हारो अधिष्ठानभूत म्हारा स्वरूपथी व्यतिरेक एटले पृथक् स्वरूपसिद्धिनोज अभाव छे माटे तुं मद्रूप छो ए रीते अभेद सिद्ध थये छते उपकार्य उपकारकभाव संबंधनोज असंभव छे, माटे विकल्पनाओने छोडीने म्हारां स्वरूपने विषेज प्रशान्त था. ४.

आत्माने विषे निर्विषय ज्ञानस्वभावत्व पूर्वे प्रतिपादन कर्युं, तेनेज स्व अनुभवे करीने प्रकट करता छता श्री आचार्य कहेछे के, 'सकृद्विभात' एटले सदैव स्पष्ट प्रकाशमान, तथा 'अज' एटले जन्मादि रहित, तथा 'एक' अने 'अक्षर' एटले अविनाशी ए हुं; तथा आकाशनी छे उपमा जेने एवुं अने अलेपक सर्वत्र व्यापक, तथा

अद्वैत एवुं जे ब्रह्म तेज दृक्स्वरूप हुं छौं; माटे सदैव विमुक्त छौं.

उक्त एवुं ब्रह्माभिन्न आत्मस्वरूप ॐकार द्वाराथीज मुमुक्षुनी बुद्धिने विषे अभिव्यक्त थायछे एवी सूचनाने अर्थे ॐकारनो निर्देश कर्योछे; अथवा उक्त एवुं ब्रह्माभिन्न आत्मस्वरूपना बोधनो अंगीकार[1] शिष्य पासे कराव्यो एम जाणवुं. ५.

आकाशनी पेठे अलेपकपणुं दृक्स्वरूप आत्माने विषे घटे नहि; केमके दृश्यना संबन्धथी अशुद्धि, विक्रिया इत्यादिक दोषनो संभव आवेछे एवी आशंका थये छते दृक्स्वरूप आत्माने विषे नित्य शुद्धत्वादि श्रुतियेज निर्धारण कर्युंछे, माटे शंकानो अवकाश नथी एवा अभिप्रायथी श्रुति सिद्ध अर्थने प्रकट करेछे के, हुं तो ज्ञानस्वरूप छौं माटेज शुद्ध छौं; केमके अज्ञान हेतुक अशुद्धत्वादिक तो आभासमात्र होवाथी मिथ्या छे; त्यांहां श्रुतिः— " शुद्धमपापविद्धं ".

वळी विक्रियात्मक एवा प्राणादियोथी अन्य छौं माटे अविक्रिय; त्यांहां श्रुतिः— " अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः " " अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमिति ".

---

१ ॐ शब्दनो अंगीकाररूप अर्थ कोशमां प्रसिद्ध छे.

वळी "न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन"

अर्थः— ए आत्मस्वरूपने कोई पण व्यापतुं नथी, तथा आत्मा कोईने व्यापतो नथी.

ए श्रुतिनां प्रामाण्यथी आत्माने विषयनो संबंध नथी ए वात कहेछे के, वास्तवताथी म्हारे कोइ पण विषय नथी. (एणे करीने विक्रियाना हेतुभूत विशेषना अभावथी पण अविक्रियपणुं कथन कर्युं.)

तथा विषयना अभावे करीने अद्वैतात्मस्वरूपनुं प्रतिपादक भूम वाक्यने अर्थथी पठन करेछे के, हुं आगळ, पाछळ, पडखाने विषे तथा चोतरफ, उंचे, नीचे तथा सर्वत्र व्यापक इदमनिदमात्मक जे संपूर्ण भूमानन्दस्वरूप स्वमहिमाने विषे प्रतिष्ठित छे तेज हुं छौं. ६.

आत्माने विषे जन्म जरादि विक्रियाना अभावे करीने कूटस्थ अद्वय स्वभावत्वने प्रतिपादन करनारी श्रुतियोनुं स्वरूपथकी अने अर्थथकी पठन करेछे के, हुं 'अज' एटले अजन्मा छौं; त्यांहां श्रुतिः— "अजोनित्यः शाश्वतः".

तथा 'अमर' अने 'अजर' एवो छौं; त्यांहां

श्रुतिः– " स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽभयो ब्रह्मेति ".

तथा 'स्वयंप्रभः' एटले स्वप्रकाश छौं; त्यांहां श्रुतिः– " अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिः " " तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः "

तथा सर्वत्र व्यापक छौं; त्यांहां श्रुतिः– " नित्यं विभुं सर्वगतं ".

तथा अद्वयरूप छौं; त्यांहां श्रुतिः– " एको देवः " " एकमेवाद्वितीयं ".

तथा हुं कारणरूप पण नहि अने कार्यरूप पण हुं नहि; त्यांहां श्रुतिः– " तदेतद्ब्रह्म पूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यं ".

तथा 'निर्मल' छौं त्यांहां श्रुतिः– " निरंजनः परमं साम्यमुपैति ".

तथा एक तृप्त एटले निजानंदे करीनेज तृप्त छौं; त्यांहां श्रुतिः– " आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन " " आनंदरूपममृतं यद्विभाति ".

" विमुक्तश्च विमुच्यते " ए श्रुतिनुं आश्रयण करीने कहेछे के, हुं विमुक्त छौं. ७.

श्रुतिवाक्यः—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ १ ॥

अर्थः— आत्माने विषे सर्व उपाधियोना निषेधे करीने सिद्ध थयुं जे निष्प्रतियोगिकपणुं तेणे करीने परमपणुं घटेछे; तो पण जीवरूपे करीने संसारबद्धत्व, तथा ते बंधना निरासने अर्थे साधकत्व, तथा स्वस्वरूपनां बंधनथी मुमुक्षुत्व एटले मोक्षनी इच्छा, तथा ज्ञाने करीने मुक्तत्व ए सर्व वास्तविक केम न होय? एवी वादिनी शंका थये छते उत्तर कहेछे के, परमात्मा कोई काळे पण बद्ध, साधक, मुमुक्षु अने मुक्त नथी; केमके, निष्प्रतियोगिक परमात्मानो निरोध एटले लय नथी, अविनाशी छे माटे; तथा उत्पत्ति पण नथी; केमके अजन्मा छे; तथा बद्धत्व एटले बंधविशिष्टत्व पण नथी; तथा साधकत्व एटले बंध निवृत्तिने अर्थे उपाय कर्तृत्व पण नथी; तथा मुमुक्षुत्व एटले बंधनथी मोक्षनी इच्छा पण नथी; तथा बंधना अभावथीज मुक्तत्व पण नथी; अर्था-

त् आत्माने विषे निष्प्रतियोगिक जे शुद्धस्वरूप मात्र तेज परमार्थ छे. १.

अहंकारादिकनुं निराकरण करीने ब्रह्मथी अभेदे करीने आत्मतत्त्वना साक्षात्कार थवामां श्री वसिष्ठजीनुं वचनः—

ज्ञानस्य ज्ञेयतापत्तिर्बंध इत्यभिधी-
यते । तस्यैव ज्ञेयता शांतिर्मोक्ष-
इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

अर्थः— हे राम! ज्ञानस्वरूप आत्माने जे ज्ञेयतानी आपत्ति एटले दृश्यतानी प्राप्ति ते बंध कहेवायछे; तथा एज आत्माने जे ज्ञेयता(दृश्यता)नी शांति एटले निवृत्ति ते मोक्ष कहेवायछे. १.

ए रीते उपक्रम करीने तेना उपसंहारनो श्लोकः—

या व्यापारवतीरसाद्रसविदां काचि-
त्कवीनां न वा दृष्टिर्या परिनिष्ठि-
तार्थ विषयोन्मेषा च वैपश्चितो ।
ते द्वे अप्यवलंब्य विश्वमखिलं निर्व-
र्णितं निर्वृतं यावद्दृष्टि दृशो न सन्ति
कलिता नो शून्यता नो भ्रमः ॥ १ ॥

अर्थः— हे राम! त्रण प्रकारनी दृष्टि शास्त्रमां प्रसिद्ध छे; जे के (१) पामर दृष्टि, (२) यौक्तिक दृष्टि अने (३) तत्त्व दृष्टि; तेमां पेहेली पामर दृष्टि एटले मूढ दृष्टिनुं उत्तर एवी बे दृष्टिए करीने निराकरण करवुं, अने बीजी यौक्तिक दृष्टिनुं त्रीजी तत्त्व दृष्टिए करीने निराकरण करवुं एवा आशयथी में यौक्तिक अने तत्त्व बन्ने दृष्टिनुं अवलंबन करीने आ सर्व जगत् तत्त्वरूपे एटले चिन्मात्ररूपे वर्णन कर्युं.

ते बन्ने दृष्टिनुं स्वरूप कहेछे के— सारमांथी पण सारनुं मथन करीने जाणवाने समर्थ, तथा प्रमाणतत्त्व अने प्रमेयतत्त्वनी परीक्षाने विषे कुशल एवा पुरुषोनी सम्यक् प्रकारे विचाररूप व्यापारवाळी अने अति निष्कर्षरूप एवी जे दृष्टि ते यौक्तिक दृष्टि; तथा विचार शास्त्र श्रवण मनन निदिध्यासनोना परिपाके करीने परिनिष्ठित एवां परमार्थतत्त्वमात्र विषयनुं छे अपरोक्षत्वथी स्फुरण जेने विषे एवी जीवन्मुक्तोने विषे प्रसिद्ध जे चरम साक्षात्काररूप ब्रह्माकार वृत्ति ते तत्त्व दृष्टि.

ए बन्ने दृष्टिनुं अवलंबन करीने जगत् क्यांहां सुधी वर्णन कर्युं एवी आकांक्षा थये छते क-

छे के, ज्यांहां सुधी सर्व संसारदृष्टिओ तथा तेमना जोनार जीवो त्रिकालने विषे पण छेज नहि, अने शून्यतानो पण संदेह रहे नहि, तथा भ्रान्तिमय पण जणाय नहि त्यांहां सुधी; अर्थात् नित्य, अपरोक्ष, परम आनन्दस्वरूप ब्रह्मात्मैकत्वरूपे स्थिति पर्यंत वर्णव्युंछे. २.

अन्तमां मङ्गलाचरण.

खानिलाग्न्यब्धरित्र्यन्तं स्त्रक्फ-
णीवोद्गतं यतः। ध्वान्तच्छिदे नम-
स्तस्मै हरये बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥

अर्थः— आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी इत्यादि भूतभौतिकरूप त्रिगुणात्मक सर्व जगत् रज्जुने विषे भुजंगनी पेठे जेने विषे उद्भूत एटले भासमान थयुं ते ध्वान्त(अज्ञान)ना छेदन करनार अने बुद्धिना साक्षीरूप एवा हरिने नमस्कार.

आ श्लोकमां रज्जु भुजंगनुं दृष्टान्त आरंभ अने परिणामवादना निराकरणने अर्थेछे; तथा हरिने बुद्धिसाक्षीनी जोडे सामानाधिकरण्य जे कथन कर्युं ते प्रत्यगात्मा अने परमात्मा ए बन्नेना अ-

खंडैक्य बोधने अर्थे छे; तथा 'ध्वान्तच्छिदे' ए पद अज्ञाननी निवृत्तिरूप प्रयोजनने अर्थे छे. १.

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं
शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं
गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥ १ ॥
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्म-
पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्या-
नस्मद्गुरून्सन्ततमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

इति श्री मदुदयशंकरात्मज
गौरीशंकर विरचिते स्वरू-
पानुसन्धाने सप्तम
प्रक्रिया समाप्ता.

॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

* भुजंगी छंद.

परब्रह्म ने जीवनुं ऐक्य जेमां,
ज्रुवो सत्य वेदान्त सिद्धान्त तेमां;
त्रय श्रेष्ठ प्रस्थान छे ग्रन्थ सारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. १
वडा ग्रन्थ वेदान्तना वांचवाने,
बनेछे क्यमे व्हौ श्रमे कोइ व्हाने;
परंतु लिधो आ स्थळे सार सारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. २
थयुं ग्रन्थ वेदान्तमां ज्ञान जेनुं,
खरुं तत्त्व ते जाणशे 'छे मजेनुं;'
'तदर्थेज छे ग्रन्थ आ' एम धारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. ३
सदा सच्चिदानन्द छे एक सत्य,
गणो ए विना वस्तु सर्वे असत्य;
सदा चित्तमां सत्य वस्तु विचारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. ४

---

* रचनार भवानीशंकर वि० नरोत्तम द्विवेदी.

न श्रुत्युक्त आत्मस्वरूपावलोक्युं,
निशामांह खाधा किधुं खूब झोकुं;
कहो आवशे एथकी क्यांथि आरो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. ५
छवो वामदेवादिओ ज्ञान पाम्या,
महा पाश संसारमांथी विराम्या;
न धारो जरा काममां ए उधारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. ६
दिसे सर्व माया तणी कष्टकारी,–
महा काळ विकाळ छे जाळ भारी;
खरेखात निःसार संसार धारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. ७
असत्पंथ ने ग्रन्थना तंत तेवा,
गणी तुच्छ ने तुर्त ते छोडि देवा;
करो ब्रह्म सिद्धान्तनो पक्ष प्यारो,
स्वरूपानुसन्धान स्नेहे स्वीकारो. ८

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९	६	दुःस्त्ररूप	दुःस्वरूप
१०	२	सोयऽमीदृशः	सोऽयमीदृशः
१८	२	ते	जे
२७	१२	तथ	तथा
४७	१	अपरोक्षंब्रह्म	अपरोक्षाद्ब्रह्म
५०	९	विरहः	विरह
५४	५	अढारमां	अढारमा
५९	५	छों	छौं
६५	११	परमात्मा,	परमात्मा छे,
८१	१३	अस्थवात्रय	अवस्थात्रय
९२	९	कार्यकारणनो	कार्यकरणनो
९२	१०	ज्योतिष	ज्योतिषथी
९२	१५	कार्यकारणनो	कार्यकरणनो
९३	२०	निर्माणनां	निर्माणना
९५	२	कार्यकारणथी	कार्यकरणथी
९९	२२	तेमनां	तेमना
१०२	१	अतात	अतीत
१०२	९	श्रुतिमा	श्रुतिमां
१०४	१८	वाक्योनो	वाक्योक्त अर्थनो
१०६	८	स्वरूप	रूप
१३७	२	थवाने;अर्थे	थवाने अर्थे;
१५९	१	छठी	छट्ठी

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१६७	२	दक	दिक
१८०	२	माटे	(वधारे छे.)
१८२	६	अनुविप्रयुक्ताः	अनविप्रयुक्ताः
१९०	२	निगमा	निगमाः
२०३	१०	बीजु	बीजुं
२०४	२१	त्रयाः	त्रयः
२४०	४	थयुं	थतुं
२५४	२१	रूप	सामान्यरूप
२५४	२२	रूप	विशेषरूप
२६०	८	तात्पर्यथी	लिंगोथी
२६०	९	वाक्योनो	वाक्योनां तात्पर्यनो
२८४	८	गुप्ति	गुप्ती
२८५	११	श्रुतमतं	श्रुतममतं
२८७	१५	रची	करी
३१३	१२	आपेक्षित	आपेक्षिक